प्रकाशकीय

संसार आज संक्रमण की अवस्था में है। एक ओर जहाँ उसके सामने अभूतपूर्व, अगाध ऐश्वर्य का मार्ग खुला पड़ा है, वहाँ दूसरी ओर भयङ्कर संहार-लीला की सम्भावना भी खुली पड़ी है। भौगोलिक रूप से आज संसार संकुचित हो गया है। पिछड़े और प्रगतिशील, सम्पन्न और विपन्न देशों के बीच की खाई पट रही है। नीच-ऊँच का भेद तीव्र गति से मिट रहा है। अब कोई किसी को दबाकर रख नहीं सकता। मनुष्य अन्तरिक्ष का स्वामी हो रहा है। समस्त मानव-समाज, विशेषकर विगत काल का विपन्न समाज उज्ज्वल भविष्य की आशा से प्रफुल्ल हो रहा है। ऐसी परिस्थिति में मानव-समाज में नयी समस्याएँ उत्पन्न हों, यह स्वाभाविक ही है। प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान् और लेखक श्री इरविन डी० केन्हम ने इन्हीं समस्याओं की विवेचना की है और मानव के उज्ज्वल भविष्य का दृढ़ विश्वास प्रकट किया है। श्री कैन्हम की शैली सहज, सरल और सर्वथा अनौपचारिक है।

श्री जयन्त ने इस मूल ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है। अनुवाद में मूल ग्रन्थ की सहज बोधगम्यता अक्षुण्ण बनी हुई है। हिन्दुस्तानी एकेडेमी को भारत-स्थित अमेरिकी सूचना-विभाग के सहयोग से यह अनुवाद प्रस्तुत करते प्रसन्नता है।

विद्या भास्कर

सचिव

भूमिका

विश्व में नव जागृति के अद्भुत सौन्दर्य और उसमें निहित खतरों से सामग्री-चयन कर 'दी क्रिश्चियन साइन्स मानीटर' ने इस पुस्तक को रूप और आकार प्रदान किया। इसके लिए हमने विश्व के विभिन्न भागों में नियुक्त अपने संवाद-दाताओं के लेखन-साधनों को संकलित किया और आवश्यकता पड़ने पर तकनीकी विशेषज्ञों से भी सहायता ली।

हमने जो कुछ लिखा उसमें दो परस्पर सम्बद्ध धाराएँ बराबर प्रवाहित रहीं। वे हैं—प्रगति और स्वतन्त्रता। यह पुस्तक वास्तव में प्रगति का इतिवृत्त है। लेकिन यह आजादी के लिए आह्वान भी है। प्रगति के साथ-साथ स्वतन्त्रता का आना जरूरी है। मनुष्यों को अपने लिए नये बन्धनों का निर्माण नहीं करना चाहिये। भौतिक तत्वों पर काबू पाने के साथ ही उन्हें भौतिकवाद का शिकार नहीं बन जाना चाहिये। इससे स्पष्ट है कि नई विजय और नई उपलब्धियों के साथ-साथ चेतावनी और खतरे का यह स्वर भी निरन्तर बना रहता है।

प्रथम खण्ड है—"उन्मुक्त अन्तरिक्ष—नये क्षितिज की ओर"। इसमें अन्तरिक्ष-युग की चुनौतियों की बात कही गई है जो सम्भवतः हमारे युग की सबसे बड़ी अग्रकृति है। धरती से अन्तरिक्ष तक हमारी इस उड़ान को मानव-जाति के लाभ के लिए अपरिमित ज्ञान के एक नये भण्डार और नये सम्बन्धों के रूप में इस्तेमाल किया जायगा, या इसे अन्तरिक्ष प्लेटफार्मों से या कृत्रिम उपग्रहों से बमबारी कर समस्त मानव-जाति को गुलाम बनाने के लिए प्रयोग किया जायगा?

ज्ञान का यह महानतम नवयुग हमें प्रगति की राह आगे की ओर ले जायगा या पीछे की ओर? अन्तरिक्ष की इस नई दुनिया में प्रगति की सम्भावनाओं और निहित खतरों का पता लगाना ही प्रथम-खण्ड का उद्देश्य है। हमने तथ्यों की सहायता से और गम्भीरता से विचार कर लेकिन मोटी रूप-रेखा के रूप में ही इसे पूरा करने की चेष्टा की। यह असम्भव नहीं कि कम से कम आने वाले पचास वर्षों तक ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में मानव-मात्र के चिन्तन का यही मुख्य विषय होगा।

दूसरे खण्ड के शीर्षक "जन जागरण—भविष्य का आह्वान" में ही सारी बात स्पष्ट हो जाती है। इसमें विविधता है क्योंकि हमने घाना के जोश भरे छात्रों, जापान के भू-स्वामी किसानों और उन अन्य अनेक की चर्चा की है जिनके जीवन को स्वतन्त्रता ने उमंगों से भर दिया। चाहे पुराना समाज हो या नया,

जनता सर्वत्र जाग रही है। आज के संसार में सबसे अधिक विस्फोटक शक्ति उद्जन बम की नहीं बल्कि बन्धन-मुक्त जनता की विकास की उन्मुक्त सम्भावना की है। हमने वास्तव में इन्हीं की कहानी कहने की चेष्टा की है। आगे आने अनेक वर्षों तक अन्तरिक्ष की खोज के क्षेत्र में चाहे कितनी ही प्रगति हो जाय, यह युग जन-जागरण का युग ही रहेगा। सूर्योदय हो चुका है और दिन काफी चढ़ चुका है।

तीसरे खण्ड "मानव और प्रकृति—भावी उपलब्धियाँ" में हमने इस जन-जागरण का सार समझाया है क्योंकि अपने भौतिक वातावरण पर प्रभुत्व और नियन्त्रण कायम रखने की—जो इस सदय का सबसे बड़ा तथ्य है—मनुष्य की नई क्षमता को प्रभावित करता है। किलोवाटों और मेगाटनों से लेकर बढ़िया ढङ्ग से कपड़े धोने की मशीन तक इसके प्रमाण हैं। या जैसे भारत में, एक या दो बैलों की शक्ति से पूरे ग्राम में विद्युत् प्रकाश करने की साधारण सी तरकीब, या जैसा कि अनेक पश्चिमी देशों में है, कार, टेलीविजन और स्कूलों का मानव-जीवन पर प्रभाव। ये तीन केवल प्रतीक मात्र हैं, लेकिन साथ ही ये मनुष्य की प्रतिभा के असाधारण बहुमुखी विकास की सम्भावना के द्योतक हैं। ये भी विस्फोट शक्तियाँ ही हैं और इनके विस्फोट का प्रभाव बम-विस्फोट से कहीं अधिक गहरा और व्यापक होगा।

इस महान् नई स्वतन्त्रता की रक्षा तथा प्रोत्साहन के लिए चौथे खण्ड—"मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध—आध्यात्मिक विकास की स्वतन्त्रता" में इस बात की चर्चा की गई है कि पदार्थ और विश्व की प्रकृति के सम्बन्ध में जिस नये ज्ञान ने सारी मानव-जाति को अभिभूत कर रखा है उसमें बढ़ती आध्यात्मिक चेतना किस हद तक निहित है। यद्यपि अभी इसके लक्षण स्पष्ट नहीं हैं फिर भी अधिक गहराई में जाने से यह स्पष्ट हो जायगा कि इनका उभरना अनिवार्य है। इस नये ज्ञान के मूल में वास्तव में भौतिकवाद का अन्त निहित है। आधुनिक जीवन के तथ्य बार बार यह बताते हैं कि परस्पर प्रेम और बन्धुभाव अत्यन्त आवश्यक हैं। अत्यन्त पिछड़े और उपेक्षित क्षेत्रों में भी इधर हाल में मनुष्य के अन्दर स्वतन्त्रता की चिनगारी भड़क उठी है। अन्ततः वास्तव में उसका आध्यात्मिक व्यक्तित्व ही जो ईश्वरीय देन है, उसके समाज की रक्षा करता है। इस खण्ड में हमने कलाओं की स्थिति और उनके महत्व पर विचार किया है। इससे भी पता चलता है कि मनुष्य के अन्दर एक नई चेतना उभर रही है और रूप ग्रहण कर रही है—चाहे यह रूप अभी धुंधला हो या स्पष्ट, इतना साफ है कि इस चेतना को दबाया नहीं जा सकता।

अन्त में पांचवें खण्ड में "राष्ट्रों का सहयोग—शान्ति की सम्भावना" में हमने

वर्तमान समय की सबसे बड़ी और तात्कालिक समस्या—विश्वयुद्ध की आशङ्का—पर विचार किया है। क्या परमाणु गतिरोध पैदा हो गया है ? इस सम्बन्ध में फौजी स्थिति की सभी सम्भव और विश्वसनीय जानकारियों का हमने विश्लेषण किया और वह राह सुझाई है जिस पर चलकर ऐसे समझौते किये जा सकते हैं जिनसे युद्ध का खतरा कम हो सकता है और शक्ति कायम रखी जा सकती है। हमारे सम्वाददाताओं ने जिनका ध्यान प्रतिदिन इसी बात पर केन्द्रित रहता है, वर्तमान स्थिति और भावी सम्भावनाओं का स्पष्ट विश्लेषण करने में अपनी विशेषता का सदुपयोग किया है।

इन पाँच खण्डों में प्रस्तुत सर्वेक्षण से इस युग की सभी उपलब्ध जानकारियों को सार रूप में पेश किया गया है। वास्तव में इतिहास के इस चरण में अपने पाठकों और व्यापक जनता की आवश्यकता को अनुभव कर उसकी पूर्ति की दिशा में 'मानीटर' ने यह कदम उठाया। इसे विचारकों के लिये चुनौती का काम करना चाहिये। मुख्य बात तो यह है कि संसार के अनेक भागों में उदासीनता की भावना व्याप्त है और झूठे भौतिकवादी मूल्यों को सत्य मान कर स्वीकार कर लिया गया है। अमेरिका में यह स्थिति जितनी परेशानी पैदा करने वाली है उतनी और कहीं नहीं, क्योंकि अमेरिकी जनता को ही आनेवाले संसार से गम्भीर जिम्मेवारियों को अपने कन्धों पर लेना होगा।

गत दशाब्दि में अमेरिका में लापरवाही और आत्मसन्तोष की भावना जड़ पकड़ गई है। सोवियत सङ्घ द्वारा स्पूतनिक छोड़े जाने और १९५७-५८ की मन्दी से उसकी यह मोह-निद्रा आंशिक रूप से ही भङ्ग हो सकी। क्या सचमुच जागरण आ गया है ? अधिक जानकार और सन्तुलित दृष्टिकोण वाले पर्यवेक्षक भी हमें यह आश्वासन देने में असमर्थ हैं कि जागरण आ चुका है। स्पूतनिकों ने हमें यह चेतावनी दी कि प्रक्षेपास्त्रों के क्षेत्र में सोवियत सङ्घ ने उतनी शक्ति प्राप्त कर ली है कि इससे स्वतन्त्र विश्व की सुरक्षा को गम्भीर खतरा पैदा हो गया है। मन्दी ने यह सिद्ध कर दिया कि घरेलू अर्थ-व्यवस्था में अभी तक आर्थिक स्थिरता कायम नहीं की जा सकी। लेकिन स्पूतनिकों की चेतावनी से जो गहरा झटका लगा था वह अब बहुत कुछ कम पड़ गया है और मन्दी के बाद पुनः स्थिति सुधरने लगी है।

परन्तु अन्दर ही अन्दर ये चेतावनियाँ आज भी उतनी ही गम्भीर बनी हुई हैं जितनी पहले थीं और जागृत नागरिकता की आवश्यकता की पूर्ति भी पहले ही की तरह शीघ्र होनी है। प्रगति और स्वतन्त्रता को समर्पित इस पुस्तक का स्वर सदा आशावादी रहा है। परन्तु यह आशावाद इस बात पर निर्भर करता है कि नागरिक अपनी नागरिकता की सम्पूर्ण जिम्मेदारियों के प्रति पूर्ण

जागरूक रहें और अनुकूल आचरण के लिये तैयार रहें। ये जिम्मेदारियाँ कौन सी है ? वह कौन सा कार्य है जो अधूरा पड़ा है ? इसकी एक मोटी रूप-रेखा इस प्रकार है :—

संक्रमण काल में पर्याप्त सैनिक शक्ति से लेकिन जनता के बीच की उन गलतफहमियों को कम कर, जिनसे शस्त्रीकरण और युद्ध की सम्भावना पैदा होती है, शान्ति को कायम रखने की आवश्यकता है।

स्वतन्त्र समाज की उस वास्तविक प्रकृति को (राजनीतिक और आर्थिक दोनों ही) समझने की आवश्यकता है जिसका पश्चिमी जगत् ने अपने स्वर्णिम क्षणों में उपयोग किया। तटस्थ लोगों को भी इस वास्तविक प्रकृति से अवगत कराना चाहिये। उस व्यावहारिक ज्ञान का प्रचार करने और उदाहरण प्रस्तुत करने की आवश्यकता है जो मनुष्य को भौतिकता की गुलामी से मुक्त करने में सहायता कर रहा है।

आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति मनुष्य के लगाव को अधिक स्पष्ट करने और उन कृत्यों को अपने जीवन में उतारने की आवश्यकता है।

इस स्पष्टीकरण को समाज की तात्कालिक समस्याओं को हल करने में प्रयुक्त किया जाना चाहिये, जैसे अच्छे स्कूलों की आवश्यकता पूरी करने में, शहरों के पुनर्निर्माण में और सज्जनता एवं ईमानदारी से शासन के हर स्तर में।

बड़े पैमाने पर उत्पादन, बड़े पैमाने पर वितरण, और सञ्चार के व्यापक साधनों के इस समूहवाद के दबाव से व्यक्ति की रक्षा में सहायता करने की आवश्यकता है।

यह आवश्यक है कि राज्य के अधिनायकवाद की प्रवृत्ति को अथवा राज्य को सर्वशक्तिशाली बनाये जाने की चेष्टा को चाहे वह कम्युनिस्ट हो, फासिस्ट हो, समाजवादी हो, या कोई और हो, आरम्भ में ही खत्म कर दिया जाय और प्रत्येक व्यक्ति को तथा प्रत्येक राष्ट्र को इस बात के लिये प्रेरित किया जाय कि वे अपनी समस्याओं को स्वयम् ही पूरी तरह हल करें।

जब व्यक्ति असहाय और अकेला है तो उसकी सहायता के लिये राज्य या किसी राजकीय संस्था की ओर देखने से पहले यह आवश्यक है कि स्वेच्छिक सामूहिक प्रयत्नों का पूरा-पूरा प्रयोग किया जाय।

इस प्रकार के सञ्चार साधनों का विकास किया जाय जिससे स्वतन्त्र विश्व और कम्यूनिस्ट जगत् की जनता में फैली गलतफहमियों को भी कम किया जा सके।

विशेषकर अमेरिकी जनता की इस मौजूदा गलत धारणा को दूर करने की बहुत आवश्यकता है कि उनका उद्देश्य तो केवल भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति है,

उनके समाज की सुरुचि का ज्ञान नहीं, उसमें नैतिकता का अभाव है और वह संसार की जिम्मेदारियाँ निभा सकने योग्य नहीं है। अन्य लोगों में और भांति की गलत धारणाएं हैं।

सभी स्वतन्त्र देशों में अधिक साहसपूर्ण और अधिक दूरदर्शी नेतृत्व प्रदान करना बहुत आवश्यक है।

एक बात और है जो अमेरिकी जनता के लिये तो बहुत आवश्यक है लेकिन अन्य लोगों को भी इसकी जरूरत है कि सभी व्यक्तियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाय, उनका आदर किया जाय, उनकी अभिलाषाओं और महत्वाकांक्षाओं को समझने की चेष्टा की जाय और उन्हें, 'ईश्वर के पुत्रों' के रूप में अपना पूर्ण विकास करने के लिये हर सम्भव सहायता दी जाय।

यह भी अत्यन्त आवश्यक है कि मार्क्सवाद पर कम्यूनिस्टों की जितनी आस्था है, उनमें जितना जोश और लगन है, स्वतन्त्र समाज के सिद्धान्तों पर हमारा उसमें कहीं अधिक विश्वास होना चाहिये, हममें उनसे कहीं अधिक जोश और लगन होनी चाहिये।

ये नागरिकता के कुछ गम्भीर उत्तरदायित्व हैं। इस समय में उत्तरदायित्व अधूरे पड़े हैं। लेकिन जैसी चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है उसमें कोई नागरिक किस प्रकार हाथ पर हाथ धरे बैठा रह सकता है?

इस पुस्तक के पूर्व, इस सामग्री को समाचार-पत्र के विशेष संस्करण के रूप में प्रकाशित किया गया था। उसी संस्करण की भाँति यदि यह भी विचारकों को तथ्यों और उनके अर्थों को अपेक्षाकृत भलीभाँति समझने में सहायता कर उन्हें सजग कर सके और अपने उत्तरदायित्व के निर्वाह के लिये अधिक सक्रिय कर सके तो 'दि क्रिश्चियन साइन्स मानीटर' का अपनी स्वर्णजयन्ती के अवसर पर यह सबसे बड़ा योगदान होगा।

राइ नार्डेल ने 'दि क्रिश्चियन साइन्स मानीटर' की पचासवीं जयन्ती अवसर पर हैरी बी० एलिस के सम्पादकत्व में प्रकाशित विशेष संस्करण की सामग्री को सार रूप में लेकर इस प्रकार की रचना की। लेखकों के नाम इस प्रकार हैं :— डोरोथी एडलो, जेसी एज आर्डन्ट, जान ब्यूफोर्ट, राबर्ट आर० ब्रन, राबर्ट सी० कावेन, सासिले आर० डेविस, विकनैल यूवैन्क, अर्ल डबल्यू० फोयेल, विलियम आर० फे, ज्योफरी गौल्डमैन, रोबर्ट एम० हैलेट, जोजेफ जी० हैरीसन, हेनरी एस० हेवर्ड, फिलिप्स हैनरिक, हैलेन हैनले, हेरोल्ड होचसन, एल्बर्ट डी० ह्यूस, जौन ह्यूम, हैरी सी० कैनी, मैलविन मैडौक्स, जान एलन मे, बेट्टी डी० मेयो, एडविन एफ० मैलविन, कार्लाइल वोर्गन, बुली नैटिलटन, राइ नौर्डन, फान्सिस

ग्राफनर, तकाशी ग्रोका, ग्रार्नेस्ट एस० पिस्को, रिचार्ड डब्ल्यू० पोर्टर, डोनॉवन रिचर्टमन, हैरोल्ड रोगर्स, शैरोख माववाला, कोटनी शेल्टन, रॉनाल्ड स्टैंड, एडमण्ड स्टीवेन्स, विलियम एच० स्ट्रींगर, एम्ली नाबेल, मिलिसेन्ट टेलर, गार्डन वाकर, जान सी० वाथ, नाटे व्हाइट, और पाल व्होल।

इरविन डी कैन्हम

मानव का उज्ज्वल

भविष्य

उन्मुक्त अन्तरिक्ष

नये क्षितिज की ओर

मनुष्य का भविष्य उज्ज्वल है, महान् है, परन्तु यह केवल शुभकामना ही नहीं कुछ और भी है। यदि इस भविष्य से बड़ी-बड़ी उम्मीदें हैं तो इसके साथ ही बड़ी-बड़ी चुनौतियाँ भी हैं; जिनका उसे सामना करना पड़ सकता है, यह महान् अवश्य है लेकिन अनेक जटिलताओं को लिये हुए। आज का व्यक्ति आने वाले इस डरावने कल का प्रभावशाली ढंग से किस प्रकार मुकाबला कर सकता है?

यह सवाल महत्वपूर्ण अवश्य है लेकिन अन्तरिक्ष में मनुष्य के बढ़ते प्रभाव ने इसे जो महत्त्व प्रदान किया है उतना इससे पूर्व और कोई नहीं कर सका था। आदमी सितारों तक पहुँचने को बेचैन है लेकिन सितारों तक की इस यात्रा के पहले यह जरूरी है कि हम अपने दिल और दिमाग की गहराइयों में उतरें। यह कुछ इस तरह आरम्भ हो सकती है :—

"हैलो आप जो स्पेस रेसर जे—३०३ से यात्रा कर रहे हैं, क्या बता सकते हैं कि आप कहाँ जाना चाहते हैं? मैं इन्टरस्टैलर ट्रैफिक कन्ट्रोल से बोल रहा हूँ।"

"माफ कीजिये, हम प्रोक्सिमा सैन्टाउरी जा रहे हैं। क्या आप कृपा कर ठीक रास्ता बता सकते हैं?"

"आपको स्पेसवे—६६ से जाना चाहिये। इस समय आप ठीक रास्ते से ८० हजार मील भटक गये हैं। एक डिग्री बायें घूम जाइये और पाँच मिनट में आप ठीक रास्ते पर आ जायेंगे। सही दिक्-स्थिति है शून्य, चार, पाँच। ध्यान रखिए,

बिल्कुल इसी रास्ते पर आगे बढ़िये अन्यथा पथभ्रष्ट होने पर दो करोड़ मील बाहर की ओर शुक्र और मंगल के बीच चलने वाले यातायात से टक्कर होने का खतरा है।"

यह कोई असंभव नहीं कि यह आपका पोता ही हो और कानून के साथ उसका यह पहला अनुभव हो। ध्यान दीजिये, अफसर ने रफ्तार के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा। इसका कारण यह है कि ६७ करोड़ मील प्रति घंटे की रफ्तार पहले से निर्धारित है। स्वचालित होने से इसमें किसी घटबढ़ की गुंजायश नहीं। जिस राकेट से आपका पोता यात्रा कर रहा है, उसकी रफ्तार भी प्रकाश की रफ्तार से अधिक नहीं हो सकती क्योंकि इसी प्रकाश की शक्ति (पावर) से तो वह चलता है।

यह बात कुछ विचित्र-सी लगती है। क्यों है न विचित्र ? परन्तु वैज्ञानिकों का कहना है कि इसमें विचित्रता की कोई बात नहीं। कुछ लोग अधिक सावधानी बरतते हैं। उनका कहना है कि हो सकता है कि आपके पोते का पुत्र सितारों तक पहुँच जायेगा। उनके विचार से आपके पुत्र को कुछ कम रफ्तार से ही सन्तोष कर लेना पड़ेगा। सम्भव है यह रफ्तार दस लाख मील प्रति घंटे से कुछ कम हो। रफ्तार कम होने के कारण वह केवल एक ग्रह से दूसरे ग्रह तक की ही यात्रा कर सकेंगे। परन्तु उन्हें कुछ ही दिनों में मंगल और शुक्र तक पहुँच जाना चाहिये क्योंकि वे निकटतम सितारों से कई लाख गुना नजदीक है।

और आप ? आप कितनी दूर जायेंगे ? रफ्तार क्या होगी ? बताया गया है कि आप चन्द्रमा से आगे नहीं पहुँच सकते जिसकी माध्य दूरी २,३८,८५७ मील है और रफ्तार होगी २५,००० मील प्रति घंटा। इसमें यह हिसाब लगा लिया गया है कि रवाना होते समय और रोकते समय रफ्तार कुछ मन्दी होगी। यह उम्मीद की जाती है कि अमेरिकी स्काउट राकेट तीन वर्ष के अन्दर यन्त्र सहित चन्द्रमा के चक्कर लगा लेंगे और दस वर्ष के अन्दर ही मनुष्य अंतरिक्ष की यात्रा करने में सफल हो जायेगा।

इस यात्रा के सम्बन्ध में अभी अनेक अज्ञात बातों का पता लगाना है। सारी बातों की सही जानकारी हुए बिना यात्रा नहीं की जा सकती। इसीलिये यह ठीक-ठीक नहीं बताया जा सकता कि मनुष्य कब तक अन्तरिक्ष पर विजय प्राप्त कर लेगा।

लेकिन विजय प्राप्त करने में कोई संदेह नहीं है और इस विश्वास के अनेक कारण है। मनुष्य ने जिस गति से अपने चारों ओर के वातावरण पर विजय प्राप्त की उसकी कल्पना भी नहीं की गयी थी। बैलगाड़ी और पालदार नाव से

लेकर रेलगाड़ी और जहाज तक प्रगति करने में हमें करीब पाँच हजार वर्ष लगे। अगला चरण था मोटर गाड़ियों और हवाई जहाजों का। इस तक पहुँचने में करीब एक सौ साल लगे और उससे अगला चरण था परमाणु युग का जहाँ वह केवल ~४० वर्ष में ही पहुँच गया और उससे अगले स्पूतनिक युग तक पहुँचने में केवल बारह साल लगे।

सञ्चार व्यवस्था में हुई असाधारण प्रगति से जानकारी के आदान-प्रदान और उसको व्यवहार में ले आने की गति बहुत बढ़ गयी है। जब लेइफ एरिक्सन नयी दुनिया में पहुँचे जिसे बाद में अमेरीका नाम दिया गया, तो बहुत कम लोग इस बात को जान पाये। सदियों बाद कोलम्बस ने सोचा कि अमेरीका की खोज सबसे पहले उसी ने की है। परन्तु जब स्पूतनिक 'एक' अन्तरिक्ष की नयी दुनिया में पहुँचा तो इस घटना का समाचार तत्काल सारी दुनिया में फैल गया। इस समाचार ने कृत्रिम उपग्रह की अपेक्षा कहीं जल्दी दुनिया का चक्कर लगा लिया।

जो सन्देह करते हैं उन्हें इतिहास ने कभी क्षमा नहीं किया है। जो व्यक्ति भाप से चलने वाली रेल की सम्भावना पर हँस दिया था क्योंकि वह समझता था कि मनुष्य का शरीर ३० मील फी-घंटे की रफ्तार को सहन नहीं कर सकेगा परन्तु जब वह यह कह रहा था उसी समय वह इससे कई गुना अधिक रफ्तार से यात्रा कर रहा था। वह उस समय तेज रफ्तार से घूमनेवाली धरती की सतह पर खड़ा था। यदि वह भूमध्य रेखा के समीप था तो उसकी रफ्तार कम से कम एक हजार मील प्रति घंटा थी।

इसमें सन्देह नहीं कि प्रगति का प्रदर्शन किया जाना चाहिए। परन्तु नित्य यह बात अधिक स्पष्ट होती जा रही है कि यह एक आध्यात्मिक और मानसिक प्रक्रिया है। विचार वास्तव में अग्रगामी होता है। हमने अपने पर स्वयं जो मानसिक प्रतिबन्ध लगा रखे हैं यदि एक बार वे टूट जायँ तो असाधारण बातें होने लगती हैं। मनुष्य कभी-कभी मछली की तरह व्यवहार करता है। इस सम्बन्ध में एक कहानी प्रचलित है। जब मछलियों के तालाब में से काँच की दीवार को हटा दिया गया तो मछलियों ने वहाँ से आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया जहाँ पर वह काँच की दीवार थी। जब कुछ को उस सीमा को तोड़कर आगे जाने को मजबूर किया गया तभी उन्होंने तालाब के उस हिस्से का इस्तेमाल करना शुरू किया।

आखिर अन्तरिक्ष में जाने से क्या लाभ? क्या केवल अपनी जिज्ञासा को मिटाने के लिए? नहीं, यद्यपि जिसे जिज्ञासा कहा जाता है उसमें कुछ महान् गुणों का समावेश है जैसे, नयी बात जानने की लालसा, ज्ञान प्राप्त कर आगे बढ़ने की इच्छा।

किपलिंग की एक कहानी है 'हाथी का बच्चा।' हाथी का बच्चा यह जानना चाहता था कि हाथी के पास सूंड कहां से आयी। उसकी अपनी सूंड बहुत छोटी थी। इस जिज्ञासा को शान्त करने की कोशिश में वह कई बार मुसीबत में फँसा, लेकिन इसी संघर्ष में उसे बहुमूल्य जानकारी भी प्राप्त हुई और उपयोगी सूंड भी। यही बात मनुष्यों पर भी लागू होती है। उनकी जिज्ञासा ने, उनके क्या और क्यों के उत्तरों ने उन्हें अनेक कठिनाइयों में डाला, उन्होंने बहुत साहसी कदम उठाये और आघात सहे। लेकिन इसके बाद उन्हें अपरिमित लाभ भी हुआ।

अन्तरिक्ष उसकी सबसे नयी अन्तिम सीमा है। सितारों की यात्रा का स्वप्न देखनेवाला नौजवान आज के युग में उस गुफावासी मानव के समान है जो यहां सोचा करता था कि पता नहीं उस पहाड़ी के पार क्या है और अन्त में उसने उस पहाड़ी पर चढ़ने की हिम्मत की और पार घाटी में एक नयी दुनिया खोज निकाली। ज्ञान हमेशा बुलाता रहता है। बड़े से बड़े खतरे, असफलताएँ और कायरतापूर्ण तर्क इन्सान को न कल्पना करने से कभी रोक सके, न उसकी जानने, जाँच करने और खोज करने की प्रवृत्ति को ही कुण्ठित कर सके। मनुष्य की प्रगति के इतिहास में बार-बार ऐसे मौके आये हैं। इससे पता चलता है कि इन्सान की यह प्रवृत्ति केवल जिज्ञासा ही नहीं है, यह कुछ और भी है, जो प्रकृति के नियमों या ईश्वर के नियमों से बहुत कुछ मेल खाती है।

धार्मिक विचारक इस बात में पुनः जागरण की प्रक्रिया देखेंगे। वे यह कहेंगे कि मनुष्य अपने को ईश्वर का प्रतिरूप और उसी की तरह बनाने की कोशिश कर रहा है। वह काल और दूरी के बन्धनों को तोड़ डालना चाहता है, क्या उसकी यह कोशिश इस बात से प्रेरित नहीं कि सच्चा आध्यात्मिक मनुष्य अपने परमपिता असीम और अनन्त आत्मा की तरह किसी सीमा में बँधा नहीं रह सकता? अनेक लोगों को भौतिक विकास के सिद्धान्तों की अपेक्षा यह बात मनुष्य की प्रगति को अधिक अच्छी तरह समझा देती है।

इस बात को जितनी अच्छी तरह समझा जायेगा अन्तरिक्ष के लिए हमारा पथ उतना ही सुगम हो जायेगा। इसमें परीक्षण की स्थितियों में होनेवाली अनेक गलतियों से बचा जा सकता है। जिस कारण से प्रगति होती है वह कष्टदायी नहीं हो सकता। यह अब कोई पत्थर की लकीर नहीं है कि किसी भी आविष्कार के लिए नब्बे प्रतिशत मेहनत करनी पड़ती है और प्रेरणा का अंश केवल दस प्रतिशत ही होता है। दो महान् लड़ाइयों की गर्मी और तथाकथित आविष्कार किये गये थे इसलिए सम्भव हो सके कि उस समय तक अज्ञात शक्तियों, गुणों और सम्भावनाओं को पहिचान कर उनका इस्तेमाल किया गया। अन्तरिक्ष में जो कल्याण होने की सम्भावना है उस पर प्रतिबन्ध कौन लगा रहा है?

अन्तरिक्ष युग इतनी जल्दी और सहसा शुरू हो गया कि हममें से अधिकांश अभी केवल उसकी संभावना की ही बात कर रहे थे। अनेक घरों में इस पर होने वाली बातचीत का अन्दाज निम्नलिखित वार्तालाप से लगाया जा सकता है :—

"बेटा, इस अन्तरिक्ष की बात में तुम्हारी इतनी दिलचस्पी क्यों है? यह तो केवल पक्षियों के लिए है। यदि तुम इस कल्पना की उड़ान के बजाय कुछ ठोस व्यावहारिक बात पर ध्यान दो, जैसे, भौतिक शास्त्र, रासायनिक शास्त्र इलैक्ट्रोनिक्स आदि तो शायद ज्यादा अच्छा होगा। देश के इंजीनियरों की आवश्यकता है।"

"परन्तु पिताजी, इन सब का तो अन्तरिक्ष की खोज के साथ गहरा सम्बन्ध है। अन्तरिक्ष की खोज के लिए इन सब की आवश्यकता होती है और इस खोज कार्य से इनके सम्बन्ध में और भी बातों का पता चलता है।"

"ठीक है, लेकिन मुझे तो प्लास्टिक की पोशाक पहन कर और भोजन के लिए गोलियां लेकर चन्द्रमा में नहीं जाना है।"

"आप ठीक कहते है, लेकिन पिताजी कुछ लोग जो इस काम में लगे है वह आपके लिए यह बात सम्भव बनाने में मदद कर सकते है कि आप टोक्यो में बैंकर्स की बैठक में भाग लेकर उसी सप्ताहान्त में घर लौट आएं।"

यहां इस सवाल का उत्तर निहित है कि अन्तरिक्ष हमारे लिए क्या कर सकता है?

अमरीकी करदाता जो राष्ट्रीय अन्तरिक्ष एजेन्सी के कार्य के लिए करोड़ो डालर दे रहे हैं, उनका इसके व्यावहारिक पक्ष में दिलचस्पी रखना स्वाभाविक है।

इसके कम से कम चार उपयोग तो अभी ही स्पष्ट है। जैसा कि उस लड़के ने कहा, एक उपयोग यात्रा के लिए हो सकता है। मनुष्य को अन्तरिक्ष में भेजने के लिए जो अनुसन्धान कार्य हो रहा है उसका राकेटों के विकास से घनिष्ठ सम्बन्ध है और इस धरती पर लम्बी से लम्बी यात्रा को कम से कम समय में कर सकने के लिए जेट विमानों के बाद राकेटों का नम्बर आयेगा।

दूसरा उपयोग सञ्चार व्यवस्था की गति को और तीव्र बनाने के लिए हो सकता है। उदाहरण के लिए, टेलीविजन के कार्यक्रम को अधिक दूर तक प्रसारित नहीं किया जा सकता। टेलीविजन कार्यक्रम दूर-दूर तक देखा जा सके, इसके लिए ऊँची बुर्जियों या टावरों का प्रयोग किया जाता है। ट्रान्समिशन के या ट्रान्समिशन को अधिक शक्तिशाली बनाने वाले और शक्ति चालित मशीनों से

देखकर यदि तीन उपग्रह अन्तरिक्ष में छोड़े जायँ तो टेलीविजन कार्यक्रम सारी दुनिया में दिखाया जा सकता है।

अन्तरिक्ष में भेजे गये यन्त्रों की सहायता से मौसम के सम्बन्ध में अच्छी जानकारी प्राप्त हो सकती है और इससे बहुत अधिक लाभ हो सकता है। यह आशा की जाती है कि कुछ ही वर्षों में मौसम के आज के मुकाबले कहीं अधिक पूर्ण और सही नक्शे तैयार किये जा सकेंगे। यह सब उपग्रहों की मदद से ही हो सकेगा।

और अन्त में इसका फौजी उपयोग भी है। यह अन्तरिक्ष-यान के लिए विकसित किये जाने वाले राकेट और प्रक्षेपास्त्रों के लिए तैयार किये जाने वाले राकेटों से और आगे की बात है। सबसे पहला कदम यह हो सकता है कि उपग्रहों से टोह ली जाय। उपग्रहों में ऐसे कैमरे और अन्य यन्त्र फिट कर दिये जायेंगे कि वे ठीक मार्ग से गुजर कर आवश्यक सूचना देते रहेंगे। ऐसी मशीनें बन चुकी हैं जो सूचना का संग्रह कर निर्धारित समय पर या जब चाहा रेडियो संकेतों के द्वारा उस सूचना को प्रेषित कर सकती हैं।

परन्तु कुछ ही दशाब्दि पूर्व एक ब्रिटिश प्रधानमन्त्री ने सेना की माँगों की आलोचना करते हुए कहा था कि "जनरल तो हमेशा यही चाहते हैं कि चन्द्रमा पर किलेबन्दी कर ली जाय।"

"दि क्रिश्चियन साइन्स मानीटर की संस्थापक मेरी बेकर एड्डी काफी दूरदर्शी थीं, उनकी नजरें आज की सम्भावनाओं पर लगी थीं। उन्होंने लिखा, "ज्योतिर्विद् अब सितारों की ओर नहीं ताका करेंगे—वे सितारों से इस दुनिया की ओर झाँका करेंगे......"—साइन्स एण्ड हेल्थ विथकी टु दि स्क्रिप्चर, पृ० १२५।

अन्तरिक्ष का हमारे विचारों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? कुछ मानवीय समस्याओं से बचने के लिए अन्तरिक्ष की शरण ले सकते हैं लेकिन वह यह शरण नहीं दे सकता। परन्तु वह हमारे विचारों की सीमाओं को उन्मुक्त कर सकता है, हमारा दृष्टिकोण व्यापक बना सकता है और उससे दुनिया के झगड़ों को कम करने में मदद मिल सकती है। ये हमें हमारी क्षुद्रता से झकझोर कर ऊपर उठा सकता है और सेमुएल लांगफेलो की कविता "विस्तृत क्षितिज का सुन्दर दृश्य" में नये अर्थ भर सकता है। सितारों की दुनिया के साथ कबीलापरस्ती और प्रान्तीयता की संकीर्णताओं के लिए कोई जगह नहीं रह जाती।

यह प्रसन्नता की बात है कि कृत्रिम उपग्रहों को छोड़ने का और अन्तरिक्ष का पहला अनुभव अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष के गैर फौजी कार्यक्रम में अन्तर्गत

हुआ। कम से कम इतना अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग कायम रखने के लिए यदि सम्भव हो तो संयुक्त राष्ट्रसंघ के द्वारा कुछ व्यवस्था करना अत्यन्त आवश्यक है। इसमें असफल रहे तो फिर खतरे साफ है—परिणामों की परवाह किये बिना कोई फौजी कदम उठ सकता है और इससे युद्ध की सम्भावना पैदा हो सकती है। यदि यह सन्देह न भी किया जाय कि इन कृत्रिम उपग्रहों में उद्जन बम रखे हुए हैं और कभी भी उनको गिराया जा सकता है, तब भी यह सन्देह तो किया ही जा सकता है कि इन उपग्रहों से जासूसी की जा रही है। आकाश में कितनी ऊँचाई तक राष्ट्र की प्रभुसत्ता का दावा किया जा सकता है? वे कौन से नियम हैं जिनके अनुसार इस आकाश का उपयोग किया जा सकता है? क्या वहाँ भी उपनिवेश है या होंगे?

अन्तरिक्ष में इस नयी स्वतन्त्रता का पूरा उपयोग करने के लिए केवल काल और दूरी के सम्बन्ध में ही नहीं बल्कि मनुष्य के सम्बन्ध में भी जागरूक रहना पड़ेगा अन्यथा वे इस असीम नयी दुनिया में भी अपनी उस क्षुद्रता घृणा, लोभ, भय और वासना को पहुँचा देंगे जिससे वे इस पुरानी दुनिया में बुरी तरह ग्रस्त है।

लेकिन हम इस भार से उसी तरह मुक्त हो सकते हैं जिस तरह प्रगति के मार्ग में बाधक किसी भौतिक बाधा से। हम जिस हद तक ईश्वर के पुत्र के रूप में, उस एक परमात्मा की सन्तान के रूप में जो सर्वव्यापी है और जो इस समस्त ब्रह्माण्ड पर शासन करता है, अपनी सच्ची विरासत को समझ पायेंगे उसी हद तक हम उस सर्वशक्तिमान् के राज्य के उन आश्चर्यों का आनन्द उठा सकेंगे जो अन्तरिक्ष की हमारी कल्पना में भी अभी तक अज्ञात है।

यह हृदय को प्रफुल्लित करने वाली और साथ ही संयमित करने वाली सम्भावना है। जो क्षितिज एक बार खुल गया वह फिर बन्द नहीं होता। लेकिन यह विजय इतनी शीघ्र प्राप्त नहीं हो सकती। अमेरिका, उसके मित्र राष्ट्र और उसके प्रतियोगी अपनी तकनीकी सीमाओं को लाँघ नहीं सकते, वे अपने अनुसन्धान कार्य की गति को एकदम तेज नहीं कर सकते, बजट की सीमाओं से बाहर नहीं जा सकते और न अपनी जनता की राजनीतिक समझ की उपेक्षा कर सकते है।

अन्तरिक्ष पर विजय प्राप्त करने के काम पर बहुत अधिक धन खर्च होगा। अनुमान लगाया गया है कि इस पर अरबों डालर खर्च करने के बाद ही यह सम्भव हो सकेगा कि मनुष्य अपने अन्तरिक्ष-यान के साथ शान से मंगल तक पहुँचे। इस होड़ में केवल वही धनी राष्ट्र हिस्सा ले सकता है जिसकी वार्षिक

आमदनी ५० करोड़ डालर से अधिक हो। इस बात की अधिक सम्भावना है कि इस परियोजना के लिए सभी मित्र राष्ट्र योगदान करें। या हो सकता है कि राष्ट्र-संघ के तत्वावधान में एक विश्व-संगठन यह कार्य अपने हाथ में ले।

सोवियत संघ, रूस काफी लम्बे समय से इस काम में लगा है। १६०३ में सेन्ट पीटर्सबर्ग के डा० के० ई० सियोलकोवस्की तरल ईंधन से चलने वाले इंजन की रूपरेखा तैयार करने में लगे हुए थे। सोवियत संघ ने जितने शक्तिशाली रॉकेट बना लिये हैं उनसे पता चलता है कि इस अन्तर्ग्रहीय खेल में बहुत बड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ेगा।

इन शान्तिकालीन अन्वेषणों का नेतृत्व कौन करेगा? वैसे यह बात कुछ दुखद है लेकिन सच यही है कि वे महान् व्यक्तिवादी और हमेशा सक्रिय रहने वाले अग्रदूत जिन्होंने कुत्तों की सहायता से ध्रुव प्रदेशों की यात्रा की, जो सबसे पहले अफ्रीका में प्रविष्ट हुए और जिन्होंने गोबी के रेगिस्तान को रौंद डाला, इस अन्तरिक्ष-अन्वेषण के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकेंगे। क्योंकि इसकी आवश्यकता भिन्न है। इस खोज के लिए एक टीम की तरह सहयोग से काम करने की आवश्यकता पर और तकनीकी ज्ञान पर विशेष जोर दिया गया है।

इसके लिए भौतिकशास्त्री, इन्जीनियर, डाक्टर प्रभृति लोग, गणना करने वाली मशीनों (कम्प्यूटर्स) के काम में दक्षता प्राप्त लोग, गणित के सूत्रों से भली भाँति परिचित एवम् नये धातुविज्ञान और परमाणु-विज्ञान के विशेषज्ञ विभिन्न प्रकार की मशीनों और साज सामान से अनुसन्धान कार्य करते हैं और इसमें उन्हें सरकारों तथा बड़े-बड़े संस्थानों से सहायता एवम् समर्थन प्राप्त होता है।

गणित की भी सूक्ष्म परिशुद्धता के साथ अत्यन्त सावधानी और बारीकियों के साथ परीक्षण करते हुए जब वे आगे बढ़ते हैं तभी वे जटिल सवाल के क्षेत्र में प्रवेश कर पाते हैं।

फिर भी वे और साथ ही जो उनके काम को देख रहे हैं, पियरी और स्टेनली की तरह अवाक् कर देने वाले स्वप्न देखते रहते हैं।

उनका इरादा एक अन्तरिक्ष स्टेशन बनाने का है। यह स्टेशन ऐसा होगा जहाँ से अन्य ग्रहों की यात्रा की जा सकेगी। वह धरती और ग्रहों के बीच "रास्ते का स्टेशन" होगा। इस स्टेशन से वे खुली आँखों से सारे ब्रह्माण्ड को देखेंगे, वे धरती के पल-पल परिवर्तित वायुमंडल के धुंधलेपन को बेधने के लिये दूरबीनों का इस्तेमाल नहीं करेंगे।

—४—

यह अन्तरिक्ष स्टेशन किस प्रकार कायम किया जायेगा? अब तक ज्ञात तथ्यों के आधार पर एक विधि इस प्रकार है :—

स्थान— पृथ्वी से ४०० मील दूर ऊपर अंतरिक्ष में। कई मंजिला एक मिसाइल अभी-अभी पृथ्वी की कक्षा में चक्कर लगाने वाले दो अन्य मिसाइलों के साथ शामिल हो गया।

जब वे १८ हजार मील प्रति घण्टे की चाल से साथ-साथ चक्कर काट रहे हैं, तभी वह असाधारण नाटक शुरू होता है। अन्तिम नम्बर मिसाइल के अग्रभाग में से दो पंख वाले ग्लाइडर बाहर निकले और तेजी से समीप के टावरों की ओर मुड़ गये।

तत्काल इन दो ग्लाइडरों से अन्तरिक्ष की पोशाक पहने चार व्यक्ति बाहर निकले और कक्षा (आरबिट) में भारहीनता की स्थिति में तैरने लगे।

एक मिसाइल से दूसरे मिसाइल तक पहुँचने के लिए उन्होंने छोटी-राकेट-पिस्तौलें चलाईं और फिर दो बड़े टावरों के शिखरों तक पहुँच गये।

उन्होंने सावधानी से उनके अग्रभाग का खोल हटा दिया। सबसे बड़े मिसाइल को जो पहले से ही खाली खड़ा है, अन्तरिक्ष स्टेशन कायम करने के लिए तैयार कर लिया गया। दूसरा मिसाइल जो सामान से लदा हुआ है, खाली किया गया और जहां आदमी हैं वहाँ से मिसाइल तक इस सामान की लम्बी कतार बन गयी।

आदमी, मिसाइल, ग्लाइडर, सामान आदि सबको अन्तरिक्ष में एक साथ जोड़ दिया गया और फिर सब एक साथ कक्षा में चक्कर लगाने लगे। इस प्रकार अन्तरिक्ष में मनुष्य सहित एक उपग्रह स्थापित हो गया।

अन्तरिक्ष का यह नाटक हमारी पीढ़ी के रहते खेला जा सकता है। जिस तकनीकी ज्ञान से यह कार्य सम्पन्न होगा उस पर मनुष्य ने अच्छी तरह काबू पा लिया है। प्लेटफार्म पहले से ही मौजूद है। यह प्लेटफार्म है एटलस अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र, जो खोखला कर दिया गया है और उसमें आदमियों और यन्त्रों को रखा जा सकता है।

सान डियेगो में कानवेयर एस्ट्रोनाटिक्स के टेक्निकल डायरेक्टर के सहयोगी और अन्तरिक्ष की उड़ान के क्षेत्र में प्रभावशाली व्यक्ति क्राफ्ट ए० एहरिक का कहना है कि उन्हें यह मालूम है कि मनुष्य अन्तरिक्ष में यह प्लेटफार्म कब और कैसे कायम करेगा।

कब ? शीघ्र ही—दस वर्ष के अन्दर।

कैसे ? यह कुछ जटिल कहानी है। लेकिन इसको सुनने से ऐसा लगता है, जैसे कक्षा में स्थापित व्यक्ति की उड़ान का नाटकीय पूर्वदर्शन किया जा रहा हो।

गहन्रिक द्वारा तैयार किये गये उपग्रह के डिजाइन के अनुसार यह इस प्रकार होगा :—

इस प्लेटफार्म को अन्तरिक्ष में स्थापित करने के लिए कुछ सुधरे हुए तीन एटलस मिसाइलों की आवश्यकता होगी जिन्हें एक के बाद एक करके कुछ समय के अन्तर में अन्तरिक्ष में भेजा जायेगा। दुनिया के किसी एक स्थान से पहला एटलस मिसाइल, जिसका खोल खाली होगा, पृथ्वी से इस प्रकार ४०० मील ऊपर छोड़ा जायेगा जिससे वह कक्षा पर एक गोल घेरे के रूप में चक्कर काटने लगे। उसके मोटर को बन्द कर दिया जायेगा और वह अन्तरिक्ष स्टेशन की स्थापना के लिये स्थायी नींव का काम करेगा।

इस मिसाइल की दिशा आदि का ठीक-ठीक पता चलाकर उसे कक्षा में ठीक स्थिति में लाया जायेगा। इसके बाद आठ हजार पौण्ड सामान से लदा दूसरा एटलस मिसाइल छोड़ा जायेगा। राकेटों की सहायता से वह भी कक्षा में पहले एटलस मिसाइल के साथ शामिल हो जायेगा।

यह माल से लदा मिसाइल अपने पूर्ववर्ती मिसाइल से कुछ फुट पीछे चक्कर लगायेगा। यह छोटे कन्ट्रोल राकेटों द्वारा सञ्चालित होगा।

दोनों मिसाइल एक दूसरे की बगल में साथ-साथ पृथ्वी का चक्कर लगायेंगे। जैसे ही वह पृथ्वी का चक्कर लगाकर उस स्थान पर पहुँचेंगे जहाँ से उनकी यात्रा शुरू हुई, तीसरा एटलस छोड़ दिया जायगा। इस एटलस के अग्रभाग में मानव सहित दो ग्लाइडर होंगे, यह एटलस भी अन्य दो के साथ कक्षा में स्थापित हो जायेगा। उसके बाद फिर अन्तरिक्ष में मनुष्य और मिसाइल का अद्भुत नाटक शुरू हो जायेगा।

अन्तरिक्ष यात्री अपने रहने के लिए मालवाहक मिसाइल से रबर नायलोन का बना विशाल तम्बू खींच लेंगे। यह तम्बू ऐसा होगा जो जरूरत पड़ने पर मोड़कर रखा जा सके। इस तम्बू को वे एटलस टैंक के अग्रभाग में फिट कर देंगे।

पूरी तरह फुला लिये जाने पर इसमें चार स्तर होंगे। अग्रभाग में फव्वारे (शावर) सहित स्नानगृह होगा, दूसरे स्तर में एक छोटा कमरा और मनोरञ्जन का कक्ष होगा। तीसरे स्तर पर सोने का कमरा होगा और मिसाइल के मध्य-भाग के समीप एक कन्ट्रोल रूम और अन्तरिक्ष प्रयोगशाला होगी।

एटलस के खोल के बाकी आधे भाग में अन्तरिक्ष यात्री, पानी, संकट के समय काम में लाने के लिए बिजली की बेटरियाँ राकेट-प्रोपैलेन्ट, औजार, रिजर्व नाज सामान और यन्त्र आदि रखेंगे। निचले भाग में परमाणु बिजली का

मञ्च (प्लाट) होगा। एटलस के गोल के समीप आक्सीजन गैस के टंक लटके रहेंगे। एटलस के दोनों ओर दो ग्लाइडर बंधे होंगे जिनको अन्तरिक्ष की 'जीवन नौका' के रूप में या अन्तरिक्ष यात्रियों के पृथ्वी पर लौटने के लिए इस्तेमाल किया जा सकेगा।

छोटे राकेट मोटरों की सहायता से प्लेटफार्म को अन्तरिक्ष में उलटते-पलटते ले जाया जायेगा। यह प्रति मिनट ढाई बार करवट लेगा। उससे इतनी गुरुत्वाकर्षण शक्ति—'जी' का दसवां भाग—पैदा हो सकेगी जिससे अन्दर अन्तरिक्ष यात्रियों को ऊपर और नीचे का अन्दाज लग सकेगा और १८० पौण्ड वजन के आदमी का वजन १८ पौण्ड तक हो जायेगा।

उपग्रह में एक स्तर से दूसरे स्तर तक जाने के लिए सीढ़ियां नहीं होंगी केवल मेनहौल होंगे। १८ पौण्ड वजन वाला अन्तरिक्ष यात्री एक कमरे से दूसरे कमरे तक तैरता हुआ जा सकेगा।

अन्तरिक्ष यात्रियों के प्रवेश और बाहर निकलने के लिए भी एक द्वार होगा। चारों अन्तरिक्ष यात्री एक एयर लाक के द्वारा रेंगते हुए अन्दर या बाहर आ सकेंगे और वे जब चाहेंगे सितारों के साये में कक्षा में सैर करने के लिए बाहर भी निकल सकेंगे।

—२—

अन्तरिक्ष में इस तरह की सैर करने के लिए जिस प्रकार की तैयारी की आवश्यकता है उससे अन्तरिक्ष की यात्रा करने वाले और अन्य उड़ाकू लोग परिचित होते जा रहे हैं। आज मनुष्य जिस ऊंचाई पर उड़ रहा है वहां की हालत में और उससे आगे बढ़ जाने पर अन्तरिक्ष की हालत में अधिक अन्तर नहीं है।

इसीलिए टेक्सास में सान एन्टोनियो के रेन्डोल्फ एयर फोर्स के अड्डे पर अमेरीकी वायुसेना के उड्डयन चिकित्सा के स्कूल में गत दस वर्षों से अन्तरिक्ष यात्रा के मानव पक्ष का अध्ययन किया जा रहा है। यह अध्ययन कार्य जर्मन चिकित्सक तथा दार्शनिक डा० ह्यूबर्टस स्ट्रगहोल्ड की देखरेख में चल रहा है। डा० ह्यूबर्टस स्ट्रगहोल्ड ने अन्तरिक्ष-चिकित्सा के कार्य में पहल की है और इस विषय के अधिकारी विद्वान् के रूप में वे विश्व भर में प्रसिद्ध हैं।

सन् १९५१ में डा० स्ट्रगहोल्ड और उनके साथियों ने १० से १२० मील की ऊँचाई में वायुमण्डल के अन्दर मानव शरीर को प्रभावित करने वाले अन्तरिक्ष के समान गुण वाले विभिन्न स्तरों की खोज की। उसी साल "जर्नल आफ एविएशन मैडिसन" में एक निबन्ध प्रकाशित हुआ जो बाद में इस विषय का अद्वितीय अनुसन्धान दस्तावेज माना गया।

निबन्ध का शीर्षक था "अन्तरिक्ष कहाँ से प्रारम्भ होता है ?" इसे डा० स्ट्रघोल्ड, हैन्ज हैबर, कोनार्ड ब्यूटनर और फ्रिट्ज हैबर ने तैयार किया।

इस निबन्ध में कहा गया है कि "जहाँ तक पृथ्वी का सम्बन्ध है अन्तरिक्ष की सीमा उन क्षेत्रों से जानी जाती है, जहाँ वायु का अंश समाप्त हो जाता है और उसके आगे शून्य होता है, अर्थात् यह पृथ्वी की सतह से ७५० से १०० मील की ऊँचाई पर यह स्थिति होती है। अन्तरिक्ष की सीमाओं की परिभाषा इस प्रकार भी की जाती है कि "वह क्षेत्र जहाँ नक्षत्र लोक का गुरुत्वाकर्षण इतना कम हो जाता है कि वह नहीं के बराबर हो जाता है, उसे अन्तरिक्ष कहते हैं।"

निबन्ध में कहा गया है कि अन्तरिक्ष में मानव सहित राकेटों की उड़ान पर विचार करते समय अन्तरिक्ष के सम्बन्ध में यह मान्यता भ्रामक सिद्ध होती है। इस समस्या पर इस आधार पर विचार किया जाना चाहिए कि वायुमण्डल का मनुष्य और उनके विमान पर क्या प्रभाव पड़ता है या इसे इस प्रकार कहा जा सकता है कि मनुष्य और विमान की उड़ान में वायुमण्डल का क्या काम होता है।

इस सम्बन्ध में वायुमण्डल के तीन महत्वपूर्ण कार्य होते हैं :—सांस लेने के लिए और जलवायु के लिए हवा की पूर्ति, कास्मिक किरणों आदि के प्रभाव से पृथ्वी की रक्षा करने के लिए छलनी का काम करता है और विमान को उड़ने में मदद करता है।

यदि कोई उस ऊँचाई पर उड़े जहाँ वायुमण्डल इन तीनों में से कोई एक कार्य न कर सकता हो तो इसका अर्थ यह हुआ कि व्यावहारिक दृष्टि से उसने अन्तरिक्ष में प्रवेश करना शुरू कर दिया है। यही इस निबन्ध का मुख्य आधार है।

ये ही अनुसन्धान अब अन्तरिक्ष चिकित्सा विज्ञान का नया आधार बन रहे हैं। अन्तरिक्ष तथा अन्तरिक्ष के निकट के क्षेत्र का उड़ाकू पर मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक प्रभाव का ही नाम अन्तरिक्ष चिकित्सा-विज्ञान है।

१९५१ में ही मेजर जनरल ओटिस ओ० बेन्सन, जूनियर ने उड्डयन चिकित्सा स्कूल के कमान्डेन्ट के रूप में अपने पहले दौरे के समय यह कहा था कि "विमान-चालकों को अक्सर ऐसे वायुमण्डल का सामना करना पड़ता है जिनके विस्तार आदि का अभी तक सही-सही नक्शा तैयार नहीं किया जा सका है।"

हाल ही "आर्मी-नेवी-एयर फोर्स जर्नल" में जनरल बेन्सन ने स्कूल का

दूसरा दौरा करने के बाद लिखा है कि "वायुसेना अब द्वितीय विश्व युद्ध के समय की वायुसेना नहीं रही। उसके इंजन-पावर से चलने वाले विमानों को बदलकर एकदम जेट विमानों की सेना खड़ी कर दी गयी है। गैरफौजी उड्डयन में भी शीघ्र ही जेट विमानों का इस्तेमाल होने लगेगा।" यही नहीं, जनरल बेन्सन ने लिखा कि इसी अवधि में एक और परिवर्तन शुरु हो गया है। यह परिवर्तन है जेट विमानों के स्थान पर राकेटों का प्रयोग।

मनुष्य उन क्षेत्रों में अनुसन्धान करने लगा है जहाँ पहले उसका पहुँचना सम्भव नहीं था और वह स्वयं वहां जाकर वहां की स्थिति का अध्ययन नहीं कर सकता था। अन्तरिक्ष में किये गये अनुसन्धान कार्य से वायुसेना के दल अब उन तथ्यों की जाँच करने में समर्थ हो गये हैं जो जनरल बेन्सन के शब्दों में ऊँचाइयों का शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव जानने के लिए यन्त्रों द्वारा किये गये अनुसन्धानों और कम दबाव वाले कक्षों में अन्य उपकरणों की सहायता से किये गये प्रयोगों से अब तक संग्रहीत किये गये।

अनुसन्धानकर्त्ता अज्ञात क्षेत्र के सम्बन्ध में अधिक से अधिक जानकारी प्राप्त करने से अपना काम शुरू करते हैं जिससे विमान चालक उस क्षेत्र में पहला सम्पर्क होने पर सुरक्षित रह सके और उसे किसी प्रकार की क्षति न पहुँचे। फिर वे चालक द्वारा अपनी प्रथम उड़ान में संग्रहीत तथ्यों की जाँच करते हैं जिससे बाद में चालकों की नियमित उड़ानों में पूर्ण सुरक्षा निश्चित हो सके और कार्य-क्षमता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े।

जनरल बेन्सन ने बताया है कि उड्डयन चिकित्सा स्कूल अपने अन्तरिक्ष चिकित्सा विभाग के द्वारा मनुष्य की अन्तरिक्ष की उड़ान का युग आरंभ होने के काफी पहले अपनी तैयारी पूरी कर चुका है। अभी मनुष्य अन्तरिक्ष में नहीं पहुँचा लेकिन वहाँ की स्थिति और प्रभावों की काफी जानकारी प्राप्त की जा चुकी है।

जनरल बेन्सन और उनके अनुसन्धानकर्त्ता-दल को यह मालूम है कि वायु-मण्डल के ऊपरी विरल-स्तर का मानव शरीर पर जो प्रभाव पड़ता है वह काफी गम्भीर समस्या है। इस समय ये सीधे अन्तरिक्ष में पहुँचने में बाधक बनी हुई है।

जनरल ने कहा है कि, "हम जब तक इन खतरों से सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था नहीं कर लेते तब तक चालक को इनका सामना करने के लिए अनुमति नहीं देंगे। इन समस्याओं का अध्ययन करने का हमारा उद्देश्य है कि इन पर विजय पायी जाय।"

स्कूल में और अन्यत्र शरीर विज्ञान के विशेषज्ञों ने अपना काफी समय उस विषय का अध्ययन करने में लगाया जिसे उन्होंने उपयोगी चेतना का समय नाम

दिया। "आर्मी नेवी-एयरफोर्स जर्नल" में जनरल बेन्सन ने इस सम्बन्ध में अपने लेख में लिखा है कि, "यदि काफी ऊँचाई पर चालक के केबिन का दबाव एकाएक खत्म हो जाय तो चालक के पास कुछ 'अतिरिक्त समय' होता है जिसमें वह अपनी सुरक्षा के लिए आवश्यक कार्रवाई कर सकता।"

जनरल के कथनानुसार यह पता लगाया गया है कि ५२००० फुट या दस मील की ऊँचाई पर यह 'अतिरिक्त समय' उस चालक के लिए भी करीब १२ सेकिंड रह जाता है जो शुद्ध आक्सीजन में साँस ले रहा है। इस ऊँचाई के बाद चालक चाहे और जितनी ऊँचाई पर उड़े, यह अतिरिक्त समय १२ सेकिंड बना रहता है।

इसका कारण समझाते हुए जनरल बेन्सन ने लिखा है कि, "दस मील के ऊपर कहीं भी कम दवाब में फेफड़ों में भरपूर मात्रा में कार्बन-डाइ-आक्साइड गैस और वाष्प भर जाती है, इसलिए चालक आक्सीजन नहीं खींच पाता। फिर भी उसके रक्त व शिराओं में इतनी काफी आक्सीजन रहती है कि वह बारह सेकिंड तक जीवित रह सकता है। यदि उसे अंतरिक्ष की गहराइयों में विस्फोटक विघटन की स्थिति का सामना करना पड़े तब भी उसके पास आत्मरक्षा के लिए बारह सेकिंड का समय रहता है।"

इसके अलावा और भी समस्याएँ है जिनको अनुसन्धानकर्ता लगन से हल कर रहे हैं। इनमें अल्ट्रावाइलेट विकीरण का, कास्मिक किरण, ताप-विकीरण, प्रकाश के विकराव और ध्वनि का मनुष्य के शरीर पर प्रभावों की समस्याएँ शामिल हैं। इनको हल करने में उन्हें सफलता मिली है। भारहीनता की विचित्र स्थिति भी इन्हीं समस्याओं के अन्तर्गत आती है। इन समस्याओं का अनेक अनुसन्धान-प्रयोगशालाओं में अध्ययन किया जा रहा है।

जैसे-जैसे अन्तरिक्ष में उड़ान का दायरा बढ़ता जा रहा है, जैसे-जैसे यह दूरी बढ़ती जा रही है, मनुष्य इन समस्याओं को उसी तेजी से हल करने की कोशिश कर रहा है। वायुसेना दस से बारह मील की ऊँचाई पर उड़ान को अन्तरिक्ष की उड़ान कहती है। डा० स्ट्रगहोल्ड भी इस बात पर जोर देते है कि अंतरिक्ष की 'उड़ान' और अन्तरिक्ष की 'यात्रा' में भेद करना चाहिए।

उनके मतानुसार अन्तरिक्ष की 'यात्रा' या 'अन्तर्ग्रहीय उड़ान' ही आनेवाले कल की योजना है। अन्तरिक्ष की 'उड़ान' राकेट की शक्ति से चलने वाले यानों द्वारा वर्तमान में की जा रही है। ये यान अल्प समय के लिए वायुमण्डल की ऊपरी सतह को छूकर फिर पृथ्वी पर लौट आते है।

रेन्डोल्फ के अनुसन्धानकर्ताओं ने यह पता लगाया है कि समुद्र की सतह पर

जितना दबाव होता है केबिन में अधिक से अधिक उसका आधा दबाव ही रखा जा सकता है या जो १८ हजार फुट की ऊँचाई पर होता है। डिजाइन बनाने वाले इंजीनियरों का कहना है कि केबिन के ढांचे की दृष्टि से इतना दबाव रख सकना व्यावहारिक है।

आदमी आसानी से काम कर सके, इसको सम्भव बनाने के लिए इंजीनियरिंग की जिन समस्याओं को हल करना है, उनमें चालक के फेफड़ों से कार्बन डाई-आक्साइड और वाष्प की अधिक मात्रा का निकालना, बन्द कक्ष में चालक के शरीर की क्रिया से बढ़े तापमान पर नियंत्रण रखना, मलमूत्र आदि की सफाई, और राकेट में बड़ी मात्रा में पीने का पानी ले जाने के बजाय प्रयुक्त तरल द्रव्य को पुनः इस्तेमाल करने की व्यवस्था आदि शामिल है।

इन और अन्य अनेक समस्याओं के बावजूद रैण्डोल्फ के विशेषज्ञ इस बात पर जोर देते हैं कि यदि उनसे बाह्य अन्तरिक्ष में चलने वाले यान के लिए एक ऐसा केबिन बनाने को कहा जाय जिसमें आदमी रह सकता हो, तो वे ऐसे केबिन के लिये आवश्यक सामग्री आदि का पूरा विवरण दे सकते हैं जिसे इंजीनियर बना सकेंगे। उनका कहना है कि उद्देश्य केवल यही नहीं है कि चालक जीवित रहे। केबिन इस प्रकार का होना चाहिए जो हर दृष्टि से पूर्ण हो और चालक की सुरक्षा की दृष्टि से श्रेष्ठ हो, उसमें उसे काम करने में कोई कठिनाई महसूस न हो, वह आराम से काम कर सके और जैसे ही यान अन्तरिक्ष के अज्ञात क्षेत्र में प्रवेश करे, चालक को किसी प्रकार की परेशानी का सामना करना न पड़े।

यदि जनसाधारण को अन्तर्ग्रहीय समय-चक्र की विचित्र स्थिति बतायी जाय तो उसे अन्तरिक्ष की उड़ान की समस्या में एक मनोरंजक पहलू भी दिखायी देगा। जब कोई व्यक्ति कई लाख मील प्रति सेकिंड की रफ्तार से यात्रा आरम्भ करे तो अनेक आश्चर्यजनक बातों का होना स्वाभाविक है। इस तेज रफ्तार में ऐसा लगता है कि समय बहुत लम्बा हो गया है और यदि प्रकाश की गति के बराबर हो गयी है। समय तो ऐसा लगेगा जैसे वह 'स्थिर' है।

पृथ्वी से दूर जाते ही दुनियां की चीजें धुंधली पड़ती जाती हैं, चारों ऋतुएँ लम्बी हो जाती हैं, मिनट और घण्टे लम्बे हो जाते हैं। यात्री प्रकार कम खायेगा, कम सोयेगा, यहाँ तक कि उसकी नाड़ी की गति भी धीमी पड़ जायेगी।

रोशनी को यहाँ से दूसरे बड़े नक्षत्र-मण्डल तक पहुँचने में दस लाख वर्ष लगते हैं, फिर भी उन लोगों के मतानुसार जो इस विषय के ज्ञाता हैं, अन्तरिक्ष यात्री अपने जीवन काल में ही वहाँ पहुँच जायेगा। इसका कारण (जिसे वे बहुत सामान्य कहते हैं) यह है कि इस धरती पर दस लाख वर्षों से हमारा जो तात्पर्य होता है, अन्तरिक्ष में भी यात्री को वैसा ही महसूस हो यह आवश्यक नहीं

है (यहीं इस रहस्य की कुंजी छिपी है) बशर्ते वह यात्री काफी तेज गति से यात्रा कर रहा हो।

यदि कोई व्यक्ति यहाँ से एण्ड्रोमीडा की यात्रा करे तो पृथ्वी के प्रेक्षक को ऐसा प्रतीत होगा कि वह दस लाख वर्ष से भी अधिक समय में वहाँ पहुँचेगा। लेकिन यदि वह एण्ड्रोमीडा जाकर वहाँ से लौटे तो उसे मालूम होगा कि पृथ्वी इस बीच बीस लाख वर्ष से भी अधिक पुरानी हो चुकी है। परन्तु दिलचस्प बात यह है कि वह इस यात्रा को अपने जीवन काल में ही पूरा कर लेता है।

इसलिए अनेक लोग यह पूछने लगे हैं कि यदि सप्ताहान्त में अन्तरिक्ष की यात्रा की जाय तो क्या वर्ष पिछड़ जायेंगे। यदि कोई व्यक्ति अन्तरिक्ष की यात्रा करे तो क्या वह वहाँ से पहले से अधिक जवान, ताजगी लिये हुए और उमंग से भरे हुए लौटेगा ? आप यह समझेंगे कि इस सवाल का उत्तर 'हाँ' या 'नहीं' में दिया जा सकता है। लेकिन बात ऐसी नहीं है। न्यूयार्क के अनेक उच्चकोटि के भौतिकशास्त्रियों ने एक संवाददाता को बिना कोई वचन दिये इस विषय पर विश्व की यात्रा करायी।

ऐसा प्रतीत होता है कि यदि कोई व्यक्ति अन्तरिक्ष में बहुत तेज रफ्तार से यात्रा करे—लेकिन यह रफ्तार असम्भव नहीं होनी चाहिए—तो उसके लिए समय की गति अवश्य मन्द पड़ जायेगी। परिणाम-स्वरूप यदि कोई व्यक्ति प्रकाश की गति की दो तिहाई रफ्तार से गगनमण्डल के सबसे अधिक प्रकाशमान् सितारे सिरिस की यात्रा करने के बाद धरती पर लौटे तो उसे मालूम होगा कि यहाँ उसकी १८ वर्ष से अनुपस्थिति दर्ज है लेकिन उसने यह यात्रा इससे पाँच या छह साल कम समय में ही पूरी कर ली।

माना कि आपने भी सिरिस की यात्रा की तो क्या आप पाँच-छह साल छोटे होकर धरती पर उतरेंगे ? यदि पृथ्वी के हिसाब से मिलान किया जाय तो सापेक्षिक दृष्टि से यह बात सही है। परन्तु जीव-विज्ञान की दृष्टि से आपकी उम्र बढ़ी है या नहीं, यह विवाद का प्रश्न है।

लेकिन यह सब होने से पहले आप यह जानकर प्रसन्न होंगे कि उन सब बातों के सम्बन्ध में पर्याप्त अनुसन्धान कार्य कराया जाना चाहिए जिससे आपकी यात्रा आरामदायक हो सके—यात्रा सम्भव होने की बात कहना अनावश्यक है।

—४—

जैसा कि हम देख चुके हैं, अन्तरिक्ष यान से यात्रा करने वाले व्यक्ति के लिए आवश्यक हर बात पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। स्वयं यान के सम्बन्ध में खोज कार्य तेजी से चल रहा है।

आदमी किस प्रकार उड़ेगा ? वह किस प्रणोदन प्रणाली से चालित यान पर सवार होकर अन्तरिक्ष की सैर करेगा ?

वर्तमान रासायनिक राकेट, जिनकी प्रणोद शक्ति बहुत अधिक है और जो काफी बड़े तथा बहुत शोर करने वाले हैं, आदमी को कितनी ऊँचाई तक ले जा सकते है ? वह परमाणु शक्ति से चालित वाहन पर कब और कहाँ सवारी कर सकेगा ? अन्तरिक्ष में कहाँ पर वह अणु के सक्रिय कणों से, सूरज और आर्क ताप से अपने यान के लिए प्रणोदन शक्ति प्राप्त करने लगेगा ?

ये और इस तरह के अनेक नाटकीय प्रश्न है और दुनिया भर के अन्तरिक्ष-विज्ञान (एस्ट्रोनाटिक्स) विशेषज्ञ इन सवालों का हल खोजने में लगे हुए है।

मिसाइल किस शक्ति से उड़ता है ?

न्यूटन ने तीन सदी पहले इस बात को समझाया था। उन्होंने कहा कि प्रत्येक क्रिया की विरोधी दिशा में उसके बराबर ही प्रतिक्रिया भी होती है। इस नियम पर प्रणोदन प्रणाली आधारित है।

व्यवहार में इसका साधारण अर्थ यह होता है कि यदि आप प्रणोद कक्ष (थ्रस्ट चेम्बर) के पिछले सिरे से तीव्र गति से ताकत का प्रयोग करते हैं, उदाहरण के लिए गैस छोड़ते हैं, तो इसकी प्रणोद कक्ष के सामने वाले हिस्से के विरुद्ध उसके बराबर लेकिन विपरीत दिशा में प्रतिक्रिया होगी; सामने वाले हिस्से को यह ताकत उसी जोर से आगे की ओर धकेलेगी। यदि सामने वाले सिरे पर राकेट लगा हुआ है तो वह निश्चय ही आगे की ओर जायेगा।

एक प्रणोदन प्रणाली और दूसरी प्रणाली में केवल इसी प्रतिक्रिया के दबाव को पैदा करने की भिन्न विधि के कारण भिन्नता आती है।

आज उड़ान के लिए जो भी प्रणोदन प्रणाली इस्तेमाल की जाती है, उसके लिए रसायनों का इस्तेमाल किया जाता है। ये रसायन ठोस भी हो सकते है और द्रव भी। द्रव रसायन से चलने वाले इंजन में, जैसा कि एटलस अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र में है, प्रणोद कक्ष में आक्सीडाइजर अथवा द्रव आक्सीजन भर दी जाती है और वहाँ वह हाइड्रोकार्बन ईंधन से मिल जाती है। दोनों से आग पैदा होने से गैस कक्ष के पिछले सिरे से बहुत तेज गति से बाहर को निकलती है। अगले भाग पर इसकी बराबर की परन्तु विरोधी दिशा में प्रतिक्रिया होती है। और एटलस अपने प्रक्षेप मञ्च से मुक्त होकर उड़ जाता है।

अन्तरिक्ष में उड़ान भरने के लिए पहले यही दो प्रणोदन प्रणालियाँ काम में लायी जा सकेंगी। इन प्रणालियों में काफी शक्तिशाली प्रणोद शक्ति पैदा की जा सकती है। इससे दस लाख पौण्ड की प्रणोद शक्ति पैदा हो सकती है जो किसी मिसाइल को अन्तर्ग्रहीय ऊँचाइयों तक पहुँचाने के लिए पर्याप्त है।

प्रणोदन विशेषज्ञों का मत है कि रासायनिक शक्ति से चालित राकेटों को सुधार कर और बढ़िया ईंधन का इस्तेमाल करके पृथ्वी से लाखों मील दूर शुक्र और मंगल तक भेजा जा सकता है।

ये यान को पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के प्रभाव से छुड़ाने के लिए बहुत उपयोगी हैं। इनकी प्रणोद शक्ति और तीव्र गति इनकी उड़ान और इनको उतारे जाने के लिए बहुत उपयुक्त है।

लेकिन असीम अन्तरिक्ष में जाने के लिए अनेक राकेटों की आवश्यकता पड़ेगी। एक के ऊपर एक रखे हुए अनेक राकेटों की क्रम से छूटने की व्यवस्था करनी होगी या नया ईंधन पहुँचाते रहने की जटिल व्यवस्था करनी होगी। एटलस की तरह के रासायनिक राकेटों में दो मिनट में इतना ईंधन लग जाता है जिससे बड़ी से बड़ी कार की टंकी भरी जा सकती है। इसीलिए विशेषज्ञ यह कहते हैं कि प्रणोदन की कोई और प्रणाली खोजनी होगी।

वर्तमान में केवल दो प्रणालियाँ ऐसी हैं जो अन्तरिक्ष विज्ञान की रीढ़ बन सकती हैं—इनमें से एक है परमाणु और दूसरी आयन प्रणाली। ये दोनों ही प्रणालियाँ पूर्णतया व्यावहारिक मानी जाती हैं और इनके शीघ्र ही सुलभ बना लिये जाने की सम्भावना है।

परमाणु विखण्डन से चालित राकेट सीमित दूरी तक ही जा सकते हैं। वे जुपीटर और शनिग्रह तक जा सकेंगे। दूसरी ओर आयन राकेट सिद्धान्ततः सम्पूर्ण अन्तरिक्ष की यात्रा कर सकेंगे और दूर-दूर के नक्षत्र मण्डल उनकी पहुंच के अन्दर होंगे।

परमाणु प्रणाली के राकेटों से सैद्धान्तिक रूप में वर्तमान रासायनिक राकेटों से दस गुना अधिक भार को उड़ाया जा सकेगा और ये कई टन का भार केवल एक मंजिला राकेट से ही अन्तरिक्ष में पहुँचा देंगे।

यही नहीं, इनकी प्रणोद शक्ति भी रासायनिक राकेटों की प्रणोद शक्ति की दुगनी से अधिक होगी। मंगल का एक चक्कर काटकर वापस आने में रासायनिक राकेट को तीन साल का समय लग सकता है लेकिन परमाणु राकेट इस यात्रा को एक वर्ष में ही पूरा कर लेगा।

परमाणु प्रणाली में राकेट में परमाणुओं को विभाजित करने वाली भट्टी, लगी होगी जो द्रव अमोनियाँ, हेलियम या हाइड्रोजन को इतना गरम करेगी कि द्रव का वाष्पीकरण हो जायगा और इस गैस का पीछे के रास्ते से तेजी से निकास किया जायेगा।

रासायनिक और परमाणु प्रणोदन प्रणालियों से यान को धरती से उठाकर वायुमण्डल की ठीक के बाहर तक पहुंचाया जा सकता है। लेकिन ऊपरी

अन्तरिक्ष की आवश्यकताऐं कुछ भिन्न है। वहाँ राकेट को प्रणोद शक्ति की कम और स्थिर रहने की अधिक आवश्यकता होती है। चूंकि अन्तरिक्ष में प्रायः शून्य की-सी स्थिति है और तनिक से धक्के से राकेट की गति इतनी तेज हो सकती है कि उस पर सहसा विश्वास नहीं होगा। इसके साथ ही अन्तरिक्ष में मशीन ऐसी होनी चाहिए जो कई दिनों और महीनों तक लगातार चक्कर काटती रह सके।

आयन राकेट को अन्तरिक्ष में कुछ पौंड प्रणोद शक्ति से कई हजार मील प्रति घंटे की रफ्तार से चलाया जा सकता है। इसके प्रणोद कक्ष से गैस के बजाय विद्युन्मय आयन कण निकलते रहेंगे जो सम्भवतः परमाणु भट्ठी की क्रिया से उत्पन्न हुए होंगे।

यह समझा जाता है कि आयन राकेट शीघ्र ही बन जायेगा। प्रणोदन विशेषज्ञ, जैसे श्री एहरिक का कथन है कि अगली दो दशाब्दियों में ही आयन राकेट बना लिये जायेंगे।

अन्य प्रणालियाँ भी तो है जैसे सौरशक्ति, आर्क ताप और रहस्यमय, मुक्त और सक्रिय परमाणु-कण शक्ति। इनका क्या होगा? प्रणोदन विशेषज्ञों का यह मत है कि ये सभी सम्भावनाएँ है, लेकिन इनमें कुछ गम्भीर त्रुटियाँ भी है।

सौरशक्ति से चालित राकेट बड़े-बड़े आइनों की सहायता से सूर्य की विकीरण शक्ति का संग्रह करके प्रणोद शक्ति उत्पन्न कर सकते हैं। इस विकीरण शक्ति से हाइड्रोजन या हीलियम को गरम किया जायेगा और उसकी नलियों के द्वारा बहुत तेजी से निकासी की जायेगी।

अणु के मुक्त और सक्रिय कणों (रेडिकल) से चालित राकेट भी सौर शक्ति चालित राकेटों की तरह अन्तरिक्ष में ही शक्ति प्राप्त करेगा।

वाह्य अन्तरिक्ष में इन रेडिकलों को तोड़ा जायेगा और अपने मूल कणों से मिलने की इनकी सक्रियता से बहुत अधिक शक्ति पैदा होगी। यदि इस शक्ति का इस्तेमाल किया जा सका तो उसे यान की प्रणोद शक्ति के रूप में विकसित किया जा सकता है।

आर्कताप प्रणाली बहुत साधारण है। इस प्रणाली से बिजली पैदा की जा सकेगी और इससे द्रव को गरम किया जायेगा। यह द्रव नलियों के द्वारा प्रणोद शक्ति के रूप में बदल दिया जायेगा।

इन सभी प्रणालियों से बहुत कम प्रणोद शक्ति पैदा की जा सकती है और यह केवल अन्तर्ग्रहीय अन्वेषण तक ही सीमित है। आयन राकेटों की तरह इनसे इतनी प्रणोद शक्ति पैदा नहीं की जा सकती कि राकेट को वायुमण्डल भेदकर अन्तरिक्ष तक पहुँचा दिया जाय।

इस विशेष प्रकार की शक्ति पैदा करने के लिए इनमें बहुत जटिल यन्त्रों

का इस्तेमाल करना पड़ेगा। इसका तात्पर्य यह हुआ जैसा कि श्री एहरिक का कथन भी है, कि कुछ प्रणालियों में हमें बहुत-सी मशीनों आदि को साथ-साथ रखना पड़ेगा।

फोटन शक्ति और फ्यूजन शक्ति आज भी उतनी ही रहस्यमय बनी हुई है जितना रहस्यमय यह ब्रह्माण्ड है।

श्री एहरिक ने कहा है कि "फोटन शक्ति अभी तक अनुसन्धान के गर्भ में छिपी हुई है और हम अपने जीवनकाल में उसका दर्शन नहीं कर सकेंगे।"

हो सकता है कि फोटन और फ्यूजन प्रणोदन प्रणालियाँ में अभिजातवर्गीय हों। ये आयन के साथ मिल कर मनुष्य को अन्य नक्षत्रमण्डलों तक पहुँचा दें। लेकिन ये अभी तक अज्ञात हैं और इनको इस्तेमाल नहीं किया जा सकता।

—५—

कुछ प्रणोदन प्रणालियों को काम में लाया जा सकता है जैसा कि स्पूतनिक और एक्सप्लोरर का अन्तरिक्ष में छोड़े जाने के बाद की दुनिया अच्छी तरह जानती है। भावी सम्भावनाओं की ठीक समझ होने के लिए यह आवश्यक है कि वर्तमान की सफलताओं की समझ हो।

वाशिंगटन के एक समाचार-पत्र में हाल ही में एक महिला का पत्र प्रकाशित हुआ है जिसमें उसने पूछा है कि शिक्षकों के वेतन में अतिरिक्त वृद्धि की बात तो अलग रही उस 'चन्द्र राकेट' पर जितना रुपया खर्च किया गया उससे कितने स्कूलों की इमारतें और शिक्षकों के ट्रेनिंग-स्कूल कायम किये जा सकते थे?

यदि इस पत्र की लेखिका की धारणा यह है कि चन्द्रमा के सम्बन्ध में पता लगाने के लिए राकेट छोड़ा जाना केवल स्टंट है तो इसका मतलब यह हुआ कि वैज्ञानिक आम जनता को एक ऐसी महान् घटना के सम्बन्ध में बताने में असफल रहे है, जिसकी विज्ञान के इतिहास में दूसरी मिसाल मिलना मुश्किल है। अन्तरिक्ष की खोज और कृत्रिम उपग्रह कोई बच्चों का खेल नहीं है और न यह केवल प्रचार के अस्त्र हैं, यद्यपि ये इस क्षेत्र में असरदार साबित हो सकते हैं।

कृत्रिम भू-उपग्रह, चन्द्र राकेट और भविष्य में बनाये जाने वाले अन्तरिक्ष-यान वैज्ञानिक टेकनीक की ऐसी प्रगति के सूचक हैं जिनसे हृदय प्रफुल्लित हो उठता है। ये प्रगति की दिशा में जबरदस्त कदम हैं, इनका हमारे युग के लिए उतना ही महत्व है जितना कभी दूरबीन के आविष्कार का रहा। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि अन्तरिक्ष पर विजय के फौजी महत्व की जटिलताएँ पैदा हो सकती है लेकिन इस अनुरोध को भी टाला नहीं जा सकता कि अज्ञात की खोज

की जाय और चन्द्रमा तक पहुँचा जाय। परन्तु मूल रूप में ये अन्तरिक्ष यान मानव जाति को इस बात के लिए असाधारण अवसर दे रहे हैं कि इस पर्दे को एक झटके से हटा दिया जाय जिसने इस विश्व को चलाने वाली अधिकांश बुनियादी बातों को उससे छिपा रखा है।

यद्यपि हमें स्कूलों की इमारतों के सम्बन्ध में सोचना चाहिए परन्तु हम इनकी संख्या या कृत्रिम उपग्रह छोड़ने वाले यानों की संख्या की दृष्टि में रखकर नहीं सोच सकते। इसका कारण यह है कि इन उपग्रहों से हमें बहुमूल्य नया ज्ञान प्राप्त हो रहा है जिससे हमारी नयी पीढ़ी की शिक्षा में एक नया अध्याय जुड़ जायेगा। यदि हमारे समाज को गतिशील रहना है तो उसे न केवल अपनी शिक्षा-व्यवस्था का प्रसार करना होगा बल्कि उस दुनिया के सम्बन्ध में अपने ज्ञान को भी बढ़ाना होगा जिसमें वह कायम है।

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष में मनुष्य ने बाह्य अन्तरिक्ष की खोज आरम्भ की। अमेरिका में इस भू-भौतिकी वर्ष के कार्यक्रम का संयोजन और निर्देशन राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी ने किया और इसके लिए वित्तीय सहायता राष्ट्रीय विज्ञान संस्थान से प्राप्त हुई। वायुमण्डल की ऊपरी सतह तक इससे पहले भी राकेट छोड़े गये लेकिन भू-भौतिकी वर्ष (आई० जी० वाई०) का राकेट छोड़ने का कार्यक्रम अन्तर्राष्ट्रीय पैमाने पर फैला और इसी प्रक्रिया में कृत्रिम भू उपग्रह का उदय हुआ और बाह्य अन्तरिक्ष और नक्षत्र मण्डल की वैज्ञानिक खोज के लिए यह सबसे बड़ा कदम उठाया गया।

अन्तरिक्ष-यानों का विज्ञान के लिए क्या महत्व है, इस बात को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम मनुष्य पर दृष्टि डालें जो एक जीव के रूप में अशान्त वायु के सागर के तल पर रहता है। यह सागर—पृथ्वी का वायुमण्डल—मनुष्य के लिए आशा का स्रोत भी है और निराशा का भी, क्योंकि एक ओर यह बाह्य अन्तरिक्ष से निःसृत घातक विकीरणों से उसकी रक्षा करता है लेकिन दूसरी ओर अन्तरिक्ष को जानने समझने के लिए यह उसके मार्ग में बाधक भी बना हुआ है।

युगों से मनुष्य आकाश की ओर ताकता रहा है, पहले केवल आँखों की मदद से उसके बाद दूरबीन की सहायता से और अब रेडियो टेलिस्कोपों से। यद्यपि आज वैज्ञानिक काफी दूर-दूर तक देख सकने में समर्थ है। वह समय के पैमाने के अनुसार दो अरब वर्ष पीछे की ओर भी देख सकता, है फिर भी इस पृथ्वी का जीवनदायी वायुमण्डल उसकी नजरों से बहुत कुछ छिपाकर रखे हुए है, जिसमें उसकी बहुत दिलचस्पी है। यह वायुमण्डल कभी-कभी तो उसे सीधे देखने भी नहीं देता।

इस कल्पना भरे ज्ञान की खोज में वैज्ञानिक ने पहाड़ों की चढ़ाई की। विमानों और बेलूनों को यन्त्रों से लैस करके उड़ाया और नीचे धरती से ही पता लगाने के लिए अनेक मशीनें खोज निकालीं। इन परोक्ष तरीकों और सूझ-बूझ से उन्होंने अन्तरिक्ष में व्याप्त करणों और विकीरण के सम्बन्ध में काफी महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर ली है। अब अनुसन्धान-राकेटों और उपग्रहों की मदद से वैज्ञानिक अपने यन्त्रों को ऊपरी वायुमण्डल में या उससे भी ऊपर अन्तरिक्ष में पहुँचाने लगे हैं, इससे न केवल अन्तरिक्ष और वायुमण्डल की ऊपरी सतह पर हवा की स्थिति का ही अध्ययन किया जाने लगा है बल्कि पृथ्वी और निचले वायुमण्डल के सम्बन्ध में भी अनेक नयी बातों का पता चला है।

इन नये साधनों से कास्मिक-विकीरण का इधर जो अध्ययन किया गया, उससे हमें उनके गुणों के सम्बन्ध में अनेक नाटकीय बातें पता चली हैं। कास्मिक-किरण वास्तव में विद्युन्मय करण हैं जिनका मूलस्थान बाह्य अन्तरिक्ष है। ये वायुमण्डल की ऊपरी सतह पर वायु के परमाणुओं की पतली सतह के साथ बहुत अधिक शक्ति से टकराते हैं। ये मिलकर फिर वायुमण्डल के अन्य परमाणुओं से टकराते हैं और इस घात-प्रतिघात से गौण कास्मिक-किरण पैदा होती हैं जो पृथ्वी तक पहुँचती हैं। लेकिन मूल कास्मिक-किरण जिसने यह क्रिया-प्रक्रिया शुरू की, लुप्त हो जाती है।

अनुसन्धान-राकेटों और कृत्रिम उपग्रहों के युग के पहले, वैज्ञानिकों ने परोक्ष साधनों से मूल कास्मिक-विकीरण के सम्बन्ध में काफी जानकारी प्राप्त कर ली, लेकिन फिर भी बहुत कुछ रहस्य बना हुआ था। अब पहली बार प्रत्यक्ष निरीक्षण आदि के लिए वैज्ञानिक प्रयोगशाला को वायुमण्डल की सीमा के बाहर तक पहुँचाने में सफलता मिल गयी है।

अनुसन्धान के साधन के रूप में बहुत ऊँचाई तक जा सकने वाले राकेट बहुत महत्वपूर्ण हैं और जब पृथ्वी की सतह से वायुमण्डल की ऊपरी सतह तक का सिधाई में परीक्षण करना जरूरी होता है, इन्हीं राकेटों का इस्तेमाल किया जाता है। फिर भी कृत्रिम उपग्रह की, राकेट और जाँच के अन्य वैज्ञानिक साधनों के मुकाबले तीन मुख्य विशेषताएँ होती हैं—कृत्रिम उपग्रह से काफी बड़े क्षेत्र की जाँच की जा सकती है, इनसे अपेक्षाकृत कम समय में काफी बड़े क्षेत्र की जाँच की जा सकती है और सार रूप में आँकड़े जमा करने का ये सबसे अधिक प्रभावशाली साधन हैं।

इसकी अन्तिम विशेषता कई क्षेत्रों के लिए विशेषकर मौसम-विज्ञान के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। धरती पर जो निरीक्षण केन्द्र होते हैं, उनके द्वारा इन उपग्रहों से चौथा लाभ भी प्राप्त किया जा सकता है, इनसे कक्षा में घूमते हुए ऐसे आँकड़े

प्राप्त किये जा सकते है जो पृथ्वी के आकार-प्रकार, हवा का घनत्व और आयन-घनत्व का पता लगाने के लिए बहुत महत्वपूर्ण होते हैं।

राबर्ट एच० गोडार्ड ने १९२६ में द्रव-प्रणोदन शक्ति से चालित पहला अमेरिकी राकेट छोड़ा। आज भी वैज्ञानिक अन्वेषणों के लिए राकेटों का प्रयोग अपनी प्राथमिक स्थिति में ही है। जितनी बार राकेट छोड़े जाते है वास्तव में अज्ञात को जानने के लिए आदमी उतने ही चरण आगे बढ़ता जाता है। इनकी सफलता इनके हजारों जटिल और परस्पर निर्भर पुर्जों के ठीक-ठीक काम करने पर निर्भर करती है। इसके लिए यह बहुत जरूरी है कि गति और निर्देशन के साधनों का बिलकुल सही प्रयोग किया जाय।

इसलिए, यदि कृत्रिम उपग्रह छोड़ने का हर एक प्रयत्न सफल नहीं हो पाता तो इसमे अधिक आश्चर्य की बात नहीं। हम अभी-अभी अन्तरिक्ष के द्वार तक पहुँचे है; हम विकास की एक ऐसी स्थिति पर है जिसकी किसी दिन किटीहाक में राइट ब्रदर्स या हेनरी फोर्ड की आरम्भिक स्थिति से तुलना की जायेगी।

इङ्गलैंड के जोड्रेल बैंक के समीप प्रसिद्ध वेधशाला के डायरेक्टर प्रोफेसर ए० सी० बी० लोवेल ने कहा है कि, "सौरमण्डल की प्रकृति, चुम्बकीय क्षेत्र, रिंग करेंट, ध्रुव-प्रदेश और सूर्य में विस्फोटों के साथ की घटनाओं और कास्मिक विकीरण के मूल कणों आदि के सम्बन्ध में दशाब्दियों से जो बहस चल रही थी और जो अनिश्चितताएँ घेरे हुए थी वे अब सोवियत और अमेरिकी वैज्ञानिको द्वारा कृत्रिम उपग्रहों में फिट किये गये यन्त्रों की सहायता से धीरे-धीरे हल होती जा रही हैं।"

अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष मे अमेरिका का पहला उपग्रह 'एक्सप्लोरर-एक' सेना द्वारा छोड़ा गया। इसको कास्मिक-विकीरण और उपग्रह की कक्षा में उल्का-पदार्थों और उपग्रह के अन्दर तथा उसकी ऊपरी सतह का तापमान नापने के लिए बनाया गया था। एक्सप्लोरर-तीन भी सेना ने ही छोड़ा। एक्सप्लोरर-दो पृथ्वी की कक्षा तक नहीं पहुँचाया जा सका। तीसरे एक्सप्लोरर को भी पहले की ही तरह नापने का कार्य जारी रखने के लिए बनाया गया था, लेकिन इसमें एक नयी महत्वपूर्ण बात और जोड़ दी गयी। इसमें आठ औंस वजन का एक छोटा-सा मैगनेटिक टेप रिकार्डर फिट कर दिया गया जिससे आवश्यक आँकड़े रिकार्ड होते रहें और जब पृथ्वी से संकेत द्वारा इन आँकड़ों को माँगा जाय तब उपग्रह से उन्हें प्रेषित भी किया जा सके। उपग्रह की गतिविधि पर नजर रखने के लिए निरीक्षण-केन्द्रों का जाल बिछा दिया गया और संकेतों के लिए इन्हीं केन्द्रों मे रेडियो-रिसीविंग स्टेशन भी कायम कर दिये गये।

आइओवा विश्वविद्यालय में डा० जेम्स ए० वान एलेन और उनके

कर्मचारियों ने इन दो एक्सप्लोररों द्वारा भेजे गये कास्मिक-विकीरण के आंकड़ों का प्रारम्भिक विश्लेषण पूरा किया। इससे वे एक आश्चर्यजनक नतीजे पर पहुँचे। करीब ६०० मील के नीचे कास्मिक-किरणों की संख्या उतनी ही थी जितना अनुमान लगाया गया था, लेकिन इससे अधिक ऊँचाई पर 'ग्रेगर-काउंटर' मशीन अप्रत्याशित विकीरण के प्रभाव से काम नहीं कर सकी। यह विकीरण इतना तेज था कि उसे दर्ज नहीं किया जा सका और उसके सम्बन्ध में कुछ पता नहीं चल सका।

इस खोज ने वैज्ञानिकों में एक नयी हलचल पैदा कर दी और डा० वान एलेन तथा उनके सहयोगियों ने एक्सप्लोरर-चार के लिए आवश्यक यन्त्र बनाये। अधिक ऊँचाई पर इस अप्रत्याशित विकीरण की तेजी नापने के लिए सेना ने इसे छोड़ा। इसमें दो 'ग्रेगर-काउंटर' मशीनें रखी गयीं (एक को १।१६ इंच मोटे सीसे की परत से ढक दिया गया) और दो सिन्टीलेशन-काउन्टर भी फिट कर दिये गये। प्रारम्भिक जानकारी से पता चला कि विकीरण बहुत अधिक तेज है और उसे जितना भयानक समझा गया था उससे कहीं अधिक भयानक है।

इस बीच उपग्रहों से अन्य महत्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त हुई है और उनका विश्लेषण किया गया है। वायुसेना के कैम्ब्रिज अनुसन्धान केन्द्र ने बताया कि उसके वैज्ञानिकों ने मोटा अन्दाज लगाकर मालूम किया है कि प्रतिदिन करीब १० हजार टन कास्मिक-धूलि पृथ्वी की सतह पर आती रहती है। एक्सप्लोरर-एक के रेडियो जब तक कार्य करते रहे उनमें केवल सात या आठ बार ऐसे बड़े कण टकराये जो मशीन में दर्ज हो सकते थे।

सम्भव है एक्सप्लोरर-तीन अभी इसके सम्पर्क में नहीं आया हो। फिर भी इस बात की सम्भावना है कि वह प्रसिद्ध हेली-उल्का के टूटे अंश की टक्कर से क्षतिग्रस्त हो गया क्योंकि उसके दोनों रेडियो एक-दूसरे से एक या दो दिन के अन्तर में बन्द हो गये। वे निर्धारित अवधि के केवल ७५ प्रतिशत अंश तक ही काम कर सके, यद्यपि उनके लिए पृथक् सरकिट और पृथक् शक्ति (पावर) की व्यवस्था की गयी थी। एक साथ बिजली फेल हो गयी हो, यह बात नहीं मानी जा सकती। इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि एक्सप्लोरर-एक और वैनगार्ड-एक इस बीच बिना किसी विघ्न बाधा के संकेत भेजते रहे। फिर भी इस समय ऐसा प्रतीत नहीं होता कि अन्तरिक्ष यात्रा में उल्कापात का कोई खास खतरा है।

कैलीफोर्निया इन्स्टीट्यूट आफ टेकनालाजी की जेट प्रोपल्शन लेबोरेट्री ने अन्तरिक्ष में तापमान की समस्या का बहुत सरल हल खोज निकाला है। उपग्रह के खोल के करीब २५ प्रतिशत भाग को अल्यूमीनियम आक्साइड की चद्दरों से

ढक दिया जाय तो उपग्रह के अन्दर तापमान ३२ डिग्री फा० और १०४ डिग्री फा० के बीच स्थिर रखा जा सकता है। इस टेकनीक से उपग्रह का तापमान इतना रख सकना सम्भव हो गया है जिसमें मनुष्य जीवित रह सकता है यद्यपि उसे अधिक आराम नहीं मिल सकता। बड़े अन्तरिक्ष यानों में और उन्नत टेकनीक का इस्तेमाल कर अन्दर का तापमान इच्छानुसार कम-ज्यादा किया जा सकता है।

यह कहा जाता है कि राकेट विज्ञान में 'असफलता' जैसी कोई चीज नहीं होती क्योंकि हर असफलता के बाद अगली बार सफलता प्राप्त करने की सम्भावना बढ़ाने के लिए नया ज्ञान प्राप्त किया जाता है। नयी जानकारी के साथ ही नये आँकड़े प्राप्त होते हैं। इस बात की पुष्टि २७ मई १९५८ को 'वैनगार्ड' छोड़ने में हुई असफलता से हो जाती है। तीसरे राकेट से मुक्त होने के बाद उपग्रह से ५६० सेकिंड तक भेजे गये वैज्ञानिक-आँकड़ों को केप केनावेरल, फ्लोरिडा, एन्टीगुआ और वेस्टइंडीज में दर्ज किया गया।

इन आँकड़ों का नौसेना अनुसन्धान प्रयोगशाला के वैज्ञानिकों ने विश्लेषण किया और वे इस नतीजे पर पहुँचे कि करीब २५ टन उल्का धूलिकण प्रतिदिन धरती से टकराते हैं। यह बात वायुसेना के कैम्ब्रिज अनुसन्धान केन्द्र की खोज से मेल नहीं खाती। यह अन्तर वास्तव में प्राप्त आँकड़ों के विश्लेषण और व्याख्या की विधियों में अन्तर होने से हुआ, जो आँकड़े पास हुए उनके कारण नहीं। असल में इसी प्रकार के मतभेदों से अन्त में वैज्ञानिक-सत्य का उदय होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्य उपलब्ध बहुमूल्य जानकारियों का भी विश्लेषण किया जायेगा।

भू-भौतिकी वर्ष के अन्तर्गत जो कृत्रिम-उपग्रह कार्यक्रम शुरू किया गया वह अब धीरे-धीरे राष्ट्र के अन्तरिक्ष-खोज कार्यक्रम के साथ संयुक्त होता जा रहा है और अन्त में उसी में विलय हो जायेगा।

असैनिक अन्तरिक्ष अनुसन्धान और खोज कार्यक्रम की प्रगति की जिम्मेदारी अमेरिकी कांग्रेस ने 'नेशनल एरोनाटिक्स एण्ड स्पेस एडमिनिस्ट्रेशन' को सौंप दी है और अन्तरिक्ष विजय के फौजी और सुरक्षा पक्ष का उत्तरदायित्व रक्षा-मन्त्रालय को सौंपा गया है।

वैज्ञानिक मामलों पर सरकार की सलाहकार राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी की जिम्मेदारियों को समझते हुए अकादमी के अध्यक्ष डा० डेटलेव डब्ल्यु ब्रौंक ने तीन अगस्त १९५८ को १६ सदस्यों का एक अन्तरिक्ष-विज्ञान बोर्ड कायम किया। डा० लॉयड वी० बर्कनर की अध्यक्षता में इस बोर्ड को वैज्ञानिक अनुसन्धान के अवसरों और राकेट तथा उपग्रहों का युग आरम्भ होने से पैदा हुई

आवश्यकताओं का अध्ययन करने, अन्तरिक्ष विज्ञान के सम्बन्ध में दिलचस्पी रखने वाली एजेन्सियों और संस्थाओं को इस विषय पर सलाह देने तथा सिफारिशें करने, राकेट और उपग्रहों के क्षेत्र में अनुसन्धान-कार्य को प्रोत्साहन देने और अन्तरिक्ष विज्ञान से सम्बन्धित कार्यों में सक्रिय विदेशी संस्थाओं के साथ सहयोग करने का कार्य सौंपा गया है।

बोर्ड को यह कार्य भी सौंपा गया है कि चन्द्रमा, ग्रहों की सतहों और पृथ्वी के वायुमण्डल को अन्तरिक्ष-यानों की गतिविधि से अवाञ्छित और अनावश्यक रूप से अशुद्ध किये जाने से रोकने के लिए अन्य पक्षों का सहयोग प्राप्त करें।

अन्तरिक्ष विज्ञान में अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करने के लिए अकादमी का अन्तरिक्ष विज्ञान बोर्ड बहुत उपयुक्त संस्था है। यह भू-भौतिकी वर्ष की इसी उद्देश्य के लिए बनायी गयी अमेरिकी राष्ट्रीय कमेटी का कार्य भी स्वयं सँभाल सकता है।

यह स्मरणीय है कि अन्तरिक्ष की उड़ान की तकनीक का विकास धीरे-धीरे होगा। आरम्भ में जो दूरी तय की जायेगी वह कम होगी, जो भार अन्तरिक्ष तक पहुँचाया जा सकेगा वह भी अधिक नहीं होगा और आरम्भिक स्थिति में प्रयोग भी बहुत बड़े-चढ़े नहीं होंगे। फिर भी अन्तरिक्ष विज्ञान बोर्ड ऐसे प्रस्तावों पर तेजी से विचार कर रहा है जिनमें कहा गया है कि निकट भविष्य में ही जब कि अधिक उन्नत यान सुलभ हो जायेंगे, दूरगामी प्रभाव डालने वाले बड़े-बड़े प्रयोग किये जायें।

इससे स्पष्ट है कि हम एक नये युग में प्रवेश करने के लिए तैयार खड़े हैं। हम एक ऐसी दुनिया में प्रवेश करने की तैयारी कर रहे हैं जो हमें बहुत विचित्र लगेगी लेकिन जो हमारे बच्चों के लिए उसी तरह सामान्य-सी होगी जिस तरह यह मोटरकार वाली दुनिया हमारे लिए है। मानव प्रगति और हमारे राष्ट्र के कल्याण के हित में यह जरूरी है कि अन्तरिक्ष-अनुसन्धान का जो दीर्घकालीन कार्यक्रम अभी तैयार किया जा रहा है उसे अमेरिका पूरी ताकत से लागू करे और आगे बढ़ाये।

इस प्रकार के कार्यक्रम से निश्चय ही बहुत से व्यावहारिक लाभ होंगे, फिर भी इस खोज-कार्य का बुनियादी लक्ष्य यह होना चाहिए कि सौरमण्डल और उसके पार की दुनिया के सम्बन्ध में ज्ञान-पिपासा शान्त की जाय। वैज्ञानिक निरीक्षणों और प्रयोगों का ऐसा कोई भी मौका हाथ से नहीं जाने देना चाहिए जो अन्तरिक्ष टेकनालाजी से हमें मिल रहा है और जो मनुष्य मात्र के बेहतर जीवन के लिए—केवल भौतिक अर्थ में ही नहीं बल्कि बौद्धिक और आध्यात्मिक अर्थ में भी—बहुत बड़ा योगदान कर सकता है।

और यही वह बुनियादी चुनौती निहित है। भावी आशा, योजना, और उन मशीनों के सम्बन्ध में जिनके द्वारा इन्सान चहों और शायद सितारों तक पहुँचना चाहता है, सब कुछ कह लेने के बाद भी उसे एक ऐसी माँग का सामना करना पड़ रहा है जिससे वह बच नहीं सकता। यह माँग है इस विश्व में उसका क्या स्थान है, इस सम्बन्ध में वह नया दृष्टिकोण अपनाये।

शायद यह याद होगा कि अखिल ब्रह्माण्ड की दृष्टि से हमारी यह सुपरिचित पुरानी दुनिया स्वयं एक अन्तरिक्ष-यान है। १८.५ मील प्रति सेकिंड की औसत चाल से सूर्य के चारों ओर चक्कर काटती हुई यह पृथ्वी सूर्य के साथ मिलकर १४० मील प्रति सेकिंड की चाल से समारे नक्षत्र-मण्डल के केन्द्र का चक्कर काटती रहती है।

हम बराबर अन्तरिक्ष में यात्रा कर रहे हैं, यद्यपि हमारी वर्तमान दृष्टि सीमित होने के कारण हम अब तक बराबर इसी 'ठोस धरती' से चिपके हुए हैं।

नवोदित अन्तरिक्ष युग की इन्सान से यही माँग है कि वह इस संकीर्ण दृष्टिकोण का त्याग कर ब्रह्माण्ड का दृष्टिकोण अपनाये। सूर्य स्वयं एक सितारा है बिलकुल औसत किस्म का सितारा है, और यह अनुमान लगाया गया है कि सम्भवतः ऐसे करोड़ों सौरमण्डल हैं, जहाँ जीवन पनप सकता है।

हार्वर्ड के प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् डा० हार्लो शेपले के शब्दों में, "अब समय आ गया है कि ब्रह्माण्ड के तथ्यों का पूरी तरह साहस के साथ मुकाबला किया जाय, छोटा सा किन्तु शानदार इन्सान आज एक विशाल और शानदार ब्रह्माण्ड के सामने मुकाबले में खड़ा है।"— 'आफ स्टार्स एण्ड मैन', ले० हार्लो शेपले, प्रकाशक : बीकन प्रेस)।

वे 'ब्रह्माण्ड के तथ्य' कौन से हैं जिनका वैज्ञानिकों ने पता लगा लिया है. यहाँ उसकी संक्षिप्त सूची देना पर्याप्त होगा।

पहली बात तो यह है कि हमारे सौर-मण्डल में सूर्य और उसके ग्रहों का अपना निश्चित स्थान है।

खगोल विज्ञान के सबसे सही अनुमान के अनुसार सूर्य काफी बड़ा ग्रह है और अभी लाखों-करोड़ों वर्षों तक वह इसी प्रकार बना रहेगा। हमारे सौर-मण्डल की ही तरह के एक खरब अन्य सौर-मण्डलों में सूर्य की तरह के ग्रह प्रायः समान हैं।

इस प्रकार के अधिकांश ग्रह सौर-मण्डल के एक किनारे पर देखे गये हैं। यह सौर-मण्डल चपटा होता है और बहुत कुछ पिन के गोल सिरे की तरह होता है जिसके केन्द्र में कुछ उठान (न्यूक्लियस) रहती है और फिर कई चक्र होते हैं। इन्हीं में से एक चक्र में बाहर की तरफ सूर्य स्थित है जो सौरमण्डल के केन्द्र से

२७००० प्रकाश वर्ष दूर है (एक प्रकाश वर्ष वह दूरी है जिसे प्रकाश एक वर्ष में तय कर पाता है। यह करीब ६ खरब मील के बराबर है)।

सूर्य की इसी स्थिति के कारण हमें ऊपर देखने पर आकाश में आकाशगङ्गा दिखायी देती है। आकाशगङ्गा की ओर देखने से हमे जितने तारे दिखायी देते है उतने और किसी ओर देखने से नहीं दिखायी देते।

दूसरा तथ्य है, संख्या का। इस ब्रह्माण्ड को नापना असम्भव है। यह इतना विशाल है जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। जो तारा हमें सबसे नजदीक दिखायी देता है वह चार प्रकाशवर्ष दूर है अर्थात् २४ खरब मील दूर है।

यदि दो फुट का व्यास लेकर सौर-मण्डल का नक्शा तैयार किया जाय तो यह निकटतम पड़ोसी एक मील से अधिक दूर अकेला दिखायी देगा। लेकिन जब आप यह महसूस करते हैं कि माउन्ट पालोमर की २०० इन्च की दूरबीन से अन्तरिक्ष में अरबों प्रकाश वर्ष दूर देखा जा सकता है, और खगोलशास्त्री यह जानते हैं कि इसके बाद भी और तारे हैं तो ऐसा लगता है कि यह निकटतम तारा जैसे आपकी गोद में हो।

फिर, यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि हमारा यह सौरमण्डल ऐसे उन लाखों-करोड़ों सौरमण्डलों में से एक है जिनको वह अपनी दूरबीन से देख सकते है। इन सौरमण्डलों में तारों की संख्या को गिना नहीं जा सकता। इनकी संख्या इतनी अधिक है कि उसको हम समझ ही नहीं सकते। तीसरी बात यह है कि इस विशाल ब्रह्माण्ड में जीवन होने की सम्भावनाएँ हैं।

डा० शेपले का अनुमान है कि कम से कम दस करोड़ ग्रह-मण्डल ऐसे हैं जहाँ जीवन होना चाहिए। यह जीवन बहुत कुछ इस पृथ्वी की ही तरह का हो सकता है और बिलकुल भिन्न प्रकार का भी हो सकता है। लेकिन यह सम्भव है कि जीवन के साथ ही बुद्धि-तत्व भी होगा।

अपनी पुस्तक 'आफ स्टार्स एण्ड मैन' में डा० शेपले ने यह प्रश्न उठाया है, क्या यह जीवन केवल हमारे ग्रह तक ही सीमित है? क्या यह केवल सौर-परिवार के तीसरे नम्बर के सदस्य तक ही सीमित है जो कि सौरमण्डल के बाहरी हिस्से में एक औसत ग्रह-मात्र है जबकि इस मण्डल में इसके अलावा लाखों-करोड़ों तारे और भी है, यही नहीं जबकि स्वयं यह सौरमण्डल ऐसे शत करोड़ों अन्य सौर-मण्डलों में से एक है?...निस्सन्देह, नहीं। हम अकेले नहीं है।"

ये हैं इस अन्तरिक्ष युग मे जीवन के 'ब्रह्माण्डीय तथ्य'। ये मनुष्यों को और उनके ग्रह को, उनके तारा-मण्डल और सौरमण्डल को ब्रह्माण्ड में कोई विशेष स्थान नहीं देते। यही नहीं, अपने ही सौरमण्डल में भी इसे कोई विशेष स्थान प्राप्त नहीं।

पहली नजर में और सीमित मानवीय दृष्टि से देखने पर ऐसा महसूस होगा कि इन तथ्यों के सामने हम कुछ भी नहीं। ये तथ्य मानव-जाति को एकदम नगण्य स्थिति में डाल देते हैं। लेकिन पुनः डा० शेपले के शब्दों में, "यदि भौतिक दृष्टि से हमारी कोई महत्ता नहीं, फिर भी इसमें दिल छोटा करने की कोई बात नहीं है।"

उन्होंने आगे कहा है, "चूँकि ग्रवाविल की गति बहुत तेज होती है, गेंडे का आकार बहुत बड़ा होता है, कुत्ते के कान बहुत तेज होते है, तो क्या हम उनसे भी गये बीते है?'''हमें सितारों को भी अपने बढ़ते कदमों के नीचे ले आना चाहिए।"

बेशक ऐसी कोई बात नहीं जिससे मनुष्य अपने को महत्वहीन समझे। वह अपने विचारों और सिद्धान्तों से इस ब्रह्माण्ड को नाप सकता है, और अन्तरिक्ष युग की तो माँग ही यह है कि वह ऐसा करे।

वैज्ञानिक काफी समय से इस माँग का सामना कर रहे हैं। उनकी दृष्टि में आखिर नया दृष्टिकोण अपनाने में इसका क्या महत्व है, इस विषय पर जो बहसें हुई है उसका सार-तत्व यहाँ दिया जा रहा है :—

पहली बात, उनका मत है कि यह बिलकुल स्पष्ट है कि मानव जाति अब अपने को एक विशिष्ट प्रकार की जाति नहीं समझ सकती। इस बात की बहुत अधिक सम्भावना है कि अन्य ग्रहों में भी काफी बुद्धिमान् जातियाँ रहती हैं, दूरबीन की सहायता से इस ब्रह्माण्ड की विशालता का अनुमान लगाया जा सकता है। इन बातों से यह सिद्ध होता है, कि अन्तरिक्ष की उड़ान में मनुष्य को सबसे बड़ी चुनौती यही है कि वह इस ब्रह्माण्ड में अपना उपयुक्त स्थान खोज ले।

व्यावहारिक नतीजा यह है कि अमेरिकी अन्तरिक्ष-वैज्ञानिक आम तौर पर यह अनुरोध करते हैं कि एक दीर्घकालीन गैर फौजी अनुसन्धान कार्यक्रम तैयार किया जाय और उसे प्राथमिकता में भी शीर्ष-स्थान दिया जाय। इसके साथ ही वह यह भी माँग करते हैं कि इस बात के लिए हर सम्भव कोशिश की जानी चाहिए कि अन्तरिक्ष अनुसन्धान कार्य अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के तत्वावधान में किया जा सके।

वे इस बात को महसूस करते है कि वर्तमान में फौजी और राजनीतिक परिस्थितियाँ ऐसी है कि अन्तरिक्ष का फौजी उद्देश्य के लिए इस्तेमाल कर सकने के लिए सतर्क रक्षा-नीति अपनाने की आवश्यकता है। लेकिन उन्हें यह पक्का विश्वास है कि यदि मनुष्य केवल हथियारों का विकास करने के अलावा और कुछ नहीं सोचेगा, यदि वह इस संकीर्ण सीमा से आगे नहीं बढ़ेगा, तो निश्चय ही वह अपने साथ छल करेगा।

मनुष्य अन्तरिक्ष में किसी विजयी 'हीरो' के रूप में प्रवेश नहीं कर रहा है। उनका मत है कि अभी तो उसकी स्थिति उस किशोर की सी है जो पहली बार घर से अकेला घूमने निकला है। इसकी वास्तविक चुनौती तो यह है कि इस विशाल बाहरी दुनिया की खोज की जाय और वास्तविकताओं से अपना तालमेल बैठाया जाय। इसके लिए अवसर भी मिला है।

इसलिए यह जरूरी है कि हमारा दृष्टिकोण एक विजेता का नहीं बल्कि एक विनम्र अन्वेषक का होना चाहिए। यह भी जरूरी है कि यह रुख अभी ही अपना लिया जाय जबकि अन्तरिक्ष की उड़ान के लिए पहली योजनाएँ बन ही रही है।

वैज्ञानिक जिस दूसरे नतीजे पर पहुँचे वह यह है कि अन्तरिक्ष में प्रवेश करने पर पृथ्वी की ओर पीठ नहीं फेरी जा सकती। जो वैज्ञानिक और तकनीकी खोजें और उपलब्धियाँ आज इस यात्रा को सम्भव बना रही हैं, उन्हे पहले इस धरती के मानव-जीवन को उनके अपने इस ग्रह के जीवन को खुशहाल बनाने में लगाया जाना चाहिए, तभी इस अन्तरिक्ष की खोज का उचित लाभ मिल सकेगा।

यह कहा जा चुका है कि मानव जाति इस ब्रह्माण्ड में अपने को विशिष्ट जाति नहीं कह सकती। इस नतीजे से यह प्रकट होता है कि सभी मनुष्य भाई-भाई है। इस धरती पर रहनेवालों के आपसी भेदभावों या इनकी अपनी-अपनी पृथक् सत्ता का अखिल ब्रह्माण्ड की दृष्टि में कुछ भी महत्त्व नहीं है। इसका महत्व उतना ही होगा जितना कि इस दुनिया की पूरी अर्थ-व्यवस्था मे एक सामान्य परिवार के कलह का हो सकता है।

यदि इसे व्यवहार में लाया जाय तो इसका अर्थ यह हुआ कि यदि मनुष्य अन्तरिक्ष में कहीं पहुँचना चाहता है तो उसे आगे चलकर मिलकर काम करना पड़ेगा। लेकिन आनेवाली अनेक दशाब्दियो और शताब्दियो के इस प्रकार के सहयोग के लिए यह आवश्यक है कि पहले दुनिया की समान समस्याओं को हल करने के लिए ऐसा सहयोग प्राप्त किया जाय।

तो, मनुष्य के अन्तरिक्ष मे प्रवेश करने से जो नयी दृष्टि पैदा हुई है, मोटे रूप में उसके ये ही अर्थ लगाये जा सकते हैं।

डा० लोपले ने कहा है, यह ब्रह्माण्ड अद्भुत है और इसमें छोटे से छोटा काम कर सकना भी बहुत बड़ी बात है। अन्तरिक्ष की उड़ान ने जो चुनौती दी है उससे इन्सान को यह पता लगाने का मौका भी मिल गया है कि यह छोटे से छोटा योगदान भी कितना अद्भुत हो सकता है।

अन्तरिक्ष पर चढ़ाई करने के लिए हमें खुले दिमाग मे सोचना होगा, हमारी दृष्टि को व्यापक होना पड़ेगा। इससे हमारी क्षुद्र-भावना खत्म होगी और

जितनी भी अतिरिक्त शक्ति हैं, नये आविष्कार करने की जितनी क्षमता है, जितने साधन हैं, वे सभी इसमें खप सकते हैं।

यह सम्भवतः उस स्थिति का द्योतक है जबकि आविष्कार उस 'निस्सीम अनन्त' के बहुत निकट पहुँच जायेगा जिसका धुँधला-सा आभास इस ब्रह्माण्ड से मिलता है। केवल यही नहीं, आविष्कार के लिए सबसे अधिक प्रेरणा भी इसी निस्सीम अनन्त से ही मिलेगी।

● ●

जन-जागरण

●

भविष्य का आह्वान

कहीं एक वह भी है जिसका नाम है अब्दुल। जब हम तारों तक उड़ने की समस्या पर विचार कर रहे हैं, उसे गाँव तक सड़क बनाने की चिन्ता लगी हुई है। वैसे आज वह अज्ञान या गरीबी या राजनीतिक स्थिति से बँधा हुआ सा है लेकिन इसमें सन्देह नहीं, वह आनेवाले कल की बात सुन रहा है। कम से कम उसके लिए और अपने लिए हमें भी कल की बात सुननी चाहिए।

क्योंकि बहुमत उसका ही है। उसे उन चीजों की आवश्यकता है जिसकी हम कभी परवाह नहीं करते क्योंकि हम समझते हैं कि वे तो मिली हुई ही हैं, जैसे, भोजन, शिक्षा, स्वशासन, प्रगति।

भविष्य उसकी ओर सङ्केत कर रहा है और वह उसकी बातें सुन रहा है; लेकिन वह क्या सुन रहा है?

वह व्यापक जनसमूह का एक सदस्य है, हम उससे सीधे सवाल नहीं कर सकते। हमें उसकी झोपड़ी में जाना होगा, या उसके धान के खेत में या उसके फार्म में जाना होगा। हो सकता है वह अपने पड़ोसी की बात से सहमत न हो...या फिर भारत में सखाराम पवार की तरह अपने पुत्र से ही सहमत न हो।

सखाराम ने खुरपे से थोड़ी-सी मिट्टी खोद ली, एक ढेला हाथ में लेकर गौर से देखा, उसको चूमा और फिर बड़े प्यार से अपनी उंगलियों से उसे धीरे-धीरे मसलते हुए बारीक मिट्टी में बदलकर धरती पर गिरा दिया। फिर उसने ऊपर आकाश में नजरें दौड़ाईं कि कहीं काले मेघ भरे बादलों के कोई आसार हैं या नहीं, ये काले मेघ गर्मियों भर की उसकी तड़पन को दूर कर देंगे।

पिछले बीस सालों से पश्चिमी भारत में, शिवालिक की पहाड़ियों के आञ्चल में, गर्मियों की हर सुबह सखाराम पवार को अपने छोटे-छोटे खेतों पर पहुँच कर इसी प्रकार की यह छोटी-सी रस्म अदा करते देखती आ रही है और हर शाम उसे परम्परागत तरीकों में तनिक भी हेर-फेर किये बिना खेत जोतते, बोते और फसल काटते हुए अपने पूर्वजों के तरीकों को दुहराते देखती रही है।

केवल दो खेतों के बाद ही उसका लड़का धोंडू भी उसी प्रकार काम में लगा है, दोनों के बीच की दूरी इतनी कम है कि वे आसानी से बातचीत कर सकते हैं। लेकिन जहाँ तक समानता का सवाल है, वह यहीं पर खत्म हो जाती है। नंगे बदन काम करता हुआ सखाराम, जिसकी देह को कड़ी धूप ने जलाकर काला कर दिया है, उम्र के प्रभाव से मुक्त, अपरिवर्तनशील और चिरन्तन हिन्दुस्तान का साक्षात् प्रतीक बना हुआ है—अजन्ता की काष्ठमूर्ति-सा मजबूत और मरोड़ खाया हुआ; अकेले अपने हाथों के बल पर आजीविका कमाने के लिए विश्वास के साथ संघर्ष करता हुआ, उसका शानदार व्यक्तित्व, अपने ज्ञान पर अटल विश्वास करने वाला, किसी भी बात को न मानने की उसकी जिद और परिवर्तन का जबरदस्त विरोधी। लेकिन पुरानी और सिकुड़ी हुई टी-शर्ट और पुरानी पैण्ट पहने धोंडू जिद्दी तो उतना ही है लेकिन, परिवर्तन का उस पर असर पड़ने लगा है; वह अकेले अपने हाथों के कौशल से सन्तुष्ट नहीं, वह इसके पूरक के रूप में नये साधन के लिए बेचैन है; जो भी सखाराम को प्रिय है उसके लिए इसके मन में बेहद घृणा है। वह वास्तव में विद्रोह की प्रतिमूर्ति है। दोनों के बीच घोर प्रतिद्वन्द्विता उभर आयी है। इसकी शुरुआत हुई करीब बारह वर्ष पहले जब कि चारों ओर के शिखरों पर मशालों से यह समाचार प्रसारित किया गया था कि भारत आजाद हो गया है। अगस्त की इस रात को यह शान्तिप्रेमी भारतीय किसान परिवार अपनी शान्ति खो बैठा। धोंडू ने अपने खेतों का काम छोड़कर उस दिन छुट्टी मनायी और सारी रात गाँव की चौपाल में नाचता-गाता रहा। सखाराम बड़बड़ा रहा था, "आई (माँ) ने घर का काम जल्दी-जल्दी निपटाया और सारी झोंपड़ी को गेंदे के हारों और लाल-लाल चमेली के फूलों से सजा दिया है और सुगन्धित चमेली के कुछ फूलों को अपने बालों में ऐसे सजा रखा है जैसे वह जवान दुल्हन हो।"

अगले दस सालों में धोंडू जवान हो गया और उस पर वातावरण का असर पड़ने लगा। वह अपने पिता की बात मानने से इन्कार करने लगा, दिन प्रतिदिन झगड़ा बढ़ता गया। सखाराम ने उसे जो खेत दिये थे वह उनमें नये तरीकों से खेती करने लगा। रासायनिक खाद (उर्वरक) तथा बीज खरीदने के लिए उसने रुपया उधार लिया। वह हल को दूसरे ढङ्ग से जोतने लगा, वह

खेतो की बनावट के अनुसार हल चलाने लगा। खेत के एक हिस्से मे उसने जापान की तरह धान बोया और देखा कि इससे बहुत बढ़िया फसल हुई। उसने आई का मुर्गीपालन के लिए राजी कर लिया और जब उसके पास खाली समय रहता तो घर का पिछवाड़ा साफ करने में आई की मदद करता जिससे वहाँ सब्जी बोयी जा सके। यह देखकर सखाराम मन ही मन कुढ़ता, उसे लगता जैसे वह अब और काबू नही रख सकेगा और यह ज्वालामुखी फूट पड़ेगा। पानी के लिए वह आदतन मानसून पर निर्भर करता और साल में केवल एक फसल उगा पाता। बीच के सूखे मौसम में वह दैनिक मजदूरी पर काम करके सन्तोष कर लेता।

धोंडू ने उसके इस अस्त-व्यस्त ढङ्ग से काम करने का ढङ्ग नही अपनाया। उसने सिचाई के लिए नालियाँ खोदने की योजना बनाई, गाँव के अन्य लोगो के साथ मिलकर मुख्य नहर से जुड़नेवाली छोटी नहर बनाने का काम किया और इस प्रकार साल मे दो फसले उगायी। इसका नतीजा यह हुआ कि घर मे झगड़ा होने लगा। आई खाना बनाने के बर्तनों के ऊपर झुकी रहती और अपनी पुरानी साडी के फटे किनारे से चुपचाप आँसू पोछती रहती। वह प्राचीनता और आधुनिकता के सङ्घर्ष में पिसी जा रही है, वह पत्नी भी है और माँ भी; अपने पति से प्रेम करती है साथ ही पुत्र की प्रशंसक भी है। अपनी इन दोनो भावनाओ मे मैल बैठा सकने में वह निरन्तर असमर्थ होती जा रही है।

हर शाम को कुछ न कुछ बात लेकर झगडा छिड़ जाता। सखाराम स्वतन्त्रता का उपहास करते हुए कहता है—"स्वतन्त्रता हमें एक-दूसरे पर अधिकाधिक निर्भर कर रही है। मेरे पिता के जमाने में हमारी सारी जरूरतें गाँव मे ही पूरी हो जाती थी। गाँव से बाहर जाने की आवश्यकता ही नही होनी थी। और अब...धोंडू को बुवाई के पहले किताब में पढ़ना पड़ता है कि बीज कैसे बोया जाय।" धोंडू जवाब मे अपने पिछले साल की बढ़िया फसल का हवाला देता है और साथ ही चुनौती देता है कि वह भी इस साल ऐसी फसल उगाकर दिखायें।

यह आज के भारत की कहानी का एक अंश है। यह कहानी है तनाव और व्यापक परिवर्तन की, टूटते परिवारों और उनकी रक्षा के लिए अन्तिम सङ्घर्ष की, युवकों और महिलाओ मे नये जागरण की। यह कहानी है सम्पत्ति और जातिप्रथा की डगमगाती प्रतिष्ठा की जिसकी फौलादी पकड अब ढीली पड़ती जा रही है। यह कहानी है रूढ़िवादिता के किले के पतन की।

गान्धीजी ने आजादी की जो हल्की हवा बहायी वह अब एक निरङ्कुश आँधी का रूप ले चुकी है, वह कभी इस तरफ मुड़ जाती है और कभी उस तरफ। वह

पूर्व प्रतिष्ठित व्यवस्था में जो बुरा है और जो अच्छा है, दोनों को ही उड़ा रही है, उस और परम्परा के प्रति वह श्रद्धाभाव खत्म हो चुका है जिसने इस राष्ट्र को हजारों वर्ष से निष्क्रिय बना रखा था। इसकी वह सतही गम्भीरता और साहस भी खत्म हो चुका जो वास्तव में उदासीनता की उपज थी। बाबा को कष्ट देना अब गर्व की बात नहीं रही बल्कि अनावश्यक अज्ञानता की बात समझी जाने लगी है। १५ अगस्त १९४७ को जैसे ही साम्राज्यवादी ब्रिटेन अपनी सभी ध्वजाओं को फहराता हुआ शान से चला गया उसके साथ ही एक महान् क्रान्ति खत्म हो गयी और उससे कहीं बड़ी क्रान्ति ने जन्म लिया। भारत के ४० करोड़ नर-नारी प्रगति के जोश और उत्साह के साथ जाग उठे हैं।

अकेले मन्नाराम का परिवार ही नहीं बँटा। नयी दिल्ली में, जो मन्नाराम के छोटे-छोटे खेतों से काफी दूर है, संगमरमर की बनी गोल चक्करदार विशाल इमारत है जहाँ लोकसभा की बैठकें होती हैं। वहाँ संसद् के लिए चुने गये ५०० सदस्य पारिवारिक नाटक में भाग लेते अगली पंक्तियों में बैठते हैं, नित्य होनेवाला यह नाटक उन्हें यह याद दिलाता है कि वे इस राष्ट्र की सामाजिक व्यवस्था में कितना भारी परिवर्तन लाने में सहायता कर रहे हैं।

अध्यक्ष के दाहिने हाथ की ओर सरकारी बेंचों के ठीक पीछे, मृदु-भाषी, हाथ से कती-बुनी खादी के कपड़े पहिने एक विधायक बैठे हैं जो कभी अपने मद्रास राज्य में मन्त्री थे और अब सत्तारूढ़ कांग्रेस की संसदीय पार्टी के एक प्रभावशाली स्तम्भ हैं। केन्द्र से कुछ बायें हटकर उनका लड़का बैठता है जो पीपुल्स सोशलिस्ट पार्टी (प्रजा सोशलिस्ट पार्टी) का प्रमुख सदस्य है, और कुछ सीटें छोड़कर और आगे बायीं ओर, लेकिन विचारधारा की दृष्टि से उतनी दूर जितनी दूर उत्तरी ध्रुव है, उनकी लड़की बैठती है। वह भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को मिली सीटों में से एक में शोभायमान है। और जब इस भारतीय परिवार का कोई सदस्य किसी एक बात का जोरदार विरोध करता है और एकदम भिन्न हल सुझाता है तो सारे सदन का बेचैनी के साथ चुपचाप रहना कोई असाधारण बात नहीं है।

बहुत समय नहीं बीता जब ये तीनों एक साथ रहते थे, स्वतन्त्रता आन्दोलन में इन्होंने साथ-साथ काम किया और सभी एक ही राजनीतिक संगठन के सदस्य थे। अब, आजादी प्राप्त होने के करीब १२ साल बाद इनमें कड़ा विरोध पैदा हो जाने से जहाँ पहले दोस्ती और सद्भाव था वहाँ मैत्री खत्म-सी हो चुकी है और संघर्ष छिड़ा रहता है।

हिन्दुओं का संयुक्त परिवार स्वयं में एक संस्था बन गया था और सदियों तक हमलों को झेलता हुआ अटूट बना रहा। एक सुगठित और परिवर्तन के

प्रभाव से मुक्त खान्दान या कुल के रूप में इसने अपने अन्दर देश में व्याप्त एकता के तत्वों को उस समय भी जीवित रखा जब कि भारत की एकता एक भौगोलिक तथ्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह गयी थी।

लेकिन अब राजनैतिक और आर्थिक दबाव के कारण वह कमजोर पड़ता जा रहा है। पहले पिता अपने परिवार का सर्वेसर्वा और स्वामी था लेकिन आज वह उतना प्रभावशाली नहीं रहा। माँ का शासन भी ढीला पड़ गया है, पहले वह पारिवारिक जीवन के हर पहलू पर अपना प्रभाव डालती थी और बहुओं से वह घर के नौकर की तरह काम लेती थी।

राजनीति के अलावा बदलती अर्थ-व्यवस्था ने बच्चों को रोजगार की तलाश में घर छोड़ने पर मजबूर कर दिया है। नयी जगह जाकर नये वातावरण में वे नये दोस्त बनाते हैं, नये रीति-रिवाजों के अनुरूप अपने को ढालते हैं, नये समुदायों से मिलते-जुलते हैं, नये विचार ग्रहण करते हैं, और सभी प्रकार के नये काम करने की कोशिश करते हैं।

परिणाम स्वरूप, चूँकि हिन्दू संयुक्त परिवार अब एक ईकाई नहीं रह गया है, इसलिए जाति-व्यवस्था भी टूटती दिखायी दे रही है। दो पीढ़ी पहले किसी हिन्दू का अपनी जाति के बाहर विवाह बुरी बात समझी जाती थी, यदि उसने मुसलमान लड़की से विवाह कर लिया तो जाति से उसका बहिष्कार कर दिया जाता था। यदि सबसे ऊँची जाति ब्राह्मण के परिवार में किसी ने हरिजन (अस्पृश्य) के साथ विवाह कर लिया तो उससे दङ्गे हो जाते थे और वर-वधू तथा उनके क्षुभित परिवारों को इन्हीं समुदायों के कोप से रक्षा करनी पड़ती थी।

गांवों में अब भी यही हालत है, लेकिन नगरों और शहरों में, जहाँ प्रतिवर्ष अधिकाधिक संख्या में ग्रामीणजन आते रहते हैं, जाति का वह महत्वपूर्ण और पवित्र स्थान नहीं रहा।

इधर कुछ वर्षों में जब कि कर, हिन्दू परिवार को एक इकाई मानकर नहीं लगाये जाते, अभिभावकों और परिवार से अलग रहने की प्रवृत्ति काफी बढ़ गयी है।

और दो वर्ष पूर्व जब संसद ने यह कानून बनाया कि हिन्दू-पत्नी अपने पति को तलाक दे सकती है और हिन्दू कन्या अपने पिता की सम्पत्ति में हिस्सेदार हो सकती है तब से भारतीय सामाजिक व्यवस्था का धीरे-धीरे विघटन होने लगा है।

इस विघटन ने राष्ट्रव्यापी विवाद का रूप ले लिया है। विकास करके प्रगति की रफ्तार को तेज करने वालों के साथ सरकार है, संसद है, भारत का नौजवान वर्ग है और उसके मुक्ति आन्दोलन के नेतागण है। इसके विरोधी खेमे में हिन्दू रूढ़िवादिता है जो अभी भी काफी प्रभावशाली है, उच्च और मध्यमवर्ग का

एक काफी बड़ा हिस्सा है, गांवों के जीवन का सञ्चालन करने वाले मुखिया हैं और आश्चर्य की बात है कि अनेक सामाजिक कार्यकर्ता भी हैं जो यह अनुभव करते हैं कि चूंकि राष्ट्र की बुनियाद हमेशा परिवार रही है इसलिए परिवार के तेजी से विघटन से बहुत गड़बड़ी फैल रही है, अनेक उलझनें पैदा हो रही हैं और इस अन्तरिम अवधि में अशान्ति फैल रही है।

इन कार्यकर्ताओं की यह बात सही है कि भारत में जो परिवर्तन हो रहा है उसकी रफ्तार बहुत अधिक तेज है और एक ही दशाब्दी में सब कुछ बदलने की कोशिश का पूरा हो सकना कठिन है। हजारों गांव जो सोये हुए थे, नये परिवर्तनों से जाग उठे हैं और उनमें बहुत हलचल मची हुई है। इन गांवों में सम्पत्ति अपना महत्व खो चुकी है, जाति और बिरादरी की परम्पराओं की किसी बात की परवाह किये बिना परिवर्तन की इन लपटों में झोंका जा रहा है। नगरों में और कस्बों में उभरती नयी पीढ़ी धीरे-धीरे होने वाली प्रगति को पैरों तले रौंदकर तेजी से आगे बढ़ रही है और पश्चिमी अमल के तौर-तरीकों आदि को ग्रहण करती जा रही है।

इसलिए यदि आज अधिकांश भारतीयों के चेहरों पर परेशानी छायी हुई दिखायी देती है तो इसमें क्या कोई आश्चर्य की बात है? कुछ बहुत बड़ी बात हो रही है लेकिन मुश्किल सिर्फ इतनी है कि कोई यह निश्चित रूप से नहीं जानता कि क्या हो रहा है और यह अच्छा हो रहा है या बुरा। सब बातें उलट-पुलट गयी हैं। जो कभी सबसे ऊपर था सबसे नीचे आ पड़ा है, जो कुछ नीचे था वह सब ऊपर नहीं पहुँच सका है। एक ऐसे देश में जहाँ हमेशा कुछ विशेषाधिकार प्राप्त व्यक्तियों का ही शासन रहा, समानता कायम करने की अपूर्व शक्ति लेकर आजादी आयी है।

यह बहुत तेज आँधी है जिसने महाराजाओं को उनके शानदार और सुसज्जित हाथियों के आसन से उड़ाकर नीचे ला दिया है, बड़े-बड़े सामन्तों को उनकी रियासतों से उखाड़ दिया है। इसने गांव के स्कूल मास्टरों को उठाकर शासन के उच्च पदों पर आसीन कर दिया और अस्पृश्यों को सर्वाधिक पवित्र हिन्दू मन्दिरों के गर्भ-प्रदेश में वहाँ तक पहुँचा दिया है जहां देवी देवताओं की प्रतिमाएँ हैं। भारत का सूरज आज भी तप रहा है लेकिन अब उसके नीचे कोई ऊँघ नहीं सकता।

—२—

एशिया में कहीं ऐसा भी है जहां जातियों के आपस में मिल-जुल जाने से भविष्य का विश्लेषण कर सकना बहुत कठिन हो गया है। उदाहरण के लिए,

मलाया में यदि आप किन्हीं तीन व्यक्तियों से मिलें तो इस बात की पूरी सम्भावना है कि वे विभिन्न जातियों के होंगे।

अब्दुल किसान है, तुंगफू टीन की खान में काम करता है, मुट्टू रबर निकालने का काम करता है। जाति की दृष्टि से ये क्रमशः मलयी, चीनी और भारतीय हैं।

द्वितीय विश्व-युद्ध खत्म होने के बाद से जो परिवर्तन हुआ है और जो प्रगति हुई है, उसकी चरम परिणति उनके लिए इस रूप में हुई है कि वे एक-दूसरे को मलयी समझें, वे एक-दूसरे को इस सङ्घ का समान नागरिक समझें जिसका जन्म ३१ अगस्त १९५७ को हुआ और जो दुनियाँ के सबसे नये आजाद राष्ट्रों में से एक है।

ब्रिटिश लोगों का कहना है कि इसमें कुछ समय लगेगा और इसके लिए प्रयास करना होगा। प्रशासन पर ब्रिटेन का नियन्त्रण खत्म हो जाने के बाद अब इस बहुजातीय जनता पर जो जिम्मेदारियाँ आ गयी हैं उनका इनको निर्वाह करना है, लेकिन इन तीनों ने अपनी विरासत में जो रीति-रिवाज और दृष्टिकोण पायें हैं, वे परस्पर एकदम भिन्न हैं।

आजाद हुए अन्य देशों के निवासियों के विपरीत अब्दुल, तुंगफू, मुट्टू और सङ्घ के ६५ लाख जनता के शेष लोगों को बिना सङ्घर्ष किये ही सामूहिक आजादी प्राप्त हो गयी। निस्सन्देह, उन्होंने कभी इस आजादी को देखा नहीं। स्थानीय नेताओं ने बिना उनकी भावनाओं को उभाड़े उनके लिए यह आजादी प्राप्त कर ली। इस आजादी को अप्रत्याशित रूप से जल्दी प्राप्त कराने में ब्रिटेन ने इन नेताओं की मदद की और अब ये नेता अनुभवों के सहारे प्रशासन चलाना सीख रहे हैं।

अब्दुल ने जो कि किसान है, इस सारे परिवर्तन से क्या समझा? बेशक, उसने यह समझा कि जीवन की गति को और तेज करने की माँग की जा रही है, उससे यह कहा जा रहा है कि ग्राम तथा उद्योग-विकास अधिकरण जो कुछ कह रहा है वह उसे ध्यान से सुने, सहकारी समितियों को मजबूत बनाया जाय क्योंकि ये समितियाँ उसकी सहायता के साथ ही मछुवों के उस दलाल को हटाने में मदद कर सकती हैं जिसने अतीत में उसका शोषण किया है, द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद इस प्रकार की सहकारी समितियों की संख्या बढ़कर २१०० हो गयी है। ये ४२ प्रकार की हैं और इनमें जो पूंजी लगी है वह करीब एक करोड़ ७० लाख अमेरिकी डालर के बराबर है।

लेकिन अब्दुल रूढ़िवादी है, अब तक वह यही सोचता रहा है कि उतना ही चावल या अन्य चीजें पैदा की जायें जितने से परिवार की आवश्यकता पूरी

हो जाय और थोड़ा गाँव की पैसे की अन्य जरूरतों के लिए बच जाय। इसके परिणाम स्वरूप मलयी लोग जिनका ६० प्रतिशत कृषि पर निर्भर करता है, अन्य दूसरे और तीसरे बड़े जातीय समुदायों से पिछड़ गये। ये बड़े जातीय समुदाय हैं—चीनी और भारतीय।

अब सरकार यह कोशिश कर रही है कि मलयी जनता अन्य जातियों की बराबरी में आगे बढ़े। इसके लिए वह इनकी सिंचाई, बिजली और अन्य योजनाओं के द्वारा, जिनका लाभ काफी लोगों को प्राप्त हो सकेगा, मदद कर रही है। वह ऐसे उपाय लागू कर रही है जिससे उत्पादकता बढ़े और वितरण की व्यवस्था इतनी कुशल हो सके कि प्रत्येक व्यक्ति लाभान्वित हो। इसमें अब्दुल उतना सहायक नहीं हो सका जितनी आशा की जाती थी, लेकिन धीरे-धीरे वह सही रास्ते पर आता जा रहा है।

संगफू कुछ भिन्न किस्म का व्यक्ति है। १९५८ में टिन के अन्तर्राष्ट्रीय मूल्य नियन्त्रण के कारण टिन के उत्पादन पर प्रतिकूल असर पड़ा और मन्दी आयी लेकिन सौभाग्य से यहाँ के १० हजार खनको में से एक भी बेरोजगार नहीं हुआ। वह मलाया में अपनी जाति के विशिष्ट गुण के अनुसार बराबर एकाग्रचित्त होकर मेहनत से काम करता रहा।

चीनियों की संख्या मलयी जनता की संख्या से कुछ लाख कम है और ये शहर के छोटे-बड़े सभी किस्म के वाणिज्य संस्थानों में उदबिलाऊ की तरह काम करते हैं। वैसे यहाँ ये टिन की खानों में काम करने आये थे। दुनियाँ में टिन के कुल उत्पादन के एक तिहाई का मलय-सङ्घ में ही उत्पादन होता है, और यही बात रबर के उत्पादन के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है।

चीनी पृथक् समुदाय के रूप में रहते आये हैं और कृषि में लगे मूल मलयी निवासियों को संरक्षण देने की नीति के आधार पर ब्रिटेन ने चीनियों को इसके लिए प्रोत्साहन दिया। अब ब्रिटेन के यहाँ से चले जाने के बाद मलयी जनता के साथ इनके एकीकरण के लिए यह जरूरी हो गया है कि परस्पर विरोधी स्वार्थों में समन्वय कायम करने के लिए इनमें पारस्परिक विश्वास पैदा किया जाय।

और मुट्टू जो रबर निकालने का काम करता है? द्वितीय विश्व-युद्ध समाप्त होने के बाद उसके लिए जो बहुत बड़ा परिवर्तन आया है और जिसने अन्य अनेक किस्म के मजदूरों को भी प्रभावित किया है, वह है, उसकी ट्रेड यूनियन की संरक्षण दे सकने की ताकत में जबरदस्त वृद्धि। सामूहिक रूप से माँग करने की शक्ति और किसी भी समय हड़ताल की धमकी से मजदूरी बढ़ी है और उनको सजग बना दिया है। मजदूर बस्ती में रहन-सहन की हालत में सुधार हुआ है।

दक्षिण-भारत से आये इस युद्ध की राजनीति में कुछ दिलचस्पी है। एक बार यह इसी मलाया में कम्युनिस्टों की ओर चल गया था लेकिन जङ्गलों में छिपे छापामारों की तीव्र आक्रमणकारी कार्रवाई से वह डर गया और फिर पीछे लौट गया। इन छापामारों ने कभी उधर ध्यान तक नहीं दिया जिससे वह काम करता था। मलाया कम्युनिस्टों ने जिनमें से ९० प्रतिशत चीनी हैं, १९४८ से बराबर जङ्गलों में छिपकर आक्रमणकारी कार्रवाई द्वारा अपनी बात मनवाने की कोशिश की है। मलाया के ३/५ हिस्से में जङ्गल है और इन्हीं जङ्गलों में इन छापामारों के अड्डे हैं। अब भी यहाँ १२०० सशस्त्र छापामार हैं लेकिन अब युद्ध, मलाया और सिंगापुर को उनसे अधिक खतरा नहीं है, अब उनके मुकाबले अधिक खतरा उन निरस्त्र कम्युनिस्टों से है जो जङ्गल के बाहर गुप्त रूप से कार्रवाई करते हैं।

हमारे इन चीनी मित्रों से उनकी मिली इस नयी आज़ादी की सुरक्षा बड़ी माँग यह है कि वे आज जिस राष्ट्र का निर्माण कर रहे हैं वह धीरे-धीरे आकार ग्रहण करता जा रहा है, इसलिए सतर्क रहकर तथा सामूहिक रूप से इस आज़ादी की रक्षा करें।

सिंगापुर में जिसको १९५९ में आन्तरिक स्वशासन प्राप्त हुआ, सभी के लिए विशेषकर आह यू ईंग चीनी बालिका के लिए भविष्य में उन्नति की बहुत सम्भावनाएँ हैं लेकिन साथ ही समस्याएँ भी हैं, इस बालिका और इसके परिवार के लिए। द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद से अब तक के परिवर्तन दिसम्बर १९५९ में निर्वाचित सरकार द्वारा शासन सँभाल लिये जाने के बाद हुए परिवर्तन तथा आने वाले परिवर्तनों के मुकाबले बहुत सामान्य से हैं।

क्योंकि चीनी मूल के चीनियों और चीन में पैदा हुए चीनियों को यहाँ पहली बार वही अधिकार और विशेषाधिकार प्राप्त हुए हैं जो सिंगापुर के अन्य सभी नागरिकों को प्राप्त थे।

आह यू स्कूल जायेगी और चीनी शिक्षा-पद्धति के अनुसार पढ़ सकेगी। १८१९ में सर स्टेमफोर्ड रैफल्स ने सामरिक महत्व के इस छोटे से नगण्य प्रदेश पर ब्रिटिश झण्डा फहराया था तब से लेकर १९५० के मध्य तक चीनी शिक्षा-पद्धति के लिए जो कुछ किया गया १९५० के मध्य से बाद उसके मुकाबले बहुत कुछ किया जा चुका है।

आह यू एक ऐसे राज्य में जिसमें १९५९ तक उसके १० लाख निवासियों (८० प्रतिशत चीनी) के करीब आधे ४४ वर्ष या उससे कम उम्र के बच्चे होंगे, युवक-युवतियों का प्रतीक है। मुख्य अनुमान ४६ प्रतिशत है।

हर आठ मिनट बाद एक सिंगापुरी पैदा होता है। इसीलिए इन तरुण लड़कों

पर हमेशा ही भीड़भाड़ रहती है जिनमें ऊपर खिड़कियों के सहारे लगाये खम्भों में लटकाये धुले हुए कपड़े अपनी चमक में नीचे दुकानों के साइनबोर्डों के चीनी अक्षरों से मुकाबला करते दिखायी देते हैं। नयी सड़कें और अधिकाधिक संख्या में इमारतें यह साबित करती हैं कि घनी बस्तियों की समस्या की चुनौती का जवाब दिया जा रहा है, यद्यपि इस दिशा में अपेक्षित तेजी नहीं दिखाई देती।

१९५४ से अब तक मजदूरी की दरों में १२ प्रतिशत की वृद्धि हो चुकी है और दस प्रतिशत लोग (अब डेढ़ लाख हैं) सरकारी सहायता से बनाये गये मकानों में किराया देकर रहते हैं। यह किराया कम से कम २० स्थानीय डालर (सात अमेरिकी डालर से कम) प्रति महीने होता है।

अधिक खुले हुए रिहायशी इलाकों में बड़े-बड़े अहाते वाले पुराने मकान गिराये जा रहे हैं जिससे वहाँ अनेक छोटे-छोटे मकान बनाये जा सकें।

जब आह तू के पिता से यह पूछा गया कि १२ वर्ष पूर्व जब वह स्कूल में था तब से लेकर आज तक सिंगापुर के चीनियों के जीवन में कौन-कौन से महत्वपूर्ण परिवर्तन आये हैं, उसने कहा—"लोगों की आदत और बिगड़ी है, रुपया बढ़ा है—और राजनीति।"

१९५५ में पार्टियों के आधार पर चुनाव हुए और उसी से राजनीति का प्रवेश हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद यह सार्वदेशिक जनता के जीवन में जिसमें चीनी, मलयी, भारतीय, पाकिस्तानी, लङ्कावासी, ब्रिटिश और अन्य लोग शामिल हैं, उल्लेखनीय नयी बात हुई है। कम्युनिस्ट पार्टी पर प्रतिबन्ध लगा हुआ है और वह गुप्त रूप से काम करती है। ये पीपुल्स एक्शन पार्टी में छद्म रूप से शामिल हो जाते हैं, जो कि वामपक्षीय पार्टी है, सामाजिक संस्थाओं, विशेषकर स्कूलों में घुस जाते हैं। वैसे शिक्षा-व्यवस्था का पुनर्गठन कर देने के बाद अब कम्युनिस्टों का स्कूलों में घुस सकना कठिन हो गया है।

आह तू के पिता से नये यूनाइटेड सोसलिस्ट फ्रान्ट में शामिल होने का अनुरोध किया जा रहा है जिसका सिंगापुर के प्रधान मन्त्री लिम यो हाक निर्माण करना चाहते हैं। उसके पिता के अधिकतर दोस्त पीपुल्स एक्शन पार्टी में हैं जो इस फ्रान्ट के विरुद्ध हैं। परिणाम स्वरूप आह तू के पिता सिंगापुर की ही तरह राजनीतिक चौराहे पर खड़े द्विविधा का शिकार हो रहे हैं।

—३—

प्रायः सर्वत्र एशियावासियों को अपने भविष्य के सम्बन्ध में कुछ-न-कुछ निर्णय करना पड़ रहा है। स्वशासन की दिशा में आगे बढ़ते हुए लोगों को

भविष्य में जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ेगा उनका आभास जापान के कितारो यानागिजावा और इशिरो किमूरा के वर्तमान अनुभवों से मिल सकता है।

घने बसे और तेजी से आगे बढ़ते हुए इस जापान द्वीप समूह की जनसंख्या नौ-करोड़ तक पहुँच चुकी है। युद्ध के बाद अमेरिका से निर्यात किये गये लोकतन्त्र का महत्व भी इनमें से प्रत्येक के लिए अलग-अलग है।

कुछ लोगों में इसने उन लाभों के प्रति पूर्ण जागरूकता पैदा कर दी जो आधुनिक लोकतन्त्रीय स्वातन्त्र्य अधिकारों के सुविचारित उपयोग से प्राप्त हो सकते हैं। कुछ अन्य लोगों पर इसका असर कुछ धीमा पड़ा है, उनमें जाग्रति की प्रक्रिया मन्द रही है, क्योंकि अधिकांश एशियाई देशों की ही तरह यहाँ भी बड़े शहरों से नये विचारों का परम्परा से अधिक रूढ़िवादी ग्राम्य-क्षेत्रों में प्रवेश होने में और उनके फैलने में काफी समय लगता है।

कितारो यानागिजावा जापानी आल्पस को पृथक् करने वाली उपत्यकाओं में से एक में काफी ऊँचाई पर सेव की खेती करता है और यह दूसरे वर्ग का व्यक्ति है। यानागिजावा-खान और उसका परिवार अभी इतना जागरूक नहीं हो सका है कि लोकतन्त्रीय सिद्धान्तों को अपने हित में व्यवहार में ला सके, फिर भी यह कहना अनुचित न होगा कि वह जापान के लोकतन्त्रीयकरण के लाभ का उपभोग कर रहा है।

सबसे बड़ा पुत्र होने के कारण यानागिजावा स्वतः ही पारिवारिक घर व जमीन सबका उत्तराधिकारी बन गया और जैसा कि सामान्यतया होता रहा है, दूसरे व तीसरे पुत्र कुछ और काम-काज करके आजीविका कमाने शहर चले गये।

यानागिजावा की उम्र कम थी इसलिए वह लड़ाई में नहीं जा सका, लेकिन इतना बड़ा हो चुका था कि युद्धकाल में ग्राम्य-जीवन की कठिनाइयों को समझ सके। उसने नगानो जिले के अपने गाँव मात्सुको में यह देखा था कि युद्धकाल में कड़े प्रतिबन्ध लगा दिये गये थे, हर व्यक्ति की गतिविधि पर कड़ी निगरानी रखी जाती थी और जीवन यापन अत्यन्त कठिन हो गया था। १९४५ में यह सारे बन्धन अचानक छिन्न-भिन्न हो गये और युद्ध में पराजय के बाद जो व्यवधान पैदा हो गया उसमें उसने शहतूत के पेड़ पर रेशम के कीड़ों को पालने का अपना पुराना खान्दानी पेशा छोड़ दिया और एक बाग लगा लिया जिसमें सेव के करीब ७० पेड़ लगाये।

उसके लिए यह युद्धोत्तर काल की आजादी का पहला अनुभव था। यद्यपि आरम्भ में उसे कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, फिर भी उसने हिम्मत नहीं छोड़ी और अपने पेड़ों से चिपका रहा। पाले, कीड़ों या कीमत गिरने से

सेव की पैदावार में नुकसान को पूरा करने के लिए उसने आधे एकड़ में चावल की खेती कर ली।

अमेरिकी सेना के जनरल डगलस मैकआर्थर ने भूमि सुधार कार्यक्रम लागू कर बड़े-बड़े फार्मों को विभक्त कर दिया। वैसे, यानागिजावा और उसके पड़ोसी इस भूमि सुधार के महत्व को पूरा-पूरा नहीं समझ पाये फिर भी इतना वे समझ गये कि जहाँ तक उनका अपना सम्बन्ध है वे पहले के मुकाबले स्वतन्त्र हो गये हैं, वे स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य कर सकते हैं, इससे उनमें स्वाभिमान की भावना बढ़ी और बैंकों से ऋण प्राप्त करने में अब कोई अर्धसामन्ती रुकावट नहीं रही।

आज यानागिजावा लोकतन्त्र के सम्बन्ध में अधिक कुछ नहीं कह सकता लेकिन वह समझता है कि इससे उसकी अपनी हालत सुधरी है, उसका हित हुआ है।

१९५७ में बढ़िया फसल हुई। इसका श्रेय इस बात को है कि रासायनिक खाद तथा कीटाणुनाशक दवा उपलब्ध है और यानागिजावा ने बीज बोने से लेकर उगने और बढ़ने तक करीब १५ बार इनका छिड़काव किया।

बिना खर्च यात्रा की सुविधा प्राप्त होने से नगर की सहकारी संस्था के लिए पाले के मौसम में उत्तरी होन्शू से मजदूर बुलाकर एक-एक सेव को कागज से लपेटकर सुरक्षित कर देना सम्भव हो गया है। सेवों को तोड़कर जमा करने में भी इनसे मदद ली जा सकती है, फिर, सहकारी संस्था भी जो कि लोकतन्त्रीय पद्धति से चलायी जाती है, यानागिजावा की सेवों की फसल खरीद लेती है, उनको बक्सों में बन्द करके बन्दरगाहों को भेजती है। यही नहीं, वह इनका दुनिया के विभिन्न भागों को निर्यात करने में भी विशेष दिलचस्पी लेती है।

जापानी किसानों के रहन-सहन में काफी सुधार हुआ। इसका प्रतीक है यानागिजावा जिसने १९५७ में अपने मुनाफे में से एक तीन पहियों की ट्रक खरीद ली। इसके बाद भी उसके पास इतना पैसा बच रहा जिससे वह अपनी पत्नी और दो बच्चों का सैर के लिए अक्सर समीप के एक विश्राम-स्थल पर ले जाने लगा। उसे अमेरिकी फिल्में बहुत पसन्द हैं, इसलिए मनोरंजन के लिए इन फिल्मों को देखने के लिए वह सप्ताह में एक बार निकट के उएदा शहर भी जाता है।

पुष्ट मांसपेशियों वाले और सूर्य की किरणों में तपे ताम्रवर्ण के यानागिजावा में आत्मसम्मान की नयी भावना का उदय हुआ है। उसका सम्मान बढ़ा है लेकिन उसकी सभी पुरानी आदतें छूट गयी हों, ऐसी बात नहीं है। जब उसकी लड़की बड़ी हो जायगी तो वह इस बात पर जिद करेगा कि उसका विवाह परम्परागत रीति के अनुसार हो, माता-पिता कन्या के लिए वर चुनें, जैसा कि उसकी बहिन सुमिको के विवाह के लिए हुआ। यदि उसके दो से अधिक पुत्र हैं तो वह चाहेगा कि सबसे बड़ा पुत्र ही उसके फार्म का अधिकारी हो, यद्यपि भूमि सुधार कार्यक्रम

में यह स्पष्ट व्यवस्था की गयी है कि फार्म को पुत्रों में बराबर-बराबर बाँट दिया जाय।

दिन भर बगीचे में काम करने के बाद यासागिजावा अँगीठी के पास बैठकर गरम-गरम शकरकन्द को छीलता जाता है और जापान के अन्य एक करोड़ ८० लाख किसानों की तरह दार्शनिकता की बातें करता है।

वह कहता है, "हम लोकतन्त्र के विषय में अधिक नहीं जानते, लेकिन यदि उसका यह मतलब है कि हम अपने मनपसन्द तरीकों से आजीविका कमा सकते हैं और इसमें कोई रुकावट नहीं डाली जायगी, कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया जायगा, तो फिर इसमें कोई सन्देह नहीं कि हम ऐसे लोकतन्त्र का समर्थन करते हैं, हमें यह पसन्द है।"

वैसे, लोकतन्त्र अभी यासागिजावा-सान की जीवन-पद्धति का चेतन अंग नहीं बन पाया है लेकिन तरुण नाई इशिरो किमुरा ने, जो तोक्यो के केन्द्रीय निहोनबाशी क्षेत्र के दूरी और एक छोटी सी दुकान का मालिक है, अपने विचारों को लोकतान्त्रीय ढाँचे में ढाल लिया है, लोकतन्त्र उसकी जीवन-पद्धति का अभिन्न अङ्ग बन चुका है।

जब जापान में युद्ध छिड़ा तो किमुरा-सान को फौज में भर्ती होना पड़ा। उसे जापान की हमलावरशाही सेना के साथ चीन भेजा गया। उसने वहाँ नानकिंग की लड़ाई देखी लेकिन लड़ाई में भाग नहीं लिया। किमुरा-सान जापानी बटालियन का नाई था।

१९४५ में आत्मसमर्पण के बाद किमुरा-सान अमेरिकी जहाज द्वारा शंघाई से स्वदेश लौटा। स्वदेश लौटने पर उसने देखा कि उसका घर जल चुका है। यही नहीं, वह अपने लिए कोई दुकान भी नहीं खोल सकता था।

कुछ मित्रों ने उसे सुझाव दिया कि अमेरिकी सेना को नौकरी के लिए अर्जी भेजे। उस समय जापान पर अमेरिकी सेना का कब्जा था। उसने ऐसा ही किया और उसे तोक्यो के मोटर के एक कारखाने में ग्रीज लगानेवाले का काम मिल गया।

इस कारखाने के अधिकारी सार्जेन्ट को कुछ समय बाद जब यह मालूम हुआ कि किमुरा-सान बाल बनाने की कला में दक्ष है तो उसने शीघ्र ही उसकी पदोन्नति कर दी। वह कम्पनी का नाई नियुक्त कर दिया गया।

किमुरा-सान ने दाई इची होटल के निचले तल्ले में नाई का काम शुरू कर दिया। अमेरिकी सेना के अनेक अफसर बाल बनवाने इस दुकान पर आते और किमुरा-सान को काफी बख्शीश देते।

१९५१ में शान्ति-सन्धि होने तक किमुरा-सान के पास काफी पैसा जमा हो गया और उसने किराये पर दुकान लेकर अपना कारोबार शुरू कर दिया।

लेकिन वह केवल नाई ही नहीं रहा। उसके पास किताबें जमा होने लगीं। इन किताबों की ओर इशारा कर उसने कहा, "केवल नाई बने रहने में मुझे सन्तोष नहीं है। अब जापान में हम किसी एक पेशे से बँधे रहने के लिए मजबूर नहीं हैं। हम इससे अच्छा और कोई भी काम करने को स्वतन्त्र हैं। इसलिए मैंने रात्रि-पाठशाला में जाना शुरू कर दिया है। मैं बिजली-इंजीनियरिंग की पढ़ाई कर रहा हूँ।" जब वह यह कह रहा था, उसकी आँखों में एक अजीब-सी चमक थी जो इस बात का सबूत थी कि इस नयी स्थिति पर उसे गर्व है।

शहर में रहने वाले अधिकांश जापानियों की तरह किमुरा-सान भी पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार कार्य करता है। वह अपने को एकदम व्यस्त रखता है। गर्मियों में वह सूर्योदय से कुछ पूर्व करीब साढ़े-चार बजे उठ जाता है। ठण्डे चावल और मछली आदि का नाश्ता कर वह सीधे बिजली की ट्रेन पकड़ने दौड़ता है, दस-पन्द्रह मिनट तक कतार में खड़े रहकर वह खचाखच भरी ट्रेन में जोर लगाकर किसी तरह अपने लिए जगह बना लेता है। ट्रेन में भी वह समय बरबाद नहीं करता। फीतों के सहारे लटके लटके वह सबक दुहराता रहता है और यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक कि ट्रेन उसे निहोनबाशी स्टेशन पर नहीं पहुँचा देती।

कभी-कभी वह निराशा भरे स्वर में कहता है, "लोकतन्त्र ने हमें बहुत-सी चीजें दी लेकिन ट्रेनों और बसों की कमी दूर नहीं हुई।" किसी और ने कहा कि इतनी अधिक भीड़भाड़ के बावजूद टोक्यो का काम सुव्यवस्थित ढङ्ग से चलते रहने का केवल यही एक कारण है कि उसकी अस्सी लाख से अधिक जनसंख्या का एक-तिहाई या इससे अधिक हिस्सा दिन में हर समय ट्रेन या बसों में ही सफर करता रहता है।

किमुरा-सान दोपहर को काम बन्द कर विश्राम करता है। इसी समय एक लड़का उसके लिए भोजन लाता है। फिर साढ़े-छह बजे शाम दूकान बन्द कर वह सीधे रात्रि-पाठशाला को रवाना हो जाता है।

ग्यारह बजे रात वह घर पहुँचता है और तब तक उसकी पत्नी जिसको उसने परम्परा के विरुद्ध स्वयं चुना है, उसका इन्तजार करती रहती है। वह उसके आते ही ठण्डे चावल और मछली आदि परोस देती है और जब तक वह भोजन करता है, पास बैठी रहती है। सप्ताह के सात दिनों में से छह दिन तक उसका यही कार्यक्रम रहता है।

रविवार को किमुरा-सान, उसकी पत्नी और उनका नन्हा पुत्र, छुट्टी मनाते हैं। किमुरा-सान ट्रेन और बस में चढ़ने के लिए फिर उसी तरह सङ्घर्ष करता है और कुछ हजार अन्य जापानियों के साथ शहर की सीमा से कुछ मील दूर

"देहात" में वह उतर पड़ता है। उसकी पत्नी और पुत्र खेलते रहते है या हास्य-रस की जापानी पुस्तक पढ़ते है लेकिन किमुरा-सान एकान्त मे सोमवार की रात को पढ़ाये जानेवाले सबक को पढ़ता रहता है।

उसका कहना है, "बेशक, हमारे पास दो कमरे हैं, रसोई में हमें दूसरे परिवार के साथ मिलकर काम चलाना पड़ता है, लेकिन हमारे काम में कोई दखल नहीं देता जैसा कि युद्ध के दिनो में या उससे पहले दिया जाता था।"

वह इस परिणाम पर पहुँचा है कि, "आज जापानी जो बनना चाहता है, बन सकता है—जरूरत केवल कठिन परिश्रम करने की है। मै जिसे चाहूँ अपना वोट दे सकता हूँ और मेरी पत्नी महिला-सङ्घ मे अपनी बात कह सकती है। मैं मार्क्स के बारे में कुछ नही जानता, आपके राष्ट्रपति आइजनहावर के विषय मे भी मै अधिक नहीं जानता। लेकिन हम जापानियो के लिए लोकतन्त्र बहुत बड़ी चीज है।"

लेकिन लोकतन्त्र के कुछ तत्त्व ऐसे भी है जो कुछ जापानियों को नहीं भाते, उदाहरण के लिए उस अकाउन्टेन्ट को ही लीजिये जिसने तोक्यो के एक प्रमुख दैनिक पत्र के सम्पादक को लिखा :—"यह एक दम बेहूदा बात है कि जापानी महिलाओ को अन्य लोगो को धक्का देते हुए खचाखच भरी ट्रेनो में घुसने दिया जाय, यही नही वे ट्रेन पर चढ़कर सीटो पर कब्जा कर लेती हैं और हम पुरुषों को खड़े रहने पर मजबूर कर देती हैं।"

इसमे शक नही कि इस पत्र के लेखक समय से कुछ पीछे रह गये हैं और शायद उन्होने जापान के उन नये कानूनो को नही पढ़ा है जो महिलाओं की नयी स्थिति से सम्बन्ध रखते है।

१६४५ मे जब विजयी अमेरिकी सेनाएँ योकोहामा से तोक्यो तक धूल भरी सड़को पर मार्च करती हुई आगे बढ़ रही थी औसत जापानी महिला केवल घर और समाज की शोभा बढ़ाने वाली नारी मात्र थी, उसका सौन्दर्य और कोमलता केवल सजावट के लिए थी। सार्वजनिक स्थानो पर वह आज्ञाकारिणी की तरह अपने पति से तीन-चार कदम पीछे चला करती, भोजन भी अलग करती, परिवार के प्रधान के आदेशो का चुपचाप पालन करती और जब परिवार की सम्पत्ति आदि का बँटवारा होता, जिसमें वह शामिल नही की जाती थी, तो वह चुपचाप एक किनारे पर खड़ी यह सारी कार्रवाई निहारती रहती थी।

लेकिन, आज विशेषकर शहरी क्षेत्रो में इस स्थिति मे बहुत परिवर्तन हो चुका है। पुरानी परिपाटी खत्म होती जा रही है। नारी सुन्दर रेशमी वस्त्रो के घेरे में बन्द केवल सजावट की वस्तु नही रही। उस पर लोकतन्त्रीय विचारो का प्रभाव पड़ा है और अब वह परिवार की सक्रिय सदस्या बन गयी है, वह

परिवार की समस्याओं पर सबके साथ विचार-विमर्श में भाग लेती है, वह महिला-सङ्गठन में शामिल होने लगी है जो सरकार पर परिवारों को प्रभावित करने वाले कानून बनाने के लिए दबाव डाल रहा है। यही नहीं, राष्ट्रीय पैमाने पर तलाक की बढ़ती संख्या इस बात का सबूत है कि जब और कोई चारा नहीं रह जाता वह अपने कानूनी अधिकारों का प्रयोग करने लगी है।

यद्यपि गाँवों में विवाह के मामले में अभी पुराने रीति-रिवाजों का पालन हो रहा है फिर भी शहरों में उनका प्रभाव प्रायः खत्म हो चुका है। बड़े शहरों में माता-पिता द्वारा तय की गयी शादियों की संख्या बहुत ही कम हो गयी है। जापानी महिलाएँ अपना काम अक्सर स्वयं ही करने लगी हैं। मई १९५८ में ग्यारह महिलाएँ, प्रतिनिधि सभा (जापान की लोक सभा) की सदस्या चुनी गयीं, यह तथ्य इस बात को सिद्ध करता है कि जापान के उच्च राजनीतिक नेतृमण्डल में महिलाओं की संख्या चाहे कम हो, लेकिन उन्हें महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

अकेले तोक्यो की मजदूरों में एक तिहाई महिलाएँ हैं, विश्वविद्यालय के छात्रों का पाँचवाँ हिस्सा महिलाएँ हैं और अनेक महत्वपूर्ण सरकारी पदों पर भी महिलाएँ आसीन हैं।

इसमें शक नहीं कि नयी आज़ादियों के साथ-साथ कुछ ऐसी भी बातें पैदा हुई हैं जिनको पसन्द नहीं किया जाता। उदाहरण के लिए, बड़े-बूढ़े जापानी यह शिकायत करते हैं कि आज़ादी के साथ लोग स्वार्थी हो गये हैं—"जो मिल जाय हथिया लो" की प्रवृत्ति बढ़ रही है। लेकिन जब सामाजिक क्रान्ति होती है और पुरानी व्यवस्था खत्म होने के साथ ही नयी व्यवस्था आकार ग्रहण करने लगती है, तब प्रायः ऐसा होना अस्वाभाविक नहीं है।

किसी भी सामाजिक परिवर्तन की तरह जापान में महिलाओं की स्थिति में जो सुधार हुआ है, उसमें जो परिवर्तन आया है, उसका शहरों के मुकाबले गाँवों में अभी बहुत कम असर हो पाया है। गाँवों में इस नये परिवर्तन की गति बहुत धीमी है।

उदाहरण के लिए, हाल ही सरकार द्वारा किये गये सर्वेक्षण से पता चलता है कि जापान के ६० लाख किसान परिवारों में से ९३ प्रतिशत में पति ही सब कुछ निर्णय करता है, चाहे वह भोजन के सम्बन्ध में हो या चुनाव में वोट देने के सम्बन्ध में।

शहर की लड़कियाँ अपने पतियों का चुनाव स्वयं ही करती हैं लेकिन देहात की लड़कियाँ या कम से कम लगभग ५२ प्रतिशत यही पसन्द करती हैं कि माता-पिता ही उनका विवाह तय कर दें।

किसान महिलायें दिन में दस घण्टे खेतों में पशुओं की तरह उनके पति

में खड़े होकर अन्य पुरुषों के साथ धान रोपती रहती हैं। हो सकता है इसे पुरुष एवम् महिलाओं में समानता की संज्ञा दी जाय। लेकिन जब यह काम खत्म हो जाता है तो केवल पुरुष-वर्ग ही ऐसा है जो वास्तव में छुट्टी मनाता है। वे नहा-धोकर अँगीठी के पास बैठ अखबार पढ़ने लगते हैं परन्तु महिलाओं को इतनी फुरसत कहाँ। वे खेत से थकी थकाई लौटने के बाद भोजन बनाती हैं, सबको भोजन परोसती हैं, फिर अकेले में स्वयं भोजन कर चौका-वर्तन करती हैं। शायद किसी भी देश की कार्यशील महिला के लिए यह कोई असाधारण बात नहीं है।

जब कृषक-परिवार यह देखता है कि खर्च चलना मुश्किल हो गया है तो वह एक लड़की को समीप के किसी शहर में भेज देता है जिसमें वह किसी कारखाने में या किसी परिवार में नौकरी कर सके या फिर किसी बड़े स्टोर में क्लर्क बन सके।

वह कम्पनी के शयनागार में रह सकती है और तकदीर अच्छी हुई तो उसे किराये पर एक छोटा कमरा भी मिल सकता है। जो भी हो, वह शीघ्र ही स्वतन्त्र जीवन बिताना सीख जाती है। वह अपना खर्च चलाती है, मित्र बनाती है और जहाँ चाहे घूम फिर सकती है। यदि उसने सोच-समझ कर खर्च किया है तो साल में एक नयी पोशाक खरीद लेती है।

जब तक उसके घर लौटने का समय आता है, वह बहुत कुछ सीख चुकी होती है जो देहात उसे नहीं सिखा सकता था। सम्भव है वह आज्ञाकारी पुत्री की तरह माता-पिता द्वारा तय की शादी स्वीकार कर ले, लेकिन यह सम्भव नहीं कि वह आजादी का अनुभव कर लेने के बाद अन्य सभी मामलों में फिर उसी पुरानी परिपाटी को स्वीकार कर ले।

—४—

इस प्रकार जन-जागृति की कहानी हमेशा व्यक्ति पर ही केन्द्रित हो जाती है। सुदूर पूर्व से मध्यपूर्व की ओर बढ़ने पर कहानी का अगला केन्द्र बन जाता है मोशे लेविन, जो इजराइल के किबुत्ज नेत्जेर-सेरेनी का निवासी है। मोशे अपने भविष्य का निर्माण किस प्रकार कर रहा है?

स्वस्थ और पुष्ट शरीर वाले मोशे लेविन की उम्र यही तीस-चालीस के बीच है। इस बात पर विश्वास करना बहुत कठिन है कि १९४५ में जब अमेरिका की आठवीं सेना के नीग्रो सैनिकों ने जर्मनी में गार्मिश-पार्तेन किर्चेन के यन्त्रणा-शिविर से मोशे को मुक्त किया था तो इसका वजन केवल ७५ पौण्ड रह गया था।

श्री लेविन एक छोटे से किबुत्ज (सामूहिक) कारखाने के छोटे से दफ्तर के एक कोने में मेज पर झुका हुआ है, मेज पर नक्शा फैला हुआ है। उसके

कारखाने में ३४ टन के ट्रेलर बनाये जाते हैं। वह इन ट्रेलरों के ढाँचे में सुधार करने की योजना पर काम कर रहा है। नेगेव से इज़राइल के औद्योगिक केन्द्रों तक कच्चा माल पहुँचाने में इन ट्रेलरों को इस्तेमाल किया जाता है।

वह जिस ध्यान से काम पर जुटा हुआ है उसको देखते हुए शायद ही कोई यह अनुमान लगा सकता है कि इस शान्त और मुस्कराते व्यक्ति का भविष्य दो महाद्वीपों के युद्धों, क्रान्तियों, धुआँधार लड़ाइयों, उत्पीड़न और भयानक यन्त्रणाओं ने गढ़ा है।

जब वह १६ वर्ष का था, उसने देखा सोवियत टैंक उसके शहर कोवनो की सड़कों पर, जो लिथुआनियाँ की राजधानी था, धड़कते चले आ रहे हैं। इन टैंकों के आगमन के साथ ही उसका, उसके भाइयों-बहिनों, माता-पिता और अधिकांश मित्रों तथा परिचितों का जीवन अस्त-व्यस्त हो गया। उसके पिता की दुकान और सम्पत्ति जब्त कर ली गयी और उसे "पूँजीवादी शोषक" का पुत्र कहकर जल्द ही स्कूल से निकाल दिया गया।

अगले साल हिटलर की सेनाओं ने कोवनो से सोवियत सेनाओं को भगा दिया। चक्की के दो पाटों के बीच में पड़ जाने पर मोशे ने स्मोलेन्स्क की ओर भागने की कोशिश की लेकिन पकड़ लिया गया। जर्मनों ने उसे यहूदियों की नयी बस्ती में ला पटका।

तत्पश्चात् चार वर्ष यन्त्रणा-शिविर में बीते। बेगार, भुखमरी, शिविर से पलायन, फिर "पार्टीज़न", संघर्ष, पुनः गिरफ्तारी और यन्त्रणा का नया दौर, यही उसके जीवन के अगले मोड़ रहे हैं।

श्री लेविन का कहना है, "मैं कभी भी 'ज़ियोनिस्ट' (यहूदीवादी) नहीं रहा। कोवनो में जब मैं बच्चा ही था, हमेशा कमरों आदि की सजावट करने वाला बनने का स्वप्न देखा करता। कभी-कभी यह भी सोचता था कि अमेरिका चला जाऊँगा क्योंकि मैंने सुन रखा था कि वहाँ उन्नति करने की अपार सम्भावनाएं हैं।

लेकिन मेरे जीवन में जो कुछ हुआ उससे सब कुछ बदल गया। मुझे यन्त्रणा दी गयी और यहूदी होने की वजह से अपमानित किया गया, मेरे मित्रों और परिवार के अधिकांश सदस्यों को मार डाला गया, क्योंकि वे यहूदी थे। इसलिए मैंने यह तय किया कि अब दुबारा ऐसा न हो सके।" अपनी इस बात की ओर ध्यान आकृष्ट करने के लिए उसने मेज़ पर मुट्ठी पटक कर बात समाप्त की। उसकी बाँह पर ८७७६८ नम्बर खुदा है जो दाखाऊ यन्त्रणा-शिविर की यादगार में बना हुआ है।

"मैंने फिलिस्तीन जाने का निश्चय किया। मैंने सुना था कि यहूदी वहाँ अपना नया घर बसाने की कोशिश कर रहे हैं—" उसने कहा।

१९४९ में ब्रिटिश प्रशासन द्वारा निष्क्रमण अनुमति-पत्र दिये जा रहे थे। कोटा बहुत सीमित था फिर भी उसे अनुमति-पत्र मिल गया। शीघ्र ही वह हइफा पहुँचा, लेकिन इस पवित्र-भूमि में भी उसे शान्ति नहीं मिली। वहाँ भी घोर अशान्ति फैली हुई थी। वास्तव में फिलिस्तीन पर ब्रिटिश शासन आरम्भ था और सर्वत्र अव्यवस्था और रक्तपात हो रहा था।

अँधेरी रातों में वह छोटे-छोटे गैर कानूनी जहाजों से यात्रियों को उतरने में मदद करता था। जून १९४६ में जब अंग्रेजों ने गैर कानूनी यहूदी रक्षा-सङ्गठन के सदस्यों को गिरफ्तार किया तो उनके साथ मोशे भी गिरफ्तार कर लिया गया और बन्दीगृह में डाल दिया गया। इस बार उस पर पहरा देने वाला था, अंग्रेज।

तीन महीने बाद वह रिहा किया गया। उसने रिहा होने के बाद फिर गुप्त रूप से काम करना शुरू कर दिया। फिर जब १९४८ में इजराइल राज्य बनने की घोषणा की गयी तो गुप्तरूप से कार्य करने वाला सङ्गठन इजराइल की नियमित सेना में बदल दिया गया और मोशे को कप्तान बनाया गया। उसने यरूसलेम के समीप जूडियन हिल्स में, गलीली में और अन्यत्र लड़ाइयाँ लड़ी और इन लड़ाइयों का नतीजा यह हुआ कि मिस्री सेना पराजित हो गयी।

युद्ध समाप्त होने के बाद वह सेना से अलग हो गया। उसने गिवत ब्रेन्नेर जाकर खूबसूरत अध्यापिका राफेल से शादी कर ली। राफेल भी किबुत्ज में ही पैदा हुई थी। कुछ महीने बाद उन्होंने गिवत ब्रेन्नेर की इस जमी जमायी सामूहिक बस्ती को छोड़कर समीप ही एक नयी सामूहिक बस्ती बसाने में मदद दी। यह नयी बस्ती है नेत्जेर-सेरेनी।

यहाँ एक कारखाने में उसने जटिल मशीनों का काम करने में अपनी योग्यता का परिचय दिया। दिन में वह औजारों की मरम्मत में मदद करता और शाम को मैकेनिकल इञ्जीनियरिंग की पुस्तकों का अध्ययन करने लगा। उसकी पढ़ने की रुचि को मान्यता मिली। उसे एक साल का कोर्स पूरा करने के लिए हइफा के इजराइली टेकनालाजी इन्स्टीट्यूट में भेजा गया। आज वह सामूहिक कारखाने में टेकनिकल मैनेजर है और ५० मजदूरों के कार्य का निरीक्षण करता है।

सप्ताह में छह दिन श्री लेविन साढ़े-छह बजे प्रातःकाल उठता है और स्नान करने के बाद सोवियत सङ्घ में बने बिजली के रेजर से हजामत करता है। यह रेजर पोलैंड से आये हुए एक व्यक्ति ने उसे भेंट दिया है। फिर वह सामूहिक भोजनालय में जाकर नाश्ता करता है। नाश्ते में पनीर, अण्डा, मक्खन, जैतून, टमाटर, ककड़ी, मुरब्बा और पाव रोटी शामिल रहती है।

सवा-सात बजे वह कारखाने पहुँच जाता है और आठ तक काम करता है। बीच में दो घण्टे का विश्राम होता है। पत्नी से उसकी सामूहिक भोजनालय में मुलाकात होती है। वह सामूहिक बस्ती के स्कूल में अध्यापन का काम पूरा कर वहाँ पहुँचती है। दोपहर का भोजन ही मुख्य भोजन होता है, इसमें शोरबा, मांस या मछली, सब्जियाँ, सलाद और फल या केक शामिल रहता है।

पाँच-बजे शाम को दफ्तर का काम खतम कर वह पैदल समीप ही अपने क्वार्टर में चला जाता है। जब तक वह नहा-धो ले, उसकी पत्नी भी घर पहुँच जाती है और साथ ही उसके तीनों पुत्र भी, जिनकी उम्र एक से पाँच वर्ष तक है। सबसे छोटे पुत्र को सामूहिक नर्सरी से घर ले आते हैं और अन्य दो किंडरगार्टेन से आते हैं।

रात के भोजन के बाद मोशे और राफेल कुछ समय बच्चों के साथ बिताते हैं। फिर मोशे अपना टेकनिकल साहित्य पढ़ता है और राफेल बच्चों के साथ खेलती है। वहाँ मनोरंजन के लिए सामूहिक-हॉल में व्याख्यानों, संगीत और सिनेमा, सबकी व्यवस्था है।

उस सामूहिक कारखाने के अन्य सदस्यों की तरह ही मोशे को वेतन नहीं मिलता। कारखाने की कुल आय सामूहिक खजाने में जमा हो जाती है और उसी से सभी सदस्यों के भोजन, वस्त्र, घर और सदस्यों की सांस्कृतिक तथा मनोरंजन की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है।

अतिथियों को मोशे अपने मकान पर ले जाता है जो कारखाने से ३०० गज की दूरी पर है। इसी समीप के एक गाँव में, जहाँ विदेशों से आये यहूदी बसाये गये हैं, शिक्षक-सम्मेलन में भाग लेने गयी हुई है। मकान में दो कमरे हैं, जो एकदम साफ हैं, एक छोटा-सा हाल है और एक बाथ-रूम। सभी सुरुचि से सजाये गये हैं। कुछ फर्नीचर स्वयं मोशे का बनाया हुआ है। जो भी इन कमरों को देखता है, सादगी और सज्जा से मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता।

"क्या मैं खुश हूँ?" अक्सर मोशे यह सवाल पूछता है। "मनुष्य की इच्छाओं का कहीं कोई अन्त नहीं। जहाँ तक मेरा सवाल है, मुझे जो कुछ चाहिए सब मेरे पास है। लेकिन मैं चाहता हूँ कि कारखाने का विस्तार किया जाय।"—यह है उसका उत्तर।

वह अपने बच्चों के चित्रों का खूबसूरत एल्बम निकालता है और कहता है, "जरा इन्हें देखिये, ये सब खुश हैं। मेरी केवल यही कामना है कि इनका जीवन शान्तिपूर्ण हो, स्वतन्त्र हो। मुझे आशा है कि इनको कभी यन्त्रणा का अनुभव नहीं होगा।" इस अवसर पर उसकी आँखों में अजीब-सी चमक दिखायी देती है।

—५—

दुख और दर्द का इतिहास बनी इस सीमा के दूसरी ओर है मिस्र। श्री लेविन की सामूहिक बस्ती और उसके बीच की दूरी केवल मीलों की ही नहीं है। उसी मिस्र का बुद्धिजीवी नौजवान अपने एक पश्चिमी मित्र के सवालों का उत्तर दे रहा है :—

प्रश्न :—*क्या कारण है कि अरब देशों में विश्वविद्यालयों में पढ़ने वाले हमारी पीढ़ी के अधिकांश छात्र विद्रोही बने हुए हैं ?*

उत्तर :—विद्रोही नहीं है बल्कि जाहिद है।

प्रश्न :—*आखिर किसलिए ?*

उत्तर :—क्योंकि वे चाहते है कि दुनियाँ के लोगों को इस बात के लिए विवश कर दिया जाय कि वे हमारे साथ बराबरी का बर्ताव करें और साथ ही इसलिए कि यहाँ मध्यपूर्व में सामाजिक न्याय कायम हो सके।

प्रश्न :—*यह तो बहुत अच्छी बात है। लेकिन अनेक लोगों का ख्याल है कि आप लोग किसी निश्चित आदर्श के बजाय हमेशा ही किसी न किसी के विरुद्ध जिहाद करते रहते हैं। मध्यपूर्व के अधिकतर अरब देश अब सम्प्रभुतासम्पन्न और स्वतन्त्र देश हैं, अब पश्चिमी साम्राज्यवाद के सम्बन्ध में आपके भाषणों से लोग ऊबने लगे है।*

उत्तर :—मुख्य बात तो आप भूल ही गये। पश्चिम को यह बात नहीं सुहाती कि हमें अपने पैरों पर खड़ा होने दिया जाय और हम जैसी व्यवस्था चाहते हैं अपनाएँ। पश्चिम अब भी यही समझता है कि हमें अपनी बात मनवाने के लिए अभी छठा जहाजी बेड़ा इस्तेमाल कर सकता है, या आर्थिक नाकेबन्दी करके दबाव डाल सकता है। अरब राष्ट्रवाद नासर से बहुत पहले का है। आप यह क्यों समझते है कि अधिकतर अरब राष्ट्रवादियों ने नासर को अपना "हीरो" और चैम्पियन बना रखा है ? क्योंकि नासर ही पहला अरब-नेता है जिसमें पश्चिम के मुकाबले खड़े होने की और उसे निभा ले जाने की ताकत है और कौशल है। उसने पश्चिम को यह जता दिया है कि अब वह हमें अपमानित करने की कोशिश करे तो मजा चखे बिना नहीं जा सकता।

प्रश्न :—*लेकिन आप केवल पश्चिम पर ही सन्देह क्यों करते है ? क्या सोवियत-सङ्घ रूस अपना बर्बर किस्म का साम्राज्यवाद नहीं है ?*

उत्तर :—देखिये, हमारे लिए तत्काल और सीधा खतरा कौन पैदा करता है ? पश्चिम या सोवियत सङ्घ ? स्वेज-सङ्कट के समय काहिरा पर बम किसने गिराये और मिस्र पर चढ़ाई किसने की ? जब कभी जोर्डन, सीरिया या

लेवन में आन्तरिक सङ्कट पैदा होता है तो लड़ाकू जहाजी बेड़े को कौन समीप ले आता है ? अरब देशों में वहाँ की जनता की इच्छा के विरुद्ध सीमा के कौन अपने फौजी अड्डे बनाये हुए है ? वह कौन है जो गत दो वर्षों से उस नासर की स्थिति को कमजोर करने में लगा हुआ है जो आज अरब राष्ट्रवाद का झण्डा ऊँचा किये हुए है ? और फिर सोवियत-सङ्घ ने चाहे कुछ भी किया हो, इस बात से आप इन्कार नहीं कर सकते कि जब कभी हम पर सङ्कट आया है उसने हमें बेशकीमती राजनयिक समर्थन दिया।

प्रश्न :—जरा रुकिये। यह मत भूलिये कि स्वेज के सङ्कट के समय अमेरिका ने नैतिकता का साथ दिया था और उसका प्रभाव नासर और अरब देशों के लिए अनुकूल ही पड़ा। ऐसा करने में अमेरिका ने अपने परम्परागत मित्र राष्ट्रों, ब्रिटेन और फ्रान्स से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाने तक का खतरा उठाया था।

उत्तर :—ठीक है, लेकिन वास्तव में हुआ क्या ? जिनको राष्ट्र-सङ्घ ने आक्रमणकारी घोषित कर निन्दा की उनके विरुद्ध आर्थिक नाकेबन्दी करने की बात उठी थी। लेकिन अन्त में दण्ड किसे दिया गया ? दण्ड मिस्र को दिया गया जो कि आक्रमण का शिकार बना था। अमेरिका में मिस्री-डालर राशि एवम् सम्पत्ति को जब्त कर लिया गया और १८ महीने तक जब्त रखा। मिस्र को दी जाने वाली चार-सूत्री सहायता रोक दी गयी लेकिन इजराइल को सहायता जारी करने में किसी प्रकार का विलम्ब नहीं किया गया।

प्रश्न :—सोवियत-सङ्घ ने हंगरी के विद्रोह का निर्ममता से दमन किया, तब अधिकांश अरब देशों ने सोवियत-सङ्घ की निन्दा करने के प्रयत्न में योग क्यों नहीं दिया ?

उत्तर :—सबसे पहली बात यह है कि आपको यह समझना चाहिए कि पश्चिम, अरब देशों पर शीत-युद्ध में एक पक्ष का साथ देने के लिए दबाव डालता रहा है, पश्चिम के इस तरीके से हम लोग थक चुके हैं। हम यह सोचते हैं कि हमारी अपनी समस्याएँ ही बहुत हैं और अपने समीप की इन समस्याओं में हम देखते हैं कि पश्चिम हमारे विरुद्ध खड़ा है। यदि आप समझते थे कि उस समय जब कि स्वेज के सङ्कट से सारा अरब-जगत् अत्यन्त उत्तेजित था वह हंगरी की समस्या पर सोचता, तो यह कहना अनुचित न होगा कि आप बहुत भोले हैं। मुझे यह स्वीकार करने में कोई हिचक नहीं कि इस साल जब हंगरी के

भूतपूर्व प्रधान मन्त्री नाज और उनके साथियों को मृत्युदण्ड दिया गया तो उससे हममें से अनेक को, यहाँ तक कि वामपक्षीय विचारधारा वालों को बहुत बड़ा धक्का लगा। चूँकि स्वेज सङ्कट और हंगरी के विद्रोह के समय सोवियत-सङ्घ ने अरब-राष्ट्रवाद को जो मदद दी, उसकी वजह से हमने अपने विचारों को अपने मन में ही सीमित रखना उचित समझा।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं लगाना चाहिए कि मूल रूप में हम सोवियत-सङ्घ के समर्थक हैं। हम दो बड़े राष्ट्र-समूहों में से किसी भी एक के पक्ष या विपक्ष में नहीं हैं और न होना चाहते हैं। यदि हमारा किसी से लगाव है तो वह पश्चिम से ही है, रूसियों से नहीं। फिर भी आप हमेशा हमारा अपमान क्यों करते हैं? हमेशा हमें दुतकारते क्यों हैं? हमें राष्ट्रवाद के विचार आपसे ही मिले, सामाजिक न्याय के विचार आपसे ही मिले। हममें से अनेक ब्रिटिश संसदीय लोकतन्त्र और अमेरिका की तकनीकी उपलब्धियों के बहुत प्रशंसक है। लेकिन जब कभी आप हमारे साथ बर्ताव करते हैं, हमें ऐसा लगता है कि हम भ्रम में थे। जरा इस बात पर गौर कीजिये कि रूजवेल्ट के आदर्शवाद और अटलान्टिक-घोषणापत्र से कितनी आशा बँधी थी। लेकिन अब अमेरिका मध्यपूर्व के मामलों में शामिल है और हमने उन्हें बहुत स्वार्थी और घमण्डी पाया है; उन्होंने हमारे ऊपर इजराइल राज्य लादकर जो अन्याय किया है, हम उसे भूल नहीं सकते। हमने सोचा था कि ब्रिटिश लेबरपार्टी मध्यपूर्व के सम्बन्ध में ब्रिटिश दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन लायेगी, लेकिन उनके जो लोग यहाँ आये हैं उनके काम बहुत निम्नस्तरीय रहे। फिर वे हमें उपदेश भी देने लगे, इससे भला किसे क्रोध नहीं आता। ऐसा केवल उन्होंने किया हो, ऐसी बात नहीं, इसी प्रकार पश्चिम से आने वाले आपके बहुत से साथी यह भूल जाते हैं कि हम भी आदमी है और हम पर भी नम्रता का असर होता है और विनम्रता न हुई तो हम पर उसकी वैसी ही प्रतिक्रिया होती है जैसी आपस में हो सकती है।

प्रश्न :—आप लोग और अन्य अरब राष्ट्रवादी नासर शासन के अधिनायकवादी पहलू को स्वीकार क्यों करते है?

उत्तर :—आपका यह प्रश्न महत्वपूर्ण है। हममें से कुछ के मन में इससे बड़ी बेचैनी पैदा हुई लेकिन हमने नासर के कार्यों का और उसके इरादों का अध्ययन किया है। हमें उसकी नेकनियत पर विश्वास है। उसकी

क्रान्ति में रक्तपात नहीं हुआ और सैनिक होने के बावजूद उसने घरेलू मामलों को जिस तरह सँभाला और व्यवस्थित किया, उसमें बर्बरता या क्रूरता लेशमात्र भी नहीं रही। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि उसने अपने को भ्रष्टाचार से एकदम दूर रखा। भ्रष्टाचार उसे छू तक नहीं सका। आपको यह भी समझना चाहिए कि नासर ने अपने को सामाजिक सुधार का प्रतिरूप बना लिया है और हम सबका विश्वास है कि अरब-जगत् में स्वस्थ-समाज का निर्माण करने के लिए ये सुधार अत्यन्त आवश्यक है। सम्पत्ति का अधिक से अधिक लोगों में बँटवारा होना चाहिए और अपार सम्पत्ति वाले चन्द लोगों के और दयनीय हालत में रहने वाले उन लाखों गरीबों के बीच जो भारी अन्तर पैदा हो गया है, उसको कम किया जाना चाहिए।

नासर ने अपने देश में इस दिशा में कुछ कदम उठाकर इस पूरे क्षेत्र में नयी आशा को जन्म दिया है। लोगों में नयी चेतना का संचार हुआ है। यह मत भूलिये कि मिस्र ने अपने को उन शक्तियों के साथ एकाकार करके, जिनका प्रतिनिधित्व सऊदी अरब, फारस की खाडी के देश, ईराक और जोर्डन करते हैं और सामाजिक व्यवस्था में कोई क्रान्तिकारी परिवर्तन आने से जिनके अब तक के इन विशेषाधिकारों पर आघात लग सकता है, अरब-जगत् में अपनी स्थिति को स्वयं ही कठिनाई में डाल दिया है।

प्रश्न :—लेकिन भविष्य क्या होगा? क्या आप भविष्य के प्रति आशावादी है?

उत्तर :—यदि हम आशावादी न होते तो हम इस बात की कोशिश ही क्यों करते? क्या फिर प्रयत्नशील रहने की कोई आवश्यकता रह जाती?

—६—

दूर दक्षिणी और पश्चिमी अफ्रीका भी नया मोड़ ले रहा है, वहाँ की स्थिति विस्फोटक बनी हुई है और वहाँ का नौजवान भी भविष्य की ओर निहार रहा है। उसका नाम है हेनरी और उसका देश है घाना। "स्वतन्त्रता" शब्द का महत्व घाना अच्छी तरह समझता है।

बच्चों के नाम इस पर रखे जाते है; वस्त्रों का नामकरण भी इसी के आधार पर होता है और अकरा के स्टोरों में कपड़े पर भी यही छपा हुआ है, और स्टोर में इतना कपड़ा है कि शहर की महिलाएँ आने वाली अनेक वर्षगाँठों तक उनको पहिन सकती है।

१६५७ के स्वतन्त्रता समारोह में घाना की जनता ने कई रात इसके गीत गाये हैं और अपने उच्चारण की विशेषता के अनुसार उन्होंने स्वतन्त्रता अथवा 'फ्रीडम' शब्द का विशेष ज़ोर देकर उच्चारण किया है। करीब डेढ़ साल बाद हेनरी इस शब्द का बार-बार प्रयोग कर अपने देश पर इसके प्रभाव को समझने लगा।

अकरा में एक छोटा सा "कैफे" है—बिलकुल सादा जिसमें कुछ कुर्सियाँ पड़ी हैं, नृत्य के लिए पक्का फर्श बना है, पृष्ठभूमि में सैक्सोफोन की आवाज़, बैण्ड पर जाज आदि की गूंज रहती है और यह सब मिलकर आज के घाना के जोश, उत्साह और शक्ति का परिचय देते हैं। इनसे पता चलता है कि घाना कितना रङ्गीन है, कितनी उमङ्ग है उसमें। हेनरी यहीं अपने अतिथियों का सत्कार करता है। कैफे में सामान सस्ता है, आजादी के अट्ठारह महीने बीत चुके हैं लेकिन अभी तक अकरा के बड़े होटल, जैसे अम्बेसेडर, इतने मँहगे हैं कि हेनरी जैसे विश्वविद्यालय के छात्र और अन्य घानावासियों के लिए वहाँ जाकर जलपान तथा मनोरञ्जन करना सम्भव नहीं हो सका है।

निस्सन्देह, आजादी मिली लेकिन आजादी ने आते ही देश को धन-धान्य से सम्पन्न नहीं कर दिया। इसने लोगों की एकदम सम्पत्तिवान् होने की कल्पना को पूरा नहीं किया। जब ब्रिटेन ने घाना पर से अपना शासन हटाया था तब कुछ घानावासियों की यही धारणा थी कि आजादी मिलते ही वे मालोमाल हो जायेंगे। उनकी और भी कल्पनाएँ थी।

उदाहरण के लिए, पुलिस-व्यवस्था को खत्म नहीं किया गया, जैसा कि आमतौर पर लोग एक-दूसरे को आश्वासन दिया करते थे।

सरकार ने कोकोआ मार्केटिङ्ग बोर्ड के सुरक्षित कोष का वितरण भी नहीं किया; अकरा के एक निवासी ने तो काफ़ी मेहनत कर यह हिसाब लगा रखा था कि कोष का वितरण होने पर प्रत्येक नागरिक को १४५३ पौण्ड या ४०६८-८० डालर बोनस मिलेगा।

पुराने खड़खड़ाने वाले खचाखच भरे वैगनों या ट्रकों के बदले बढ़िया अमेरिकी गाड़ियाँ भी इस्तेमाल नहीं की जा रही हैं; कुछ घानावासियों का ख्याल था कि अपनी सरकार बन जाने पर ऐसा हो जायेगा।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि आजादी ने घाना को "परियों के देश" में नहीं बदला जहाँ बढ़िया किस्म की गाड़ियाँ हों और बढ़िया मकान हों। अनेक लोगों को तो इसने अच्छे पक्के मकान भी उपलब्ध नहीं करा सके जिसकी अत्यन्त आवश्यकता अनुभव की जा रही है।

सौभाग्य से, हेनरी की तरह अनेक घानावासियों की उम्मीदें ऐसी नहीं हैं, उनकी उम्मीदें वास्तविक स्थिति की समझ पर आधारित हैं। लेकिन इतना स्पष्ट

है कि वे अपने को अफ्रीकी स्वशासन-व्यवस्था में घाना के 'पथ-प्रदर्शक-प्रयोग' का अभिन्न अङ्ग समझते हैं और इससे उत्पन्न उत्साह और गर्व के भाव को सहज ही छिपा नहीं पाते। न तो घाना यूनीवर्सिटी कालेज के शिक्षक की नकल कर हेनरी का अंग्रेजी का विचित्र उच्चारण ही उसके इस भाव को छिपा पाता है और न वह चश्मा ही, जिसकी उसे आवश्यकता तो नहीं लेकिन अन्य अनेक अफ्रीकियों की तरह जिसे वह अपनी काली नाक पर चढ़ाये रहता है, जिससे वह विद्वान् व्यक्ति लगे।

घाना की ५.० लाख जनता का अधिकांश भाग केवल घरेलू मामलों में ही दिलचस्पी रखता है परन्तु राजनीतिज्ञ और हेनरी की तरह के बुद्धिजीवी इस बात को अच्छी तरह समझते हैं और अनुभव करते हैं कि वे अफ्रीका के विस्फोटक जागरण का अङ्ग हैं और वे एक ऐसे आन्दोलन की अगली पंक्ति में हैं जो निश्चय ही दुनियाँ के मामलों में अश्वेत अफ्रीका को प्रभावशाली स्थान दिलाकर रहेगा।

घाना की परम्परागत रङ्गीन पोशाक और चप्पल पहने इन उत्तेजित और उत्साही नौजवानों के लिए यह सब कुछ बुद्धिजगत् तक ही सीमित है। आजादी मिलने के बाद से घाना में समाचार-पत्रों के सम्वाददाताओं और पर्यवेक्षकों का ताँता-सा लगा हुआ है। वे इसका अनुभव करते हैं। भविष्य में आजाद होने वाले अफ्रीकी उपनिवेशों में स्थायी सरकारें बन सकेंगी या नहीं, इसका मूल्याङ्कन करने के लिए ये लोग घाना को ही अपना मापदण्ड बनाते हैं।

सरकार की कुछ कार्रवाइयों से इन ईमानदार नौजवान छात्रों को इस भावना को गहरा झटका लगा है कि अब सब कुछ ठीक हो चुका है। इनमें से कुछ तो ऐसे हैं जो बहुत पिछड़े वर्ग से आये हैं और जो पहली बार जैफरसन और लिंकन के विचारों का अध्ययन कर रहे हैं और अकरा के लीजनहिल में अपनी कक्षा में बैठे यूरोप में "राजनीतिक उदारवाद" का इतिहास पढ़ रहे हैं।

सरकार द्वारा अनेक विरोधी राजनीतिक नेताओं को निर्वासित किये जाने, कुछ सम्वाददाताओं के प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाने, उसके कुछ कड़े कानूनों और मन्त्रिमण्डल के कुछ मन्त्रियों के धमकी के भाषणों पर काफी बहसें हुई हैं।

इन नियन्त्रणों के बावजूद घाना की जनता इस बात को समझने लगी है और जिसे व्यापक पैमाने पर समझा जाना चाहिए कि सभी श्वेत लोग बुरे नहीं हैं और न सभी अश्वेत अच्छे हैं। वे यह समझने लगे हैं कि अश्वेत अफ्रीकी भी उन्हीं कार्रवाइयों का सहारा ले सकते हैं जिन्हें यदि श्वेत लोग अफ्रीका में अन्यत्र करें तो 'निरङ्कुश' और 'दमनकारी' कार्रवाई कहा जाता है।

यदि आजादी मिलने के बाद अभी घाना अफ्रीकी आदर्श का मूर्त्त रूप नहीं बन सका है, यदि वहाँ अभी त्रुटिहीन सरकार कायम नहीं हो सकी है, जिसकी उसके आलोचक माँग करते रहे हैं तो यह भी सही है कि हेनरी की तरह के

बुद्धिवादी और सीधे-साद किसान क्योंकि घाना सरकार को तानाशाही सरकार नहीं मानते, उसे तानाशाही कहना वे न्यायसङ्गत नहीं समझते। इसमें कोई शक नहीं कि बिना किसी बात की परवाह किये मनमाने तरीके से लिखने वाले उसके कुछ समाचार-पत्रों, संसदीय विरोधी दल का होना और विरोधीदल के कुछ वक्ताओं द्वारा कटु आलोचनाओं को देखकर यह कहा जा सकता है कि वहाँ काफी विचार-स्वतन्त्र हैं।

शायद इस सम्बन्ध में हेबरी का कथन अधिक उपयुक्त है, "मेरे देश की अधिकाधिक जनता अब आजादी के वास्तविक अर्थ को समझने लगी है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि घानावासी यह समझने लगे हैं कि आजादी का अर्थ यह है कि हमें गलती करने का हक प्राप्त है क्योंकि ये गलतियाँ हमारी ही होंगी।"

इनके बावजूद दूसरे स्थानों के अफ्रीकी उस भविष्य की ओर उत्सुकता से निहार रहे हैं जिसका प्रतिनिधित्व घाना करता है। उदाहरण के लिए, जोहानीजवर्ग का साइमन एमवाथा कभी-कभी ऐसा सोचने लगता है जैसे अफ्रीकी जागरण उसके समीप से होकर गुजरा है और वह पीछे रह गया है।

साइमन उन एक करोड़ दस लाख अस्वतंत्र लोगों में से एक है जो दक्षिण अफ्रीकी संघ में रहते हैं। अन्यत्र इस महाद्वीप के अधिकांश भाग में एक नयी चेतना फैली हुई है, एक नया उभार पैदा हुआ है और इसने अफ्रीकी जनता को बरबस अगली पंक्ति में लाकर खड़ा कर दिया है। वहाँ स्वतन्त्रता की बात हो रही है, मानव अधिकारों की चर्चा है और वैयक्तिक स्वतन्त्रता की चर्चा है। लेकिन दक्षिण अफ्रीका में, ऐसा प्रतीत होता है कि साइमन और उसके अफ्रीकी साथियों को अभी अपने भविष्य के सम्बन्ध में कुछ कह सकने का अधिकार जीतना है।

उदाहरण के लिए, एक बार एक बजे रात जोहानीजवर्ग के समीप साइमन की बस्ती के लोग मीठी नींद में सो रहे थे। अचानक उनकी टीन की झोपड़ियों के दरवाजों को जोर-जोरसे खटखटाने की आवाज आयी और दरवाजा खुलते ही पुलिस घरों में घुस गयी। "जल्दी दिखाओ, तुम्हारा पास कहाँ है? तुम्हारा काम करने का परमिट कहाँ है? जरा अपनी कर की रसीद दिखाओ? तुम किस अधिकार से जोहानीजवर्ग में रह रहे हो, अनुमति-पत्र दिखाओ?" एक नौजवान श्वेत पुलिसमैन अपना रिवाल्वर निकाल कर चिल्लाया। उसने एक साथ इतने सवाल पूछ डाले। हतबुद्धि अफ्रीकी ने कुछ कहना चाहा लेकिन तत्काल वह श्वेत पुलिसमैन कड़क कर बोला, "नीच काफिर, मेरे मुँह लगने की कोशिश मत करो, नहीं तो सीधे जेल की हवा खानी पड़ेगी।" यहाँ न मानव अधिकारों की बात है और न वैयक्तिक स्वतन्त्रता की।

साइमन के पड़ोसियों की नींद अभी खुल भी नहीं पायी थी कि

उन्हें जेलखाना कर दिया गया और उनके बच्चे खाली मकान में चीखते-चिल्लाते रह गये।

अब सुबह के पाँच बजे हैं। साइमन बस पर चढ़ने के लिए कतार में खड़ा है। कतार इतनी लम्बी है कि उसका अन्तिम छोर दिखायी नहीं देता। वर्षा से जगह-जगह गड्ढों में पानी भर गया है। कतार इन्हीं गड्ढों के किनारे-किनारे आगे को सरकती जा रही है। साइमन को अभी एक घण्टे से अधिक समय तक कतार में खड़ा रहना पड़ेगा। तब कहीं उसे काम पर जाने के लिए बस मिल सकेगी, क्योंकि अफ्रीकियों के लिये परिवहन-सेवा अत्यन्त अपर्याप्त है। ऐसे अफ्रीकियों की संख्या बहुत कम है जिनके पास अपनी गाड़ियाँ हैं।

लेकिन साइमन काम पर देर से पहुँचने का खतरा नहीं उठा सकता, देर होने के कारण उसे नौकरी से हाथ धोना पड़ सकता है। उसको अच्छी नौकरी मिली हुई है; प्रति सप्ताह उसे करीब पाँच पौण्ड (१४ डालर) मिल जाते हैं और ऐसी दूसरी नौकरी खोज सकना बहुत मुश्किल होगा।

साइमन एक गैरेज में काम करता है। उसे कार के कुछ पुर्जों को खोलकर अलग-अलग करने दिया जाता है लेकिन यदि वह चाहे तो इनको जोड़ने की इजाजत नहीं है। यह काम श्वेत मिकैनिक का है। यद्यपि कुशल श्वेत मिकैनिकों की कमी है और साइमन के अफसर ने उससे यह भी कहा है कि वह कुछ नये भर्ती किये गये श्वेत मिकैनिकों से अच्छा मिकैनिक है, फिर भी उसका अफसर कानून तोड़कर साइमन को वह कुशल-कार्य करने की अनुमति देने का साहस नहीं कर सकता, जो कि वह बखूबी कर सकता है। यदि उसे यह काम करने दिया जाय तो उसकी आय तिगुनी या चौगुनी हो सकती है।

साइमन का मालिक उन अनेक श्वेत दक्षिण अफ्रीकियों में से है जिनके दिलों में अफ्रीकियों के लिए गहरी सहानुभूति है और जिन्हें इस बात की चिन्ता है कि इन अफ्रीकियों को अपने ही प्रयत्नों से उन्नति करने का भी मौका नहीं दिया जा रहा है।

श्वेत लोगों द्वारा अश्वेतों की सहायता के और विभिन्न प्रकार के दातव्य-कार्यों के भी अनेक उदाहरण हैं।

लेकिन ऐसे भी अनेक श्वेत दक्षिण अफ्रीकी हैं जो अश्वेतों के पृथक्करण का सिद्धान्त नहीं समझते, जिन्हें अश्वेतों की कठिनाइयों की कोई व्यक्तिगत जानकारी नहीं है और जो ईमानदारी से यह विश्वास करते हैं कि अनेक अश्वेत लोगों के कष्टों की बातें बहुत बढ़ा-चढ़ाकर कही जाती है।

वास्तव में तथ्य यह है कि जब तक किसी श्वेत जाति के व्यक्ति को जाति-भेद का व्यक्तिगत अनुभव न हो जाय, तब तक उसे

व्यवस्था तथा बिना पानी की झोपड़ियों में रहना न पड़े, जब तक उसे इतनी कम मजदूरी न मिले कि बच्चे बेहद गरीबी और भुखमरी का शिकार हो जायें, मताधिकार न हो; अनेक ऐसे कानूनी बन्धनों में जकड़े रहने का, जिनको बहुत कम अफ्रीकी समझते हैं, और हर समय पुलिस के नियन्त्रण में रहने का अनुभव न हो और जब तक उसे सरकार की जातिभेद नीति से पाला न पड़े जिसमे अश्वेतो को जो सुविधाएँ दी जाती है वे हमेशा ही श्वेतों की दी जाने वाली सुविधाओं से बहुत कम और निम्नस्तरीय होती हैं—कभी-कभी तो ये सुविधाएँ नाम-मात्र को भी नहीं होतीं—तब तक वह अफ्रीकी जनता की विचार-प्रक्रिया को अच्छी तरह नहीं समझ सकता।

वैसे, इस समस्या के अनेक पहलू है लेकिन साइमन का दृष्टिकोण यही है और वास्तव मे ये ही सवाल ऐसे हैं जिनकी आज उसे और दक्षिण अफ्रीका के अन्य साथी अफ्रीकियो को विशेष चिन्ता है। उनका ध्यान इन्ही सवालो पर केन्द्रित है।

यद्यपि इन अफ्रीकियो की राजनीतिक-मुक्ति की अभी कोई सम्भावना नहीं, फिर भी इनमें विनोदप्रियता की और भविष्य के प्रति आशा तथा विश्वास की कोई कमी नहीं है और मुसीबत के समय उनकी यह विशेषता ही उनकी मदद करती है। उनकी तात्कालिक समस्याएं चाहे कुछ भी हों, उनकी विचारधारा मुक्त है।

निस्सन्देह, कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि जोहानीजबर्ग के श्वेत लोगों में अफ्रीकियों के मुकाबले भविष्य के प्रति अधिक आशङ्का और अधिक चिन्ता है और अफ्रीकी अनेक समस्याओ के बावजूद आगे बढ़ता जा रहा है।

—७—

घिसटते हुए, पिसते हुए और पूरी ताकत से आगे बढ़ने के लिए प्रयत्नशील लोगों की कहानी केवल एशिया और अफ्रीका तक ही सीमित नहीं है। उन स्थानों पर जहाँ प्रगति पहले शुरू हो गयी थी, नयी-नयी मंजिलें पार की जा रही है। यूरोप में, आस्ट्रेलिया में और अमेरिका में निर्धनवर्ग निरन्तर तरक्की कर मध्यवर्ग में पहुँचता जा रहा है। कुछ क्षेत्रों में तो मध्यवर्ग रहन-सहन के उस स्तर का उपभोग कर रहा है जो कभी पहले धनीवर्ग का स्तर था।

लेकिन जैसे-जैसे विश्व की जनसंख्या जिस कल्पनातीत गति से बढ़ती जा रही है, अमीरों और गरीबो दोनों को कुछ ऐसे तथ्यो का सामना करना पड़ रहा है, जो सामान्य से प्रतीत होते है। इनमें से शायद सबसे अधिक सामान्य लेकिन साथ ही अत्यधिक जटिल है—खाद्यान्न। अब्दुल को भी इसके सम्बन्ध में मालूम है और दूर कन्सास के एवरेट लारकिन को भी। अन्तर केवल दृष्टिकोण का है।

१९५८ का वर्ष लारकिन के लिए बहुत अच्छा वर्ष था। दूर क्षितिज तक फैले खेतों में लहराती फसल की ओर गर्व से इशारा करते हुए उसने कहा, "यह साल बहुत अच्छा है। मकान और बढ़वाना था, इस साल उस हिस्से को भी बनवा लूँगा, दूसरा ट्रैक्टर खरीद लूँगा और अपने लिए नये माडल की चमचमाती कार।" यह आशावादी दृष्टिकोण अकेले लारकिन का ही नहीं है। अमेरिका के उन हजारों और किसानों का भी यही दृष्टिकोण है जो गेहूँ की फसल उगाते हैं। अमेरिकी अधिकारियों का अनुमान है कि इस बार की गेहूँ की फसल बहुत बढ़िया है, अन्य वर्षों के मुकाबले एक अरब बुशल गेहूँ और पैदा होगा, जो कि एक नया रिकार्ड होगा।

इसी समय इस गोलार्द्ध के दूसरी ओर पञ्जाब और पश्चिमी पाकिस्तान के विस्तृत मैदानों में अब्दुल (किसान पूरे नाम का बहुत कम इस्तेमाल करते हैं) हाथ के उन औजारों की सहायता से अपने गेहूँ के खेतों में काम कर रहा है जो सिकन्दर महान् के हमले के समय इस क्षेत्र में प्रचलित थे। किसान उस जमीन पर परिश्रम करते हैं जो उनकी नहीं है। वह, उसकी पत्नी और पाँच बच्चे मिट्टी और फूस की बनी झोपड़ी में बैलों और दो मुर्गियों के साथ गुजारा करते हैं। परिवार के सभी सदस्यों पर अपौष्टिक भोजन का प्रभाव साफ दिखायी देता है। इसका उनकी कार्य-कुशलता और उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। ये सभी ऋण के बोझ से दबे हुए हैं। पाकिस्तान गेहूँ का आयात करने के लिए विवश है। (१९५६ में उसने ३२५,००० टन गेहूँ आयात किया) और इसका एक कारण वास्तव में अब्दुल की अपनी समस्याएँ हैं।

इससे दुनियाँ में खाद्यान्न की स्थिति की तस्वीर स्पष्ट हो जाती है—कुछ क्षेत्र में आवश्यकता से अधिक उत्पादन है और समृद्धि है, और कहीं आवश्यकता से बहुत कम उत्पादन और भर पेट भोजन न मिलने की समस्या है।

और अगली अर्द्धशताब्दि के लिए यही दुनियाँ की सबसे बड़ी समस्या है; यह एक बहुत बड़ी चुनौती है कि खाद्यान्न के साधनों का और अच्छा वितरण किस प्रकार किया जाय और किस प्रकार जनसंख्या और खाद्यान्न की सप्लाई में सन्तुलन कायम किया जाय।

इस समय यह समस्या बहुत गम्भीर प्रतीत होती है। दुनिया में प्रतिवर्ष चार करोड़ सत्तर लाख नये व्यक्तियों के लिए भोजन जुटाना है जब कि दुनिया की जनसंख्या दो अरब ८० करोड़ तक पहुँच चुकी है। अगले चालीस वर्षों में यह जनसंख्या दुगनी हो जायेगी।

अन्तर्राष्ट्रीय खाद्यान्न विशेषज्ञों का अनुमान है कि कम से कम आधी जनसंख्या और शायद दो-तिहाई लोग केवल आधा पेट भोजन कर पाते हैं या भुखमरी के

शिकार बने रहते हैं। उनका सारा जीवन ही इस स्थिति में कट जाता है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के खाद्य और कृषि संगठन ने खाद्यान्न की स्थिति के सम्बन्ध में हाल ही कुछ गम्भीर चिन्ताजनक प्रवृत्तियों की ओर संकेत किया है। इस संकेत का यह है कि खाद्यान्न से सम्पन्न कुछ राष्ट्रों की खाद्यान्न स्थिति और सुधर रही है जब कि खाद्यान्न के अभाव से पीड़ित देशों की स्थिति और भी दयनीय होती जा रही है।

अब तक पहले खाद्यान्न उत्पादन और साथ ही बढ़ती जनसंख्या में एक होड़-सी लगी हुई है। लेकिन इस बात का गम्भीर खतरा पैदा हो गया है कि भविष्य में खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ती जनसंख्या के मुकाबले पिछड़ जायेगा और भूखे लोगों की संख्या कई गुना बढ़ जायेगी। एक बार फिर माल्थस के इस अनिष्ट और विवादास्पद सिद्धान्त (१७९८) पर बहस छिड़ गयी है कि जनसंख्या की हमेशा सीमित रहने के लिए आवश्यक साधनों के मुकाबले आगे रहने की प्रवृत्ति रही है।

मेसोपोटामिया, सीरिया, उत्तर-पश्चिमी चीन और मध्य अमेरिका की प्राचीन सभ्यताएँ खाद्यान्न के साधनों के अभाव के कारण ही लुप्त हो गयी।

अमेरिका अपनी समृद्धि और उदारता के बावजूद पूरे विश्व की खाद्यान्न की आवश्यकता पूरी नहीं कर सकता। भण्डारण और वितरण की समस्याएँ इसमें रुकावट बन जाती हैं।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि लोगों को जहाँ तक सम्भव हो सकता है, अपने आहार के लिए स्वयं ही उत्पादन करना चाहिए। यह केवल नैतिक दृष्टिकोण नहीं है, बल्कि खाद्यान्न के वैज्ञानिकों का उस पर आधारित निश्चित मत है। इसलिए बुद्धिमानी भी है कि अमेरिका को यह बात पसन्द होनी चाहिए कि अन्य देश उस पर बोझ न बन जायें।

फिर भी, अमेरिका में जो अतिरिक्त उत्पादन है, उससे खाद्यान्न का संकट उपस्थित होने पर जरूरतमन्द राष्ट्रों की मदद की जा सकती है। उदाहरण के लिए, मई १९५३ से जून १९५८ तक अमेरिका से १८६८००० मीट्रिक टन खाद्यान्न का निर्यात किया गया।

खाद्यान्न के मामले में अनेक विशेषज्ञों का मत है कि अमेरिका में खाद्यान्न की अतिरिक्त पैदावार अस्थायी है। उनका कहना है कि अब से बीस वर्ष के अन्दर स्वयं अमेरिका की जनसंख्या इतनी हो जायेगी कि खाद्यान्न का उत्पादन कम पड़ जायेगा।

यही नहीं, दुनिया भर में ऐसे क्षेत्र जहाँ अच्छी फसल होती है, उजड़ होते जा रहे हैं और उनका कटाव हो रहा है। अमेरिका में जितनी काश्त योग्य

भूमि है उसको करीब-करीब इस्तेमाल में लाया जा चुका है और भूमि का काफी बड़ा भाग समुद्र तथा नदियों आदि से कटता जा रहा है।

फिर भी खाद्यान्न-वैज्ञानिकों को इस बात पर पूरा विश्वास है कि मौजूदा भूमि की उत्पादन शक्ति बढ़ाकर, नयी जमीन को काश्त योग्य बनाकर और कृषि के उन्नत तरीकों का इस्तेमाल करके खाद्यान्न की सप्लाई को बढ़ाया जा सकता है।

इसमें सन्देह नहीं कि भविष्य में लोगों को ऐसे विविध खाद्य-पदार्थ उपलब्ध हो सकेंगे जिनकी आज कोई जानकारी नहीं है। यह सम्भव है कि काई, प्लैंकटन, खमीर, लकड़ी से निकाली गयी चीनी, औद्योगिक कृषि द्वारा समुद्र से प्राप्त अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थ और पौधों की तरह ही हवा, सूरज की रोशनी, पानी और खनिजों के योग से (फोटोसिन्थेसिस) बड़े पैमाने पर उत्पादित खाद्यपदार्थों का प्रयोग होने लगेगा।

यह भी सम्भव है कि भविष्य में दुनिया में कृषि का संगठन कुछ इस प्रकार से हो जायेगा कि फसल वहीं उगायी जायेगी जहाँ सबसे अच्छी हो सकती हो और इसके लिए राष्ट्रीय-सीमाओं की रुकावट खत्म कर दी जायगी।

कीटाणु-नाशक दवाइयों, अच्छे बीज, रासायनिक खाद, फसल उगाने के उन्नत तरीकों और आधुनिक कृषि औजारों से यह आशा बँधती है कि निकट भविष्य में उत्पादन बढ़ाया जा सकेगा।

आधुनिक टेकनालाजी का यह तात्पर्य नहीं कि साधन (मशीनें आदि) अत्यधिक जटिल और महँगे हों। एक एशियाई किसान के लिए जो घुटने के बल झुककर छोटे मूठ की कुदाली से खेत खोदता है, आधुनिक टेकनालाजी का मतलब यह हो सकता है कि कुदाली की मूठ अधिक लम्बी हो। खेतों के लिए छोटी दराँती के बजाय बड़ी दराँती अधिक अच्छी पायी गयी है। इस सम्बन्ध में सबसे अच्छी बात यह है कि इन औजारों को गाँव के लोहार और बढ़ई बड़ी आसानी से तैयार कर सकते हैं।

दुनिया में दस व्यक्तियों में से छह व्यक्ति फार्मों पर निर्भर करते हैं और आजीविका के लिए कृषि पर निर्भर करते हैं। वैसे, हर महाद्वीप में यह अनुपात भिन्न है। अमेरिका में दस में से केवल दो व्यक्ति कृषि पर निर्भर रहते हैं, लेकिन अमेरिका में छह से अधिक और एशिया तथा अफ्रीका में सात या उससे भी अधिक।

और दुनिया की सतह का केवल पाँच से सात प्रतिशत हिस्सा ही ऐसा है जिस पर खेती की जा सकती है।

दुनिया में मुख्य खाद्य हैं गेहूँ, मक्का, चावल और मांस। चावल का सबसे अधिक महत्त्व है, क्योंकि दुनिया की करीब आधी जनसंख्या इस पर निर्भर रहती है।

अल्प विकसित देशों की सबसे बड़ी समस्याओं में से एक है शक्ति और क्षमता के अभाव का दुरूह चक्र। इन देशों की जनता अपौष्टिक भोजन मिलने से इतनी कमजोर है कि अधिक मेहनत नहीं कर सकती। इसलिए वे बहुत कम उत्पादन कर पाती हैं जिसका नतीजा यह होता है कि उन्हें पौष्टिक भोजन नहीं मिल पाता।

समृद्धिवान् देशों में उत्तरी अमेरिका, आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन, आयरलैंड, स्केन्डेनेविया और बेलजियम, हालैंड तथा लैंग्जमबर्ग (बेनेलक्स देश) शामिल हैं। अधिकांश यूरोपीय भागों में खाद्यान्न की कमी नहीं है। लेकिन पूरे एशिया और अफ्रीका के कुछ हिस्सों में खाद्यान्न की अपर्याप्त कठिनाई है। लैटिन अमेरिका का बड़ा भाग इससे कुछ बेहतर हालत में है।

पूर्वी देशों में प्रति-व्यक्ति खाद्यान्न का बहुत कम उत्पादन ही वहाँ की सबसे बड़ी समस्या है। कुछ इलाकों में अच्छी पैदावार होती है। लेकिन एक एकड़ की फसल से आवश्यकता से अधिक लोगों को खिलाना पड़ता है। चीन में काश्त की गयी भूमि का औसत एक-तिहाई एकड़ प्रति व्यक्ति से भी कम है जब कि भारत में यह औसत एक एकड़ प्रति व्यक्ति है।

लेटिन अमेरिका के कुछ हिस्सों में लोग कोका की पत्तियों को चबा लेते हैं। इससे उनकी ज्ञानेन्द्रियाँ सुन्न पड़ जाती हैं और बिना भोजन के वे काफी लम्बे समय तक काम कर सकते हैं।

खाद्य-कृषि सङ्गठन के अधिकारियों का विचार है कि विश्वव्यापी पैमाने पर एक साल तक भूख के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन चलाया जाय। इस योजना के अनुसार राष्ट्रसङ्घ के और राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठनों को भुखमरी के विरुद्ध आन्दोलन चलाने के लिए सङ्गठित किया जायेगा। यह प्रयत्न ठीक उसी प्रकार का होगा जैसे अन्तर्राष्ट्रीय भू-भौतिकी वर्ष का रहा।

खाद्य-कृषि सङ्गठन के विशेषज्ञ इस बात को मानते हैं कि दुनियां की खाद्यान्न की समस्या को हल करने के लिए एक वर्ष का समय बहुत कम है। परन्तु उनका मत है कि इस प्रकार के आन्दोलन से भूख और गरीबी की समस्या के प्रति जागृति लायी जा सकेगी और इन समस्याओं को हल करने के लिए साधनों में आवश्यक सुधार किया जा सकेगा।

अमेरिका, संयुक्त राष्ट्रसंघ और अन्य निजी सङ्गठनों के तकनीकी सहायता कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य यह है कि अल्प विकसित देशों में खाद्यान्न के उत्पादन की स्थिति को सुधारा जाय।

तकनीकी सहायता का सबसे अधिक नाटकीय प्रदर्शन १९४०-५० के बीच मैक्सिको में हुआ जबकि राकफेलर-संस्थान ने मैक्सिको की भूमि और जलवायु के अनुकूल मक्के के सुधरे हुए बीजों और उसकी नयी किस्म का प्रयोग किया।

कुछ ही वर्षों में मेक्सिको मक्का का निर्यात करने वाला देश बन गया। इससे पूर्व यह मक्का आयात किया करता था।

लेकिन इस प्रकार की द्रुत-प्रगति हमेशा नहीं होती। यह एक असाधारण बात थी। दुनियाँ की जनसंख्या का कोई भी हिस्सा इतना रूढ़िवादी और परम्पराओं से बँधा नहीं होता जितना किसान-वर्ग। किसान अपने पूर्वजों के सदियों पुराने तरीकों से चिपका रहता है।

फिर भी चार सूत्री कार्यक्रम लागू करने वालों और अन्तर्राष्ट्रीय तकनीशियनों को पुरानी विचारधारा तथा तौर-तरीकों में धीरे-धीरे परिवर्तन करने में और उत्पादन बढ़ाने में सफलता मिली है।

उदाहरण के लिए, भारत में तकनीशियनों ने यह समझ लिया है कि यदि एक छोटे गाँव में सम्मानित परिवार को वे नये और कुशल तरीकों से धान की खेती करने के लिए राजी करा सकें और इसके प्रति उनमें विश्वास पैदा करा सकें, तो गाँव में यह नया तरीका बहुत जल्दी जड़ पकड़ जायेगा और गाँववाले उसे शीघ्र अपना लेंगे।

यह देखा गया है कि पुराने और समयातीत तरीकों में परिवर्तन करने की अपेक्षा मनुष्य के दिमाग में नये विचारों और नयी तकनीक की विशेषताओं को बैठा देने में अधिक समय लगता है।

यद्यपि तकनीकी सहायता कार्यक्रम को बहुत बड़ी असफलताओं और सफलताओं, दोनों का ही सामना करना पड़ा है फिर भी इसे मध्य अमेरिका या थाईलैंड, बोलीविया या ईरान के किसानों का भविष्य सुधारने के लिए निःस्वार्थ भाव से काम करने वाले विशेषज्ञों का काफी दृढ़ सहारा प्राप्त है। ये विशेषज्ञ इस कार्यक्रम की रीढ़ हैं और उत्पादन बढ़ाने के लिए बहुमूल्य सेवाकार्य कर रहे हैं।

यह बात निश्चित है कि यदि भविष्य में तेज रफ्तार से बढ़ने वाली जनसंख्या के लिए पर्याप्त भोजन की व्यवस्था करनी है तो अनेक देशों में खाद्यान्न के उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन अवश्य किया जाना चाहिए।

खाद्यान्न के उत्पादन में राजनीतिक निर्णयों का बहुत बड़ा असर पड़ता है। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से अनेक देश (जैसे पाकिस्तान) आजाद हो गये हैं लेकिन उनका क्षेत्रफल इतना नहीं है कि वे आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी बन सकें। इससे इस तथ्य को खुली चुनौती मिली है कि आधुनिक कृषि-टेकनालाजी के लिए बड़े-बड़े क्षेत्र होना आवश्यक हैं।

अर्जेन्टिना में तानाशाह जुआन डोमिंगो पेरों के अधीन कृषि पर अधिक जोर नहीं दिया गया। उद्योगों पर, जिनमें से कुछ बिलकुल अलाभकर हैं, विशेष बल दिया गया। इस देश की जो अपने पशुओं और खाद्यान्न की बिक्री से अपार

सम्पत्ति अर्जित करता था, इस नयी और गलत योजना के लागू होने के दस वर्ष बाद दयनीय स्थिति हो गयी।

अमेरिका में इस समय खाद्यान्न के उत्पादन की बहुत अच्छी स्थिति है; वैसे इसका कृषि का रकबा धीरे-धीरे कम होता जा रहा है क्योंकि उद्योग, राजमार्ग, हवाई अड्डे और नयी बस्तियाँ कृषि-योग्य जमीन को निगलती जा रही हैं। परन्तु नयी तकनीक से कम उपजाऊ जमीन को अधिक उपजाऊ बनाया जा सकता है, सिंचाई की व्यवस्था से वर्षा पर निर्भरता कम हो सकती है, और छोटी इकाइयों को मिलाकर बड़े फार्मों का सङ्गठन करने से प्रबन्ध-व्यवस्था उन्नत होती है। इन सब बातों का एक ही परिणाम होता है और वह है—उत्पादन में असाधारण वृद्धि।

अनेक लोगों का विश्वास है कि वर्तमान में इस अतिरिक्त उपज का बहुत महत्त्व है। यह एक ऐसा साधन है जो अभी तक सोवियत-सङ्घ को प्राप्त नहीं हो सका है। लेकिन एक बात की आवश्यकता है, विदेशों में इस अतिरिक्त उपज को बेचने से जो स्थानीय मुद्रा उपलब्ध होती है, उसका ठीक-ठीक उपयोग किया जाय।

खाद्य-विशेषज्ञों ने यह चेतावनी दी है कि अतिरिक्त उपज का इस्तेमाल इस बुद्धिमानी से किया जाना चाहिए कि जहाँ सम्भव हो अल्प विकसित देशों की खाद्यान्न की जरूरत पूरी हो सके। दुनियाँ भर में जनसंख्या जिस तेजी से बढ़ती जा रही है, उन सबके लिए अमेरिका खाद्यान्न उपलब्ध नहीं करा सकता।

उदाहरण के लिए, यदि खाद्य-सामग्री जहाजों से विदेशों को भेजी जाय और स्थानीय मुद्रा लेकर बेच दी जाय और इस मुद्रा को सुविचारित सिंचाई परियोजनाओं पर खर्च किया जाय तो इस प्रकार खाद्यान्न को भूमि की उर्वरता बढ़ाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इस रुपये से और अधिक रासायनिक-खाद तथा कृषि-औजार खरीदे जा सकते हैं।

अतिरिक्त उपज से अमेरिका के लिए बहुत बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय कठिनाइयाँ भी पैदा होती हैं। अन्य कृषिप्रधान देश जैसे, कनाडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, नैदरलैंड और अर्जेन्टिना इस बात का तीव्र विरोध करते हैं कि वे जिन वस्तुओं को विश्व-बाजार में बेचते हैं अमेरिका रियायतें देकर वहाँ उनकी वस्तुओं के भण्डार जमा कर देता है।

मैसाचुसेट्स के टेकनालाजी इन्स्टीट्यूट के वैज्ञानिकों का मत है कि कोई भी खाद्य ऐसा नहीं है जो अनिवार्य हो या जिसके बिना काम न चल सकता हो। इन वैज्ञानिकों के मतानुसार मनुष्य को करीब चार दर्जन पौष्टिक तत्व चाहिए जिनमें विटामिन, खनिज तत्व, अमीनो एसिड और कैलोरीज शामिल हैं। ये तत्व उसे कहाँ से मिल जाते हैं, इसका अधिक महत्व नहीं है।

उदाहरण के लिए, कैल्शियम के लिए दूध सबसे अच्छा है लेकिन मैक्सिको

और मध्य अमेरीका में प्राचीनकाल से नित्यप्रति इस्तेमाल में लाये जाने वाले "टोरटिला" नामक खाद्य में भी कैल्शियम दूध की तरह ही पाया जाता है।

पौष्टिक-तत्त्व प्राप्त करने के लिए मांस खाना भी आवश्यक नहीं है, लेकिन इन वैज्ञानिकों ने इसके साथ यह भी कहा है कि मांस से अन्य वस्तुओं की अपेक्षा पौष्टिक-तत्त्व प्राप्त करना अधिक आसान है।

तथ्य यह कि उत्तरी अमेरिका के निवासियों का-सा भोजन दुनियाँ के सभी लोगों को प्राप्त हो सके, इसके लिए दुनियाँ मे पर्याप्त भूमि नही है।

कुछ विशेषज्ञों की राय के अनुसार कभी-कभी खाद्यान्न की बढ़ती समस्या को हल करने के लिए बड़ी सिंचाई परियोजनाओं को लागू करने पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर दिया जाता है। उनके सामने यह सवाल पैदा होता है कि बाँधवाली जमीन का क्या इस्तेमाल किया जाय। अनेक बार उन्हें इसका जो उत्तर मिलता है, उससे राष्ट्र की खाद्यान्न की सप्लाई बढ़ाने में कोई ठोस योगदान नहीं दिया जा सकता है।

पश्चिमी पाकिस्तान ने अपनी नयी सिंचाई परियोजनाओं के समीप की जमीन सबसे अधिक बोली बोलने वालों को बेच दी। जिन्हें यह जमीन मिली वे धनी व्यक्ति थे। उन्होंने इस जमीन पर गन्ना बो दिया। इसमें शक नही कि इससे लोगों को रोजगार मिला लेकिन इससे भूमिहीनों को जमीन नही मिल पायी और न राष्ट्र के लिए आवश्यक खाद्यपदार्थों में ही कोई वृद्धि हो सकी।

ईरान में, शाह मुहम्मद रिज़ा पहलेवी ने अपनी जमीन का वितरण करने की योजना बनायी। भूमि के एक हिस्से को कई भागों में बाँट दिया गया और इस का ख्याल नही रखा गया कि इन हिस्सों की जमीन किस प्रकार की है और इनकी उत्पादकता कितनी होगी। फिर भूमिहीनों को उन हिस्सों में भेज दिया गया। उनके रहने के लिए वहाँ न कोई मकान थे, न औज़ार थे, न मवेशी थे और न अन्य आवश्यक सामान ही था। रुपया उधार देने के लिए एक कृषि-बैंक स्थापित किया गया लेकिन बैंक के पास पर्याप्त साधन नही थे। इस प्रयोग के बाद ईरान में भूमि की समस्या को अधिक कुशलता से हल करने की कोशिश की गयी।

दुनियाँ में और जगहों पर भूमि के सदुपयोग की इस प्रकार की योजनाएं असफल रहीं क्योंकि इसके लिए पहले सावधानी से कोई योजना नही बनाई गयी थी।

दुनियाँ में खाद्यान्न की सप्लाई की समस्या अपने सम्पूर्ण रूप में केवल कोरी बहस का विषय नहीं है। यह एक महत्वपूर्ण सवाल है जिसका प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ता है और इसमें कोई सन्देह नही कि भविष्य में जब खाने वालों की संख्या और भी बढ़ जायेगी, इस पर और भी गम्भीरता से विचार करना होगा और सारा काम आयोजनाबद्ध तरीके से करना पड़ेगा।

पति को डलास स्थित अपने कारखाने में भेजा। श्रीमती ग्रेस को डलास बहुत अच्छा लगा, जब तक वहाँ रहीं हर मिनट खुशनुमा लगा। इससे पहले वह कैलीफोर्निया से बाहर कभी नहीं गयी थी। लेकिन डलास पहुँचे अभी चौबीस घन्टे भी नहीं बीते थे कि श्रीमती ग्रेस ने वहाँ के लोगों को उन्हें दो बार 'याकि' कहते सुना।

श्रीमती ग्रेस ने बताया कि इस बात से यह महसूस हुआ कि अन्य लोगों की दृष्टि में अजनबी लगना या विदेशी लगना कैसा होता है।

उन्होंने कहा, "बिल और मेरे कुछ बहुत घनिष्ट मित्र हैं, जो हंगरी से आये हुए हैं। अमेरिका देखकर वे भौंचक्के रह गये लेकिन अमेरिकनों की सम्पत्ति आदि देखकर कभी-कभी उनका मन विद्रोह कर उठता है क्योंकि दुनियाँ में ऐसे अनेक लोग हैं जो अभावग्रस्त हैं।"

उन्होंने कहा, "इससे साबित होता है कि वास्तविक मूल्यों पर बल देने के लिए और सीधा सम्पर्क होने पर एक-दूसरे के प्रति सद्भाव के विकास के लिए अमरीकी कितना कुछ कर सकते हैं।"

श्रीमती ग्रेस ने गर्ल स्काउट और पी० टी० ए० के काम में हिस्सा लिया और ये काम उन्हें पसन्द हैं। अब उनकी पुत्रियां जूनियर और सीनियर हाईस्कूल में हैं, इसलिए उनके पास काफी समय रहता है और सप्ताह में एक दिन वे गुड समारिटन अस्पताल में स्वैच्छिक कार्य कर सकती हैं। यह एपिसकोपल मतावलम्बियों की संस्था है और ग्रेस दम्पत्ति प्रेसबिटेरियन हैं। इन गर्मियों में उनकी पुत्रियाँ भी वहाँ काम करेंगी और वार्ड में नर्सों की सहायता करेंगी।

श्रीमती ग्रेस ने कहा, "इस काम से मुझे बहुत सुख मिलता है। लोगों की मदद करने में आदमी कितना सीख जाता है।"

"लेकिन जब यही विश्वव्यापी पैमाने पर किया जाय तो क्या इसमें बहुत अधिक नुकसान नहीं होगा?" एक अतिथि ने पूछा।

"सार्वजनिक और निजी कामों में इतना नुकसान तो होते ही रहता है।" श्रीमती ग्रेस ने कहा, "आप जानते हैं किसानों के कारोबार में कैसा होता है—कभी-कभी बहुत अधिक रुपया एकदम व्यर्थ नष्ट हो जाता है। लेकिन सीखने का इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है। मेरे विचार में यह पुरानी कहावत बिलकुल सही है कि, अनुभव ही हमारा सबसे बड़ा शिक्षक है।"

"हमें तो भविष्य के सम्बन्ध में विचार करना चाहिए। हम स्कूलों और सरकार पर अपार धन व्यय करते हैं—यह सभी भविष्य के लिए पूँजी लगाने के समान है।"

श्रीमती ग्रेस को इस बात की खुशी है कि उनकी पुत्रियों को स्कूल में विभिन्न

जातियों और संस्कृतियों के सहपाठियों से मिलने-जुलने का अवसर मिल रहा है और इसमें वे नये अनुभव प्राप्त कर रही हैं। उनके पड़ोस के लिए यह बिलकुल नया अनुभव है क्योंकि अन्य स्कूली क्षेत्रों से लड़कों और लड़कियों को वहाँ से लाया जाता है। कुछ लोगों को इससे चिन्ता है।

"परन्तु मैं अपनी लड़कियों से कहती हूँ कि बिना अन्य और भिन्न लोगों से मिले-जुले हम जीवन नहीं बिता सकते," उन्होंने कहा।

श्रीमती ग्रेस और उनके पति अपने को दुनियाँ की घटनाओं से किस प्रकार परिचित रखते हैं? बिल ग्रेस को घण्टों काम करना पड़ता है। कभी-कभी उन्हें रात में भी भोजन के बाद कारखाने जाना पड़ता है। श्रीमती ग्रेस ने बताया कि वे लोग जितना पढ़ना चाहते हैं उसके लिए समय ही नहीं मिल पाता। पुस्तकें पढ़ने का तो मौका मिलता ही नहीं। उन्हें इस बात का दुख है।

वे कुछ पत्रिकाएँ मँगाते हैं—न्यूजवीक, लाइफ, दि अटलांटिक मन्थली, रीडर डाइजेस्ट। जब समय मिलता है, टेलीविजन का कार्यक्रम देखते हैं, विशेषकर रविवार के इन्टरव्यू और वादविवाद के कार्यक्रम देखना पसन्द करते हैं। 'वाइड वाइड वर्ल्ड' और 'एडमुरो' उन्हें बहुत पसन्द हैं।

श्रीमती ग्रेस ने अपनी बात समाप्त करते हुए कहा "शायद मैं आशावादी हूँ।"

इससे उनका तात्पर्य, जैसा उन्होंने समझाया, यह है कि दुनियाँ को इस बात की आवश्यकता है कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की परवाह करे। उनका दृष्टिकोण इसी भावना से प्रभावित है। यह एक परिवार की-सी बात है। जिस प्रकार परिवार में एक-दूसरे की परवाह करने से जिम्मेदारियाँ बढ़ती हैं और इनसे किसी को भय नहीं लगता इसी प्रकार विश्वव्यापी पैमाने पर अपनी बढ़ती जिम्मेदारियों से अमेरिकनों के घबड़ाने का भी कोई कारण नहीं है।

जो बात अमेरिकनों के सम्बन्ध में सच है वही उन अन्य लोगों के सम्बन्ध में भी सही है जो इस सङ्कुचित होती दुनियाँ में अपने पड़ोसियों के मुकाबले अच्छी हालत में हैं। भविष्य की समस्या का हल वास्तव में मानव-जाति के प्रति पारिवारिक भावना जैसी साधारण-सी बात से आरम्भ होता है।

○ ○

भावी उपलब्धियाँ

यद्यपि मानवता अभी तक अज्ञान, आवेग और भय में जकड़ी हुई है, फिर भी उसने अपने को काफी हद तक भौतिक सीमाओं से मुक्त कर धीरे-धीरे अपनी आजादी का विस्तार किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि यदि मनुष्य अपने पर नियन्त्रण रखने में असफल न हुआ तो वह भविष्य में प्रकृति पर काबू पाने में असाधारण सफलता प्राप्त कर सकेगा।

तश्तरियाँ धोने के बेहतर तरीकों से लेकर परमाणु विखण्डन के उत्कृष्ट तरीकों तक तकनीकी ज्ञान का विकास अपनी पूरी तेजी पर है। किसी देश के लिए भविष्य का अर्थ है स्वचालित मशीनों का भविष्य और किसी के लिए इसका अर्थ है पैसों की जोड़ी का अधिक अच्छा इस्तेमाल। कल क्या होगा यह हम आज की घटनाओं से जान सकते हैं; वर्तमान से भविष्य का सङ्केत मिल जाता है।

सामूहिक माध्यमों (मास-मीडिया) ही को लीजिये। ये किसी न किसी रूप में हम सबको प्रभावित करता रहता है उदाहरण के लिए एक काल्पनिक विशिष्ट प्रकार के अमेरिकी जार्ज आरबुथनाट को लीजिये जो अमेरिका के मिडिल टाउन का निवासी है।

सुबह के साढ़े छह बजे हैं और जार्ज नींद के उन अन्तिम क्षणों का आनन्द ले रहा है जिनके बीतते ही वह जाग जायेगा।

सूरज की किरणें उसके सिरहाने के ऊपर दीवाल पर पड़ रही हैं, लेकिन उसको न तो सूरज की इन किरणों ने जगाया और न नीचे सड़क पर भौंकने वाले कुत्ते ने।

उसके बिस्तर के समीप की मेज पर घड़ीनुमा रेडियो की सुई ठीक साढ़े छह पर पहुँची कि उससे मधुर सङ्गीत की ध्वनि आने लगी, पहले बहुत मन्दी और फिर कुछ अधिक, जोर से।

जार्ज जाग गया है लेकिन उसे इस दुनिया के किसी नजारे ने या आवाज ने नहीं जगाया बल्कि सामूहिक-सञ्चार व्यवस्था के कृत्रिम-जगत् की आवाजों से वह जागा। *इस व्यापक जगत् के अन्दर निहित यह कृत्रिम-जगत् ऐसा है जिसमें* आज लोग अपने जीवन का काफी महत्वपूर्ण भाग बिता देते हैं; केवल मूखे अखबारी कागज या इलैक्ट्रोनिक ट्यूबों के द्वारा, जिन्हें वे (और इन साधनों की मरम्मत करने वाले) सामान्य-सी बात समझते हैं, देश-विदेश की घटनाओं और विभिन्न लोगों से उनका सहज ही सम्बन्ध जुड़ जाता है।

सुबह जागते ही जार्ज को ऐसा महसूस हुआ कि जागने की विधि उसके सारे दिन के कार्य-कलापों का ढाँचा सा तैयार कर देती है और यह ढाँचा ऐसा है जो *हर कदम पर सूचना और निर्देशन के सामूहिक-माध्यमों पर निर्भर है।*

उदाहरण के लिए, आज कौन से कपड़े पहिनने चाहिए, इसका पता लगाने के लिए वह अपने रेडियो को चालू रखता है और स्वयं हजामत बनाने लगता है। हजामत बनाते-बनाते रेडियो से उसे यह मालूम हो जाता है कि दिन में कितनी गर्मी रहेगी, वर्षा होगी या नहीं। इससे पहले कि वह उसे बन्द करे और नाश्ता करने नीचे जाय, रेडियो उसे यह सलाह भी दे देता है कि उसे किस किस्म की बरसाती खरीदनी चाहिए थी और किस टूथपेस्ट (दाँत के मञ्जन) से दाँत साफ करने चाहिए।

नाश्ते की मेज पर एक ओर टोस्ट आदि रखे हुए हैं और दूसरी ओर है सुबह का अखबार जिसमें खेल-जगत् की हलचल है, वाशिंगटन के पण्डितों के स्तम्भ हैं, पेरिस से प्राप्त रेडियो-फोटो हैं, मध्य पूर्व के तार हैं जिनके सम्बन्ध में वह बहुत उत्तेजना के साथ अपनी उपेक्षित-सी पत्नी को बताता है। यह समाचार-पत्र उसे उसके सीमित भौतिक अस्तित्व से मुक्त कर कहीं दूर पहुँचा देते हैं। वह नाश्ता करे या पढ़े, टोस्ट जगत् और अखबार जगत् में यही होड़ लगी हुई है।

जार्ज अपने दफ्तर जाते समय भी अपनी सुबह की इस नयी खोज पर सोचता जा रहा है, कार का रेडियो बज रहा है, लेकिन वह उसका ध्यान भङ्ग करने में असमर्थ है। जार्ज विचारों की दुनियाँ में खो सा गया है।

कार पार्क कर जब वह दफ्तर पहुँचता है तो उसे ऐसा लगता है कि *सड़क के आसपास से स्वार्थी निगाहें उसे घूर रही हैं, वह सड़क की आवाजों और* सामूहिक-सञ्चार के साधनों की, 'छापामार-चौकियों' का लक्ष्य बनता जा रहा है।

मोड़ पर अखबारों और मैगजीनों की दूकान है। मैगजीनों के भड़कीले आवरण उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने से नहीं चूकते। सिनेमा के पोस्टर उसकी ओर जैसे झपट रहे हों। इनमें वे दृश्य हैं जो यदि वह सिनेमा हाल में दाखिल हो तो पर्दे पर नहीं दिखायी देंगे। सामान की बिक्री का प्रचार करने वाली गाड़ी उसके कानों में शोर मचाती हुई आगे निकल जाती है।

आसमान की ओर निगाह उठते ही उसे एक विमान धुएँ की रेखाओं में किसी मोटर कम्पनी का विज्ञापन लिखते दिखायी देता है। नजर नीचे को गयी ना उसे सड़क पर सुन्दर अक्षरों में लिखा दिखाई देता है "सिटी कौंसिल के लिए मैकेबोय को वोट दो।'

कुछ सौ-गज की दूरी तय करने में ही उस पर एक नागरिक के रूप में, एक उपभोक्ता के रूप में और ऐसे व्यक्ति के रूप में जिसे अभी मनोरञ्जन की आवश्यकता है दर्जनों सन्देश दिये जा चुके हैं, कुछ छपे हुए हैं, कुछ चित्रों के रूप में हैं और कुछ जबानी कहे गये हैं।

जार्ज इन सबको बिना कोई प्रयास किये स्वाभाविक रूप में उसी तरह पार कर लेता है, जैसे कल किया था और कल फिर करेगा। लेकिन वह सोचता है, इन सबका उसके राजनीतिक विचारों पर, उसकी रुचियों के स्तर पर और अच्छे जीवन की उसकी मान्यताओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा? यह सवाल उसे परेशान करता है और लञ्च के समय वह अपनी पत्नी एलिस के सम्बन्ध में सोचने लगता है।

यद्यपि एलिस दिन भर घर पर ही रहती है लेकिन वह जानता है कि इसके बावजूद उसे उससे कहीं अधिक 'सन्देश' मिलते रहते हैं। उसे याद आता है कि आज ही तो महिलाओं से सम्बन्धित दो मैगजीनें डाक द्वारा पहुँची होंगी जो कि उसके घर पर (जिन्हें उसने इसलिए खरीदा क्योंकि इन मैगजीनों ने इसकी राय दी थी) अब इन नये विचारों का हमला बोल देंगी कि घर को किस प्रकार सजाया जाय, कौन से कपड़े पहने जाय, क्या खाया जाय।

देश के हजारों अन्य पतियों की तरह आज रात का भोजन के बाद उसे एक नये किस्म का खाद्य-पदार्थ मिलेगा क्योंकि खाद्य से सम्बन्धित स्तम्भ के सम्पादक ने अपने पचास लाख पाठकों को यह आश्वासन दिया है कि "पुरुष इस खाद्य को बेहद पसन्द करते।"

जार्ज ने इस पर एक लम्बी साँस ली। लेकिन वह समझता है कि एलिस को इन मैगजीनों से नये किस्म के भोजन बनाने व सजावट के अलावा और भी अनेक जानकारियाँ प्राप्त होती हैं। वह अक्सर कहा करती है कि ये मैगजीनें अकेले में साथी का काम करती हैं। इनके माध्यम से वह चाहे सतही तौर पर क्यों न हो

उन अनुभवों का आनन्द लेती है जो सभी महिलाओं के लिए समान होते हैं, केवल गृहस्थियों के लिए ही नहीं।

काम खत्म कर घर लौटते समय जार्ज अपने पुत्र जार्ज जूनियर के सम्बन्ध में सोचता है। वह सोचता है कि सामूहिक-सञ्चार के तकनीकी ज्ञान के युग का प्रभाव अन्य जगहों की तरह यहाँ भी इन छोटे बच्चों को सहना पड़ता है।

अन्य अल्पवयस्कों की तरह जार्ज जूनियर में भी कुछ सिद्धान्तों को स्वीकार कर उनका अनुसरण करने की तीव्र इच्छा है। इन सामूहिक-माध्यमों में उसे अपना आदर्श मिल जाता है।

जार्ज जूनियर ने आज प्रातःकाल अपने प्रिय पश्चिमी नायक की तरह के बाल बनाने में काफी समय लगाया। उसने गत रविवार को टेलीविजन में फुटबाल का खेल देखा और एक खिलाड़ी से प्रभावित हो कर अब उसकी चाल की नकल करने लगा है। वह अपनी हँसी से अपने माता-पिता को भौंचक्का करने लगा है। उन्हें अभी मालूम हुआ है कि यह हँसी एक खरगोश के कार्टून-चित्र के ट्रेडमार्क की तरह की है।

लेकिन इन सामूहिक सञ्चार माध्यमों का उसके जीवन पर अच्छा प्रभाव भी पड़ा है। उसके एक मित्र के पास रेडियो है और अच्छे रिकार्डों का संग्रह भी है। उससे वह शास्त्रीय सङ्गीत में रुचि लेने लगा है।

यही नहीं, हास्य और व्यङ्ग की पत्रिकाओं के बाद उसमें वैज्ञानिक कहानियों को पढ़ने की रुचि पैदा हुई और उनसे प्रभावित होकर अब वह भौतिक-शास्त्र तथा गणित में विशेष दिलचस्पी लेने लगा है।

अगले अगस्त से समीप के शहर में टेलीविजन में शिक्षण कार्यक्रम शुरू हो जायेगा और स्कूल में कम से कम एक विषय उसे टेलीविजन के द्वारा पढ़ाया जायेगा।

जार्ज को यह मालूम है कि १५ वर्ष की उम्र में उसे जितनी जानकारी थी उसके मुकाबले आज उसके पुत्र को अनेक विषयों की कहीं अधिक जानकारी है। इसका श्रेय सामूहिक-माध्यमों को ही है। लेकिन अभी भी वह इनसे कुछ डरता है क्योंकि उनकी आकर्षण शक्ति बहुत अधिक है और साथ ही ये बहुत व्यापक भी हैं।

शाम को वह सार्वजनिक पुस्तकालय में जाता है। आँकड़ों से सम्बन्धित साहित्य पढ़ने पर उसे मालूम हुआ कि अमेरिका में चार करोड़ से अधिक घरों में टेलीविजन सेट हैं और इनके कार्यक्रम देखने में दो अरब ६० करोड़ घण्टे का समय खर्च होता है जबकि वास्तविक उत्पादन कार्य और अन्य लाभ के कामों में केवल एक अरब ९० करोड़ घण्टे का समय लगाया जाता है।

देश में १२ करोड़ ५० लाख रेडियो सेट हैं और हर एक से कम से कम दो घण्टा प्रतिदिन कार्यक्रम सुने जाते हैं।

एक सप्ताह में चार करोड़ ६० लाख अमेरिकी सिनेमा देखने जाते हैं और इससे सिनेमागृहों को प्रतिवर्ष एक अरब डालर से अधिक आय होती है।

अमेरिका में समाचार-पत्रों का सरक्यूलेशन १२ करोड़ से अधिक है और मैगजीनों का करीब ४५ करोड़ है।

शरद की शाम को वह घर लौटता है, पत्तों की सुगन्धि उसका मन मोह लेती है, निर्मल आकाश में छिटके तारे उसकी दृष्टि को जैसे पकड़ लेते हैं। तनिक एकान्त और शान्ति पाकर वह बहुत प्रसन्न है। यहाँ वह महसूस करता है कि सामूहिक-माध्यम किस प्रकार उसे इस प्रकार के अनुभवों से वञ्चित कर देते हैं और जिस तरह वह रहता है उसमें अपनापन कुछ नहीं होता। उसे अपने कालेज के दिनों की याद आती है, प्लेटो का दर्शन याद आता है, वह सोचने लगता है है, क्या वह वास्तव में मनुष्यों का और घटनाओं को देखता है या केवल उनकी छाया मात्र को।

प्रतिदिन यह खतरा बना रहता है कि उसे आवश्यकता से अधिक तथ्यों की जानकारी होगी, इतने प्रभाव पड़ेंगे और इतने सन्देश मिलेंगे कि उसकी बुद्धि जवाब दे देगी, बुद्धि कुण्ठित हो जायेगी और फिर सभी बातें एक ही स्तर पर आ जायेंगी। उसे यह भी मालूम है कि सञ्चार के बड़े माध्यम वास्तव में सामूहिक सञ्चार माध्यम हैं और उसके आसपास के सभी लोगों को प्रायः समान सन्देश प्राप्त हो रहे हैं, इससे उसे यह भय लगता है कि कहीं विचारों आदि का समानीकरण न हो जाय, कहीं सबके विचार आदि एक ही तरह के न हो जायें।

लेकिन जैसे ही वह कल के लिए अपने घड़ीनुमा रेडियो को ठीक सेट करता है, वह यह अनुभव करता है कि अब पीछे नहीं लौटा जा सकता। वह बगैर समाचार-पत्र के, बिना रेडियो और टेलीविजन के यदि चाहे भी तो नहीं रह सकता। परमाणु शक्ति की तरह ये उपकरण हैं और इस बात की उसे स्वतन्त्रता है कि वह इनका सही इस्तेमाल करता है या नहीं।

वह इन सञ्चार साधनों का बुद्धिमत्ता से चयन करके इस्तेमाल कर सकता है, वह केवल दुनिया में अपनी दिलचस्पी की बातों के लिए ही इनका प्रयोग कर सकता है या फिर छककर मनोरञ्जन कर सकता है।

लेकिन यह चुनाव कर सकना आसान नहीं। यह ऐसी बात है जिसे उसे और उसके परिवार को प्रतिदिन मन ही मन चुपचाप तय करना होगा। परन्तु चयन करने में कुछ ऐसी भी बातें हैं जो उसके अपने नैतिक तथा बौद्धिक विकास के लिए अधिक महत्वपूर्ण हो सकती हैं और इस प्रकार उसके देश के लिए हितकर हो सकती हैं।

—२—

सामूहिक माध्यमों ने केवल अमेरिका पर ही नहीं बल्कि पूरे विश्व पर धावा बोल रखा है। उनका अच्छे से अच्छा उपयोग करने की जिम्मेदारी अकेले जार्ज आरवुथनाट की नहीं है, जो माध्यमों का इस्तेमाल करने वालों का प्रतिनिधि समझा जा सकता है बल्कि इनका सञ्चालन करनेवालों पर भी इसकी जिम्मेदारी है।

१९५४ में स्कूल में जातिभेद के प्रसिद्ध मामले पर अमेरिकी सुप्रीमकोर्ट द्वारा फैसला दिये जाने के पाँच मिनट के अन्दर ही दुनिया के कोने-कोने में इस फैसले की महत्वपूर्ण खबर पहुँच गयी। एक घण्टे के अन्दर उसे एशिया, अफ्रीका और ओसेनिया के रेडियो स्टेशनों से प्रसारित कर दिया गया। इसके कुछ मिनट बाद ही घासफूस की झोपड़ीवाले हजारों गांवों में जहाँ पहले हर पाँच-सौ ग्रामीणों में से एक ने भी सुप्रीमकोर्ट का नाम नहीं सुना था, इस फैसले पर बहसें होने लगीं।

इससे और अनेक अनगिनत तरीकों से उस आश्चर्यजनक परिवर्तन पर रोशनी पड़ती है जो देशों और लोगों के बीच सञ्चार के साधनों के विकास से आया है। आज मनुष्य के विचारों को और उसकी प्रतिक्रियाओं को न केवल तीव्र-गति से मोड़ा जाता है बल्कि उसमें गहरायी लायी जाती है और उसका प्रसार किया जाता है जो कुछ शताब्दियाँ पहले सम्भव नहीं था।

इसलिए इस बात पर विचार करना न केवल उचित है बल्कि बहुत महत्वपूर्ण भी है कि क्या सञ्चार के माध्यमों से जो आशा की जाती थी वे उसकी पूर्ति कर रहे हैं; क्या वे बन्धुत्व, शान्ति, खुशहाली, नैतिकता और पारस्परिक सद्भाव के महान् लक्ष्यों की पूर्ति की दिशा में पर्याप्त सेवा कर रहे हैं।

यह बात हमें अपने से पूछनी है कि किस हद तक रेडियो, टेलीविजन, समाचार-पत्र, मैगजीन और पुस्तकों के प्रकाशक, मानवजाति को उन तथ्यों से अवगत करा रहे हैं जो निजी, स्थानीय, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर ठोस निर्णय के लिए आवश्यक हैं; वे किस हद तक दुनिया की उन परिस्थितियों से मुक्त पाने की कोशिशों में, जो उसे युद्धलिप्सु, निर्धन, अज्ञानी और दुखी बनाये हुए हैं, रुकावट डालने के बजाय मदद कर रहे हैं।

यह कोई गुप्त बात नहीं है कि इन सभी माध्यमों में से प्रत्येक को पथ-भ्रष्ट करनेवाली प्रभावशाली ताकतें भी हैं और उसका समर्थन करनेवाली ताकतें भी हैं। प्रत्येक पक्ष अपनी बात को सिद्ध करने के लिए जबरदस्त तर्क दे सकता है। उदाहरण के लिए प्रेस, रेडियो और टेलीविजन का विश्लेषण किया जा सकता है और इस नतीजे पर पहुँचा जा सकता है कि इनका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता

है, ये मनुष्य जाति की निम्नतम भावनाओं का पोषण करते हैं, उसी के अनुरूप सामग्री देते हैं और ये अपनी अपार शक्ति का इस्तेमाल भलाई के लिए करने में बुरी तरह असफल रहे हैं।

दूसरी ओर ऐतिहासिक दृष्टि से यह तर्क किया जा सकता है कि उससे पहले कभी भी जनता को इतनी अधिक और इतनी सही जानकारियाँ नहीं दी जा सकती थीं, समाचारों में, मनोरंजन में और सूचनाओं में उत्तरोत्तर दीर्घकालीन सुधार होता गया है और आज ये सामूहिक संचार माध्यम ठीक वही काम कर रहे हैं जो दुनिया के वर्तमान परिस्थितियों में वे कर सकते हैं।

ऐसा लगेगा कि ये दोनों ही दृष्टिकोण सही हैं। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि संचार के सभी साधन मानवजाति की उन्नति के महान् प्रयत्नों में सहायता देने के लिए वर्तमान स्थिति के मुकाबले कहीं अधिक सहयोग दे सकते हैं। वे अपना अधिकाधिक समय सांस्कृतिक मामलों में लगा सकते हैं। वे सनसनीखेज खबरों आदि को कम महत्त्व दे सकते हैं और स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय समाचारों के रचनात्मक पहलुओं को अधिक महत्व के साथ प्रस्तुत कर सकते हैं। वे जनता के नेतृत्व का अनुसरण करने के बजाय साहस और दूरदृष्टि के साथ अपने प्रयत्नों से जनता का नेतृत्व कर सकते हैं। इसमें कोई शक नहीं कि वे अपने को महान् कार्यों का प्रवक्ता बना सकते हैं। वे मनोरंजन में उज्ज्वल पक्ष पर अधिक बल दे सकते हैं और कुरूप पक्ष का परित्याग कर सकते हैं, उसकी निन्दा कर सकते हैं।

फिर भी इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि इन संचार माध्यमों का वर्तमान में जो रूप है और बढ़ती सामाजिक तथा नैतिक जिम्मेदारियों की दिशा में उनकी प्रगति में ऐसी बहुत-सी बातें हैं जिनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता। थोड़ी देर के लिए प्रेस को ही ले लीजिए। यह मानते हुए कि बहुत से समाचार-पत्र अब भी एकदम निकम्मी और हानिकारक खबरों को सनसनीखेज बनाकर छाप रहे हैं; यह मानते हुए कि उनमें अपराध, सेक्स और दुर्घटनाओं के समाचारों को बहुत सज-धज के साथ प्रमुखता देकर छापा जा रहा है, ऐसे भी पत्र हैं जो सनसनीखेज समाचारों के युग की गैर जिम्मेदारी को प्रकाश में लाते हैं। हो सकता है कि समाचार-पत्र सामान्य कोटि का हो लेकिन वह अधिक ईमानदार, न्यायप्रिय और अनेक रूपों में साहसी भी हो सकता है।

प्रेस की चाहे कुछ भी आलोचना की जाय पर रेडियो और टेलीविजन की, विशेषकर टेलीविजन की, अधिक कड़ी आलोचना के सामने फीकी पड़ जाती है।

टेलीविजन कार्यक्रम के एक समीक्षक ने अनुमान लगाया कि १५ प्रतिशत कम और संभवतः १० प्रतिशत समय तो उपदेशात्मक, जैसे अच्छे नाटकों, अच्छे

सङ्गीत और जानकारीपूर्ण समाचारों के सामान्य कार्यक्रमों पर खर्च किया जाता है। बाकी समय ऐसे कार्यक्रमों में लगाया जाता है कि जिनका वास्तविकता से सम्बन्ध नहीं होता।

टेलीविजन के अनेक प्रशासकों को यह बात मालूम है और वे इस पर खेद प्रकट करते हैं। उनका कहना है कि इसे दूसरी दिशा में मोड़ने के अनेक बार प्रयत्न किये गये लेकिन सफलता नहीं मिली जिससे वे भी हाथ धरकर बैठ गये। फिर भी वे इस बात को गर्व के साथ कहते हैं कि कैफोवर-काण्ड की सुनवाई, मैकार्थी की सुनवाई और अनेक महत्वपूर्ण सवालों पर संयुक्त राष्ट्रसङ्घ की बहसों के प्रसारण में काफी समय दिया। वे यह भी बताते हैं कि उन्होंने अपने समाचारों के कार्यक्रमों में कटौती करने से इन्कार कर दिया जबकि उन्हें उस समय का दूसरे कार्यक्रमों के लिए इस्तेमाल करने से काफी आय हो सकती थी।

परन्तु प्रमाणों का वजन उस पक्ष के साथ प्रतीत होता है जो यह कहते हैं कि टेलीविजन ने प्रेस के विपरीत अपने उत्तरदायित्व को, अपने कर्त्तव्य को उतना नहीं समझा जितना जनता को उससे माँग करने का अधिकार है। इसमें एक उल्लेखनीय अपवाद अवश्य है। कुछ ऐसे भी स्टेशन हैं जिनका झुकाव शिक्षा की ओर अधिक है और जिनके अधिकांश कार्यक्रम सांस्कृतिक और शिक्षा से सम्बन्धित होते हैं। दुर्भाग्य से ऐसे स्टेशनों के कार्यक्रमों को सुनने और देखने वालों की संख्या अधिक नहीं है।

उससे यह सवाल पैदा होता है कि विभिन्न सञ्चार-माध्यमों में से प्रत्येक ने किस हद तक जनमत और जनरुचि का नेतृत्व करने का साहस किया है। आमतौर पर यह अनुभव किया जाता है कि इस मामले में समाचार-पत्र और पुस्तकों के प्रकाशकों ने रेडियो, टेलीविजन और फिल्म निर्माताओं की अपेक्षा अधिक साहस दिखाया है।

क्या इसका कारण यह है कि पत्रकारिता और साहित्य इनकी अपेक्षा अधिक पुराने हैं इसलिए इनकी अपेक्षा अधिक परिपक्व भी?

ऐसे लोग भी हैं जो इस बात पर जोर देते हैं कि सामूहिक सञ्चार माध्यमों से यह आशा करना कि वे जनता की सेवा में नेतृत्व करें, बिलकुल अनुचित बात है। इन लोगों का कहना है कि ऐसे माध्यम, सार्वजनिक जीवन के अन्य महत्वपूर्ण पहलुओं की तरह आम जनता के स्तर से ऊपर नहीं उठ सकते हैं और वे केवल जनता की रुचि और उसकी योग्यता को प्रतिबिम्बित करते हैं। वे यह भी दावा करते हैं कि जनता के स्तर में उस तेजी से सुधार नहीं हुआ है जितनी तेजी से तकनीकी खोजें हुई हैं और इसके परिणाम स्वरूप सञ्चार के मानवीय पक्ष वैज्ञानिक पक्ष के साथ कदम से कदम मिलाकर आगे नहीं बढ़ सका है। परन्तु

वैज्ञानिक खोजों के कारण जो दबाव पड़ा है, उससे जनता की दिलचस्पी में और स्तर में अतीत के मुकाबले अधिक तेजी से सुधार करने के लिए विवशता पैदा हुई है और जैसे-जैसे समय बीतता जायेगा हम देखेंगे कि समाचार-पत्रों की तरह ही टेलीविजन और रेडियो का स्तर भी ऊँचा उठ रहा है।

स्तर में और सेवा में प्रगति की जब कभी और जहाँ कहीं भी सम्भावना दिखाई दे, उसके लिए पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध कराने और डर कर या लोभ में पड़कर उसको न रोकने की जिम्मेदारी उन लोगों की है जो इन माध्यमों को चलाते हैं और इनका निर्देशन करते हैं।

ये कुछ ऐसी महत्वपूर्ण चुनौतियाँ हैं जिनका उन्नत सञ्चार व्यवस्था को भविष्य में भी सामना करना पड़ेगा। बिजली से चलने वाले कौन से नये साधन सम्भव हैं? अफ्रीका में नगाड़े बजाकर सूचना देने की व्यवस्था के स्थान पर टेलीफोन व्यवस्था चालू हो जाने से तकनीकी प्रगति की दिशा में जनता को अब और क्या प्राप्त होने वाला है?

सबसे पहली बात तो यह है कि सञ्चार व्यवस्था हम सबके लिए अधिकाधिक निजी भावना बनती जायेगी। इसके साथ ही चित्रों, ध्वनि और प्रकाशित सामग्री के रूप में वह अधिक व्यापक भी होती जायेगी।

इस बात में बहुत कम सन्देह रह गया है कि यदि हम चाहें तो अपने घर में अपना 'सञ्चार-केन्द्र' कायम कर सकते हैं। इन 'सञ्चार-केन्द्रों' का केन्द्र, हमारे घरों के टेलीफोन, टेलीविजन और रेडियो सेट तथा टेप मशीनें बन चुकी हैं, यदि इन यन्त्रों में कुछ सुधार कर इनके कार्यों को और बढ़ा दिया जावे और फिर इन सबको संयुक्त कर दिया जाय तो यही भविष्य में हमारे घर का अपना 'सञ्चार-केन्द्र' बन जायेगा।

इन सञ्चार साधनों से न केवल पूरी दुनिया को सङ्कुचित कर हम अपने कमरे में सीमित कर देंगे बल्कि इनसे यह भी पता चलता रहेगा कि हमारे परिवार के लोग कहाँ हैं और क्या कर रहे हैं।

उदाहरण के लिए, घरों में जो टेलीविजन सेट लगे हैं वे एक तरफा कार्रवाई के लिए हैं, उनसे हम एक ही दिशा की सूचना प्राप्त कर सकते हैं। यदि घर में ही 'क्लोज सरकिट' की विधि से इसमें किञ्चित् परिवर्तन कर दिया जाय तो यही रिसीवर सेट को तकनीकी प्रगति का इस्तेमाल करके माँ ऊपर की मञ्जिल में सोये अपने बच्चे की देखभाल के लिए इस्तेमाल कर सकती है, इससे वह पता लगा सकती है कि बच्चा सो रहा है या नहीं, साथ ही घर के बाहर खेलने वाले बच्चों के सम्बन्ध में भी वह इसकी मदद से सब कुछ पता लगा सकती है। वह यह भी मालूम कर सकती है कि दरवाजे की घण्टी कौन बजा रहा है।

इसी 'क्लोज सरकिट' के सिद्धान्त को अपनाकर तथाकथित 'कम्युनिटी एन्टेना-सिस्टम' के द्वारा घर के टेलीविजन सेट पर स्थानीय सिनेमाघर का नम्बर घुमाकर वहाँ जिस फिल्म का प्रदर्शन हो रहा है, उसे घर बैठे देखा जा सकता है या स्थानीय पुस्तकालय में आवश्यक सामग्री प्राप्त की जा सकती है या घर बैठे उसको पढ़ा जा सकता है या स्थानीय 'फिल्म लायब्रेरी' में जाकर टेलीविजन शो के और फिल्मों के टेप प्राप्त कर सकता है।

टेप रिकार्डिङ्ग की उन्नत टेक्नीक से टेलीविजन के या फिल्म खींचने वाले ऐसे कैमरों के बिजली के सङ्केत सीधे टेप में प्राप्त किये जा सकते हैं जो लैन्स या फिल्म की बजाय मूर्तदर्शी (इकनोस्कोप्स) का इस्तेमाल करते हैं। टेप रील को घर के टेलीविजन सेट से जोड़कर इन बिजली के सङ्केतों को स्पष्ट देखा जा सकता है या टेलीविजन सेट का 'कम्यूनिटी केबल सिस्टम' के द्वारा फिल्म लायब्रेरी से सम्बन्ध जोड़कर भी यह देखा जा सकता है।

घर में इस्तेमाल किये जाने वाले एफ० एम० (फ्रीक्वेंसी माडूलेशन) रिसीवर से समाचार-पत्र का अपना संस्करण प्राप्त किया जा सकता है।

फोटो लेने के कागज, रिकार्डिङ्ग मशीन आदि से फिट एफ० एम० रिसीवर सेट से 'घर का अखबार' निकालना है। एक बजे रात जब सब सोये हुए हैं, इस सेट को चालू कर दिया। तब से लेकर छह बजे सुबह तक के समाचार और चित्र आदि इस सेट में खिंच जायेंगे। यदि सुबह आँधी-तूफान चल रहा है और समाचार-पत्र देने वाला नहीं आ सका तो केवल इस मशीन तक जाने का कष्ट करना पड़ेगा और इसमें सारी जानकारी प्राप्त हो जायेगी।

टेलीफोन, जो एक तरह से हर समय हमारे साथ रहता है, सञ्चार का निजी साधन बन गया है। ट्रान्जिस्टरों से टेलीफोन रिसीवर के साथ ट्रान्समीटर जोड़ना सम्भव हो गया है। यह ट्रान्समीटर साबुन की टिकिया के बराबर होगा जो बैटरी से चल सकेगा।

इस प्रकार के निजी टेलीफोन-ट्रान्समीटर से दोनों ओर से बातचीत सम्भव हो सकती है। साथ ले जा सकने लायक टेलीफोन-ट्रान्समीटर से एक सेल्समैन अपने आफिस के प्रबन्धक से, सम्वाददाता सम्पादक से, चाहे तो सीधे रेडियो लाइन से या टेलीफोन की अपनी लाइन से आपस में बातचीत कर सकते हैं, जैसा कि गश्त लगाने वाले पुलिसमैन और उनका सार्जेन्ट, टैक्सी चालक आदि करते हैं।

एक और किस्म का टेलीफोन है जिसे 'पेजिंगसेट' कहा जाता है। यह भी एकतरफा कार्य करता है। इस प्रकार के सेट से रिसीवरों को लिये हुए लोगों में से जिसे चाहा, बुलाया जा सकता है। रिसीवर में घण्टी बजेगी, जिसके

रिसीवर में घण्टी बजी वह टेलीफोन पर जाकर यह पता लगा लेगा कि उससे क्या कहा जा रहा है।

निजी सञ्चार व्यवस्था को लागू करने में सबसे बड़ी कठिनाई उपयुक्त रेडियो तरङ्गों की कमी है।

अब तकनीकी तौर पर चित्रों का एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रेषण सम्भव हो गया है जिसे रेडियो-फोटो कहते हैं। इसलिए इस विधि के इस्तेमाल से टेलीफोन पर बात करने वाला उस व्यक्ति को भी देख सकता है जिससे वह बातें कर रहा है। चित्र के लिए अधिक विस्तृत तरङ्गों की आवश्यकता होती है। जब तक टेलीफोन-प्रयोगशालाएँ चित्र प्रेषण का कोई कम लागत का लाभ का तरीका नहीं खोज लेते तब तक टेलीफोन-टेलीविजनों का बहुत सीमित संख्या में इस्तेमाल हो सकेगा।

इस समय टेलीफोन-टेलीविजन बहुत मँहगा पड़ेगा इसलिए केवल सम्मेलनों, बैठकों और केवल निजी प्रयोग के लिए ही इसका इस्तेमाल सम्भव है। ट्रान्जिस्टर से सज्जित टेलीफोन के लिए विशेष सुविधा हो गयी है। चूंकि इसमें बिजली का खर्च कम होता है, इसलिए विस्तृत तरङ्गोंवाले ट्रान्जिस्टर एमप्लीफायर का इस्तेमाल किया जा सकता है।

रेडियो-स्पेक्ट्रम में विशेषकर चित्रों के प्रेषण में बचत करने की बहुत आवश्यकता है। इससे यह पता चलता है कि इन सङ्केतों को और संक्षिप्त बनाना पड़ेगा या कम करके कमप्यूटर्स के स्तर तक लाना होगा।

इन साधनों से और "सूचना के सिद्धान्त" की सहायता से संक्षिप्त सङ्केतों को काफी बड़ी संख्या में भेजा जा सकता है। सूचना का सिद्धान्त यह है कि सूचना छोटी से छोटी हो, जिसे जल्दी भेजा जा सके लेकिन जिसे पढ़ने पर अर्थ एकदम स्पष्ट हो जाय। दूसरी ओर लगा यन्त्र, चाहे वह टेलीविजन सेट हो, रेडियो रिसीवर हो या अखबार छापने वाला यन्त्र हो, इन संक्षिप्त सङ्केतों को ग्रहण कर लेगा और फिर उसके लुप्त अंशों की पूर्ति कर पूरा सन्देश प्रस्तुत कर देगा।

ट्रान्जिस्टरों से बहुत पतला टेलीविजन रिसीवर सेट बनना सम्भव हो गया है जो बैटरी से चला करेगा।

ये साथ ले जा सकने लायक टेलीविजन सेट पतले-काँच के गिलास की तरह होंगे और इनको बिजली से चलाने की भी व्यवस्था होगी। इनके प्लग को घर में या कार में कहीं भी लगाया जा सकेगा। कारों में रेडियो सेट आदि लगे होते हैं जो अपनी बैटरियों से चलते हैं।

भू-उपग्रह और नव अन्तरिक्ष यानों से, जिनके छोड़े जाने की सम्भावना है, विश्वव्यापी सञ्चार व्यवस्था का मार्ग खुल जायेगा। विश्वव्यापी पैमाने पर

टेलीविजन कार्यक्रम का प्रसारण अब सम्भव हो चुका है। 'स्कैटर' ट्रान्समिशन के द्वारा सङ्केतों को पृथ्वी के ऊपर विद्युन्मय सतह तक भेजा जाता है। इसमें से कुछ शक्ति इस सतह से टकराकर लौट आती है और उसे दूर-दूर के स्थानों पर पकड़ लिया जाता है।

—३—

इसमें सन्देह नहीं कि अमेरिका में सञ्चार व्यवस्था में जो प्रगति होगी उसके साथ ही अन्य क्षेत्रों में भी प्रगति होगी। बर्तन धोने वाले बिजली के यन्त्र में, कपड़ों को सुखाने की विधि में और राडार में सुधार होगा; जन-श्रम को बचाने वाले ऐसे-ऐसे तरीके निकल आयेंगे और ऐसे नये साधन बन जायेंगे जिनकी अभी तक कल्पना भी नहीं की गयी। इससे समय की बहुत बचत होगी जिसे और भी श्रम बचाने के तरीकों में इस्तेमाल किया जायेगा। परन्तु यदि 'पूंजीवादी' अमेरिकी अपनी नयी खोजों के दास बनते जा रहे हैं तो कम्युनिस्ट रूस के नागरिकों को भी ऐसे भविष्य का सामना करना पड़ रहा है जिसे मशीनों ने अत्यन्त जटिल बना दिया है। इस भविष्य का सामना करने के लिए मास्को के एक परिवार ने किस प्रकार तैयारी की, इसका उदाहरण इस प्रकार है :—

आखिर यात्रा का दिन आया; सुबह बहुत ठण्ड थी, कुहरा छाया हुआ था। नादेज्दा पावलोवना सेस्कोवा ने अध्यापन-कार्य से छुट्टी ले ली थी। आसमान पर नजर डाली, आकाश मेघाच्छन्न था, उसे लगा शायद बर्फ गिरे या पहली अप्रैल की बरसात हो जाय। ट्रक दस बजे पहुँचने वाला था। उसने करीना रोसचा से मास्को होते हुए लेनिनहिल तक की एक घण्टे की यात्रा की मन ही मन कल्पना की। चाहे वर्षा हो या धूप निकले, यात्रा अब स्थगित नहीं की जा सकती थी। फिर मौसम के अलावा चिन्ता करने की और भी अनेक बातें थीं।

इस दिन का हफ्तों से इन्तजार था। नादेज्दा पावलोवना मन ही मन यह सोचती रही कि कौन चीज छोड़ जाय और कौन चीज ले जाय। उसे लकड़ी के बने पुराने मकान के अपने वे दो कमरे खाली करने थे जिनमें उसका परिवार गत २० वर्षों से रह रहा था। अनेक गृहणियों की तरह उसे भी उन चीजों को छोड़ने में बहुत कष्ट हो रहा था जो इतने दिनों तक पुराने और विश्वसनीय मित्र के रूप में साथ रही थीं। लेकिन उसका पति निकोलाई मैक्सिमोविच सेस्कोव राज्य-आयोजन आयोग में निर्माण-कार्य का इञ्जीनियर था और उसने यह बात स्पष्ट रूप में कह दी थी।

उसने दफ्तर की तरह ही भाषण की शैली में कहा, "हम केवल एक नये घर

में ही नहीं जा रहे हैं बल्कि एक नये युग में प्रवेश कर रहे हैं जो कि हमारे उज्ज्वल भविष्य की दिशा में प्रगति की नयी मंज़िल है। और मैं यह नहीं चाहता कि यह भविष्य बेकार की पुरानी चीज़ों से बोझिल हो जाय। चाहे तुम इन्हें बेच दो, किसी को दे दो, फेंक दो या जला दो, मुझे इसकी परवाह नहीं।"

हमेशा की तरह नाद्येज्दा पावलोव्ना ने सहमति प्रकट की और सूची बनाने लगी। तीन कमरे के नये फ्लैट के नक्शे को उसने बड़ी सावधानी से देखा था और अनेक बार वहाँ गयी भी थी जहाँ ये फ्लैट बन रहे थे। पानी का नल लगा होगा, बाथरूम में नहाने की व्यवस्था होगी इसलिए उन्हें पुराने टिन के टब की वहाँ ज़रूरत नहीं रहेगी, लकड़ी के वाश स्टैंड की भी ज़रूरत नहीं होगी, जिसके शीशे में दरार पड़ गयी है और जिसमें चीनी मिट्टी का बेसिन फिट किया हुआ है। बेसिन पर फूलों के डिज़ाइन है। ये वस्तुएं पर्दे के पीछे इतने दिनों से रखी हुई हैं कि अक्सर पानी छलक जाने से नीचे फ़र्श के तख्ते सड़ गये। एक बहुत बड़ा लोहे का दुरमुट का स्टोव, उसकी नलियाँ, कोयला डालने का बर्तन, चिमटा और अन्य सामान भी है। नये फ्लैट में इनमें से किसी की भी जरूरत नहीं होगी।

नये फ्लैट में कमरों को गरम रखने का यन्त्र लगा हुआ है और गैस भी है। इसलिए इस भारी भरकम स्टोव को हमेशा के लिए विदा देनी थी. इसके साथ ही पानी भरने और उसे गरम करने के काम को भी। जो सामान नहीं ले जाना था, उसमें दो धुंएं से काले 'केरोसिंका' भी थे जिन पर नाद्येज्दा पावलोव्ना और उसकी माँ भीड़भाड़ वाले सामूहिक रसोई घर में खाना पकाया करते थे। दोनों महिलाओं ने सुझाव दिया कि मिट्टी तेल के स्टोवों को साथ ले जाया जाय, शायद कभी काम पड़ जाय। दोनों का इन स्टोवों के प्रति गहरा लगाव हो गया था। लेकिन निकोलाई मैक्सिमोविच को जब यह मालूम हुआ तो उसने इस पर आपत्ति की और वायदा किया कि अगली गर्मियों तक दो बर्नर वाला प्राइमस स्टोव खरीद लिया जायगा।

लेकिन मुख्य समस्या ऐसी वस्तुओं के सम्बन्ध में थी जिनकी उपयोगिता पर बहस की गुंजाइश थी। जैसे, विशाल वार्डरोब जो नाद्येज्दा पावलोव्ना के परिवार में कई पीढ़ियों से चला आ रहा था। इसको साथ ले जाने के लिए वह रोयी, गिड़गिड़ायी लेकिन सब व्यर्थ। निकोलाई मैक्सिमोविच ने उसे याद दिलाया कि नये फ्लैट में आलमारियाँ और वार्डरोब बने हुए हैं इसलिए इस विशाल वार्डरोब को ले जाकर जगह क्यों घेरी जाय?

"हमें वहाँ संग्रहालय नहीं बनाना है" यह उसका अन्तिम निर्णय था।

सामान के चुनाव की इस प्रक्रिया से सबसे अधिक दुखी थी नाद्येज्दा पावलोव्ना की माँ। उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसे ही उठाकर रद्दी के साथ

फेंका जा रहा हो। जैसे वह टेक्नालाजी के विकास से हुई बेरोजगारी का शिकार बन गयी हो। वह परिवार की बाबुश्का (नानी) थी और इसलिए मारिना रोशचा में उसका परिवार में मुख्य स्थान था। अन्य सोवियत परिवारों की तरह जहाँ पति और पत्नी दोनों ही काम करते हैं और जिनके पास नौकरानी रखने को या तो जगह नहीं है या पर्याप्त पैसा नहीं है, नेस्कोवा दम्पत्ति भी इतने वर्षों तक बाजार से खरीदारी के लिए, अधिकांशतः भोजन बनाने के लिए, कपड़ों की मरम्मत करने और बच्चों की देखभाल करने के लिए बाबुश्का पर ही निर्भर करते रहे।

बच्चे बड़े हो जाने पर बाबुश्का का काम काफी हल्का हो गया और वह शाम को साढ़े छह बजे से ग्यारह बजे रात तक टेलीविजन सेट के सामने अपनी कुर्सी पर झूलती रहती। चाहे कार्यक्रम कुछ भी हो, वह पूरी तरह उसमें खो जाती और उद्घोषकों तथा अभिनेताओं की बात का उत्तर देती या कोई टिप्पणी करती जिससे उसके समीप बैठे बच्चे बहुत खुश होते।

मारिना रोशचा से जाने के कई महीने पहिले टेलीविजन सेट खरीद लिया गया था और आधुनिक रहन-सहन का सबसे पहला प्रतीक परिवार में यही सेट था। रेफ्रीजरेटर के लिए स्थान की कमी थी लेकिन निकोलाई मैक्सिमोविच ने फ्लैट के लिए एक रेफ्रीजरेटर का आर्डर दे दिया था। इसका मतलब यह था कि गर्मियों में परिवार को खाने का सामान रोज-रोज खरीदने की दिक्कत नहीं उठानी पड़ेगी।

बाबुश्का को ही इससे सबसे अधिक लाभ होता लेकिन वह इस बात से बहुत खुश नहीं थी। वह घर में बैठे-बैठे तङ्ग आ जाती थी और इस मनहूसियत को दूर करने के लिए दिन में कई बार कुछ न कुछ खरीदने के लिए बाजार जाना उसे बहुत पसन्द था, इससे उसे कुछ राहत मिलती थी और साथ ही किसानों, स्टोर के क्लर्कों और अपनी तरह की और बाबुश्काओं के साथ, जो उसी की तरह बाजार जाने में अधिक दिलचस्पी रखती थीं, उसे गप लड़ाने का और बातचीत का मौका मिल जाता था। उसे इस बात से बहुत घबड़ाहट हुई कि नये फ्लैट में रसोईघर अलग होगा जिसकी मुख्तार वह स्वयं होगी। घबड़ाहट का कारण यह था कि वहाँ वह अकेली पड़ जायेगी और सामूहिक रसोईघर की तरह बातचीत करने वाला कोई दूसरा व्यक्ति वहाँ नहीं होगा।

उसने शङ्का पेश की, "मान लो कुछ गड़बड़ी हो गयी जैसे गैस निकलने लगी और मैं वहां अकेली हुई तो फिर मेरी मदद कौन करेगा ?"

बाबुश्का को नहाने के टब और गैस की मशीन से उसमें गरम पानी की व्यवस्था के सम्बन्ध में भी सन्देह था। उसने प्रश्न किया कि लेनिन हिल

से मारिता रास्ता काफी दूर पड़ेगा फिर भी वह सप्ताह में एक दिन अवश्य सार्वजनिक स्नान-गृह में नहाने के लिए वहाँ आयेगी। इस मामले में वाबुश्का पुराने रोम निवासियों की तरह थी। वह सार्वजनिक स्नान-गृह में केवल नहाने के लिए ही नहीं जाती थी बल्कि वहाँ मित्रों से मुलाकात होती थी और अन्य वाबुश्काएं भी आती थीं, इसलिए उनसे बातचीत करने और गप लड़ाने का मौका मिलता था। नये फ्लैट में स्नान की व्यवस्था को उसने अपनी आदतों पर, कुठाराघात समझा।

निकोलाई मैक्सिमोविच नये ढङ्ग से रहने के लिए अत्यन्त उत्सुक था। वह नये रहन-सहन को सुलभ बनाने के लिए कटिबद्ध था। उसने नया फर्नीचर खरीदा, बिजली का सामान लिया, कपड़े धोने की छोटी मशीन ली, फर्श साफ करने का बिजली से चलने वाला वैकुअम क्लीनर लिया और पूर्वी जर्मनी में बना बिजली का काफी पाट खरीदा। नादेज्दा पावलोवना को यह अच्छा नहीं लगा और उसने इस फिजूल खर्ची की आलोचना भी की।

"तुम्हारे पीठ पीछे लोग तरह-तरह की बात करना शुरू करेंगे, ये कहेंगे पता नहीं इतना रुपया ये कहा से लाये।"

"मान भी लिया कि कुछ ईर्ष्यालु लोग ऐसी बातें करेंगे, तो भी क्या हुआ ?" उसने उत्तर में कहा, "अब वह समय नहीं रहा जबकि लोग केवल इसलिए बर्खास्त किये जाते थे कि किसी ने उनकी निन्दा की है।"

"शायद तुम ठीक कह रहे हो," नादेज्दा के पास केवल यही उत्तर होता।

निकोलाई मैक्सिमोविच आफिस से लौटने के बाद बिजली के सामानों का निकालना और यह बताता था कि उनका किस प्रकार इस्तेमाल किया जाता है। इसके बावजूद आरम्भ में वाबुश्का ने इस सामान पर हाथ लगाने से इन्कार कर दिया। वाबुश्का का विरोध खत्म करने और उसको बिजली के सामान के इस्तेमाल के लिए राजी करने को निकोलाई ने बहुत धैर्य से काम लिया। वह अपने पक्ष की पुष्टि के लिए "प्रावदा" में से उद्धरण पढ़कर सुनाता। क्या निकिता एस० ख्रुश्चोव ने यह घोषित नहीं किया कि सोवियत सङ्घ कुछ ही दिनों में अमेरिका से आगे निकल जायेगा? इसलिए वाबुश्का का देशभक्त के रूप में यह कर्तव्य है कि वह वैकुअम क्लीनर और धोने की मशीन का इस्तेमाल सीखकर राष्ट्रीय प्रयत्न में योगदान करे। यदि ऐसा नहीं किया गया तो यह विध्वंसक कार्रवाई के समान समझा जायेगा।

वाबुश्का के मन में सरकार की नीतियों के प्रति बहुत आदर भाव था और देशभक्ति की भावना थी। वह और चाहे कुछ हो जाय, विध्वंसक होने का आरोप लगाये जाने को तैयार नहीं थी। नतीजा यह हुआ कि अपनी जिद उसने छोड़ दी

और धीरे-धीरे इन मशीनों का काम सीखने लगी। परन्तु वह इस बात से खुश नहीं थी। यह एक समझौता-मात्र था और हमेशा यह सन्देह बना रहता था कि कहीं यह मशीन फट न जाय, इससे आग न लग जाय, या बिजली छू जाने से प्राणान्त न हो जाय। वह हमेशा इस बात पर जोर देती कि मशीनों के प्लग नादेज्दा पावलोवना, निकोलाई मैक्सिमोविच या बच्चों में से कोई लगाये। जब वह घर में अकेली होती तो इन मशीनों के पास फटकती भी नहीं थी।

एक ओर वाबुशका और कुछ हद तक नादेज्दा पावलोवना अनिच्छा से नयी व्यवस्था को स्वीकार किये हुए थे लेकिन दूसरी ओर लेस्कोव दम्पति की १४ वर्षीय तोल्या और तेरह वर्षीया गाल्या ने बड़े उत्साह से इस नये युग का स्वागत किया। निकोलाई मैक्सिमोविच को शीघ्र ही मालूम हो गया कि उसने जिस जोश के साथ अपने परिवार में नये युग का सूत्रपात किया था उससे इन बच्चों में गजब का उत्साह पैदा हो गया है। इसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। एक दिन तोल्या ने स्कूल से लौटने के बाद बड़े गर्व से बताया कि उसने ड्राइवरी की परीक्षा पास कर ली है। यह विषय उसकी आठवीं कक्षा में पढ़ाया जाता है। उसको स्कूल के अहाते में मोस्कविच गाड़ी चलानी पड़ी। वैसे, जब तक वह अट्ठारह वर्ष का नहीं हो जाता उसे चालक का लायसेन्स नहीं दिया जायेगा लेकिन अगर उसके पास कार होती तो वह किसी वयस्क व्यक्ति को बगल में बिठाकर कार से सैर कर सकता है।

इस भूमिका के बाद उसने मतलब की बात कही। उसने पूछा "हम अपनी मोस्कविच कार क्यों नहीं खरीद लेते ?"

इससे पहले कि निकोलाई मैक्सिमोविच जवाब दे सके, गाल्या बीच में बोल उठी, "क्यों नहीं ? मेरी दोस्त वीरा के पिता के पास एक कार है और एनीउश्का के पिता के पास भी है।"

"जरा कल्पना कीजिए" उसने उत्साह में कहा, "कार हो तो हम लोग रविवार को देहाती इलाके में सैर करने जा सकते हैं, पिकनिक में जा सकते हैं, तैरने जा सकते हैं, कुकुरमुत्ता चुन सकते हैं, यहीं शहर में जाकर सिनेमा देख सकते हैं। सिनेमा यहाँ से बहुत दूर है और यहाँ जो मेट्रो सिनेमाघर बन रहा है उसको पूरा होने में अभी दो साल और लगेंगे।"

नादेज्दा पावलोवना ने अपने बच्चों के पक्ष का जोरदार समर्थन किया। निकोलाई मैक्सिमोविच ने आर्थिक कठिनाइयाँ बतायी। उसकी पत्नी ने तत्काल उत्तर दिया कि "इतना फर्नीचर खरीदने के बजाय उसे पहले कार खरीदनी चाहिए थी।" बात कुछ विचित्र-सी लगेगी लेकिन इस विवाद को घर की सबसे अधिक रूढ़िवादी सदस्या वाबुशका ने हल कर दिया। उसने बताया कि सेविङ्ग बैङ्क में

उसके १८ हजार रूबल जमा है। उसका इरादा था कि जब दोनों बच्चो का विवाह होगा तो वह इस धन को दोनों मे बांट देगी। यदि किसी को कोई आपत्ति नही है तो वह यह धन मोस्कविच गाड़ी खरीदने के लिए देने को तैयार है। गाड़ी की कीमत १६ हजार रूबल है।

निकोलाई मैक्सिमोविच के सामने बचने का कोई रास्ता नही रहा, फिजूलखर्ची के लिए वह बड़बड़ाता रहा लेकिन आखिर उसे हार माननी ही पड़ी। उसके बाद लेस्कोव परिवार ने मोस्कोविच गाड़ी के लिए आर्डर बुक करा दिया है। अभी दो वर्ष तक उनका नम्बर नही आयेगा, लेकिन बच्चो को यह विश्वास है कि उनके बार-बार तङ्ग करने पर निकोलाई मैक्सिमोविच कार जल्दी लाने के लिए कोई न कोई रास्ता निकाल ही लेगा और यही समझकर वे अभी से अगले वर्ष काकेशस की यात्रा करने की योजना बनाने लगे हैं।

—४—

लेस्कोव परिवार की तुलना में अधिकांश अमेरिकनो को मशीनो को अपनाने में अधिक कठिनाई नहीं हुई। लेकिन उनके सामने भी एक समस्या है। वे यह नही चाहते कि मशीनीजगत् उन पर हावी हो जाय। वे अपने को इससे मुक्त रखना चाहते हैं। उनके देशी और विदेशी आलोचकों का कहना है कि एक न एक दिन अमेरिकी जीवन मशीनीजगत् का दास हो जायेगा।

लेकिन इस बात के लक्षण दिखायी देने लगे हैं कि मशीनो के सम्बन्ध मे अमेरिकी जनता की चिन्ता यदि चरम सीमा पार नही कर चुकी है तो उसके करीब तो पहुँच ही चुकी है। यह बात मशीनो के विवेकपूर्ण इस्तेमाल से भिन्न है। इसमें कोई शक नही कि भविष्य में अमेरिकी और अधिक मशीनो का इस्तेमाल करेंगे लेकिन वे इन पर अधिक ध्यान नही देंगे।

प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए या जोन्स परिवार का मुकाबला करने के लिए अब वे इन मशीनों पर अधिक निर्भर नही करेंगे क्योंकि जोन्स परिवार भी स्मिथ परिवार की बराबरी करने के लिए मशीनो के इस्तेमाल का सहारा नही लेगा।

व्यवसाय की सफलता की तरह ही मशीनों के उपयोग से अब लोगों के समय की अधिकाधिक बचत होती जा रही है और वे इस समय का सदुपयोग अपना सामाजिक दर्जा बढ़ाने मे या ख्याति प्राप्त करने में लगा सकते है। मशीनो के उत्पादन और उनके प्रयोग के क्षेत्र को छोड़ अब वे अन्य क्षेत्रों मे उन्नति कर सकते हैं और अपने व्यक्तित्व का सच्चा विकास कर सकते हैं।

अब तक एक प्रकार की मशीनो से जितने समय की बचत होती थी उसका

इस्तेमाल दूसरे तरह की मशीनों पर हो जाता था। और यह दूसरे तरह की मशीनें मुख्यतया मनोरंजन की थीं, जैसे, टेलीविजन, रेडियो, सिनेमा या कार आदि; इनका भी दैनिक जीवन में एकरूपता लाने वाला प्रभाव पड़ा है।

अधिकाधिक लोगों को यह महसूस होने लगा है और यह कहा जा सकता है कि गत कुछ वर्षों में इस एकरूपता के विरुद्ध जिसे भौतिक साधनों के प्रति उनके भारी मोह ने उनके दैनिक जीवन पर लाद दिया है "व्यक्तियों का विद्रोह" सा भड़क उठा है।

इसका एक दिलचस्प सङ्केत एक राष्ट्रीय पत्रिका में प्रकाशित रिपोर्ट से मिलता है। उसमें एक सामाजिक मामलों के अनुसन्धानकर्त्ता की चर्चा है जिसने एक नये दृष्टिकोण के साथ जनसम्पर्क कार्य अपनाने का निश्चय किया। यह नया दृष्टिकोण "समाज में स्थान प्राप्त करने के प्रतीकों में परिवर्तन" के विचार पर आधारित था। अर्थात्, एक समय जिन चीजों से या जिन बातों से व्यक्ति को समाज में प्रतिष्ठा मिलती है और समुदाय में वह प्रभावशाली बनता है, कुछ समय बाद वे साधन इस प्रतिष्ठा और प्रभाव को कायम रखने में असमर्थ हो जाते हैं और अपर्याप्त प्रतीत होते हैं। इसलिए व्यवसायियों को इस बात के लिए निर्देशन दिये जाने की आवश्यकता है कि वे किस प्रकार बदली परिस्थितियों के अनुसार अपनी स्थिति में तालमेल बैठायें।

इसके पीछे वास्तव में यह विचार निहित है कि व्यक्तिगत सम्पत्ति, विशेषकर दिखावटी सम्पत्ति जो कि प्रायः सबको ही उपलब्ध हो सकती है, अब प्रतिष्ठा और ख्याति का आधार नहीं बन सकती, इन साधनों की वह शक्ति लुप्त हो चुकी है। ख्याति और प्रतिष्ठा के लिए यह आवश्यक है कि ऐसी चीज होनी चाहिए जो अन्य से भिन्न हो, अन्य अनेक की तरह न होकर कुछ भिन्न होने से ही यह उद्देश्य पूरा हो सकता है।

जनसम्पर्क का काम करने वाले लोगों की दृष्टि में इस परिवर्तन का मतलब यह प्रतीत होता है कि भविष्य में लोग अच्छे मकानों और सुरुचिपूर्ण साज-सज्जा के आधार पर ख्याति प्राप्त करने की कोशिश करेंगे।

ऐसा प्रतीत होता है कि बड़ी बड़ी शानदार कारों, बेङ्कों में जमा धन-सम्पत्ति के प्रदर्शन या किस्तों में खरीदी गयी सम्पत्ति की प्रतिक्रिया के कारण ही यह नया परिवर्तन आया है। परन्तु इससे यह समझना कि एक प्रकार की भौतिक वस्तुओं से दिलचस्पी हटकर अब दूसरे प्रकार के भौतिक साधनों में केन्द्रित हो गयी है, वास्तव में सही विश्लेषण नहीं कहा जायेगा, यह तो केवल सतही बात होगी।

एडम स्मिथ और जान स्टुअर्ट मिल ने बहुत समय पहले यह बताया था कि

सुबह से शाम तक भौतिक सम्पन्नता के लिए होड से यदि मानवजाति को मुक्ति मिल जाय तो, इसे उसकी अभौतिक दिशा में प्रगति की अभिलाषा का सूचक समझना चाहिए। एक घण्टे विचार करने का समय मिला तो व्यक्ति-स्वतन्त्रता, सम्मान और मानव अधिकारो के सम्बन्ध में सोचने लगा। प्रतिदिन काम के घण्टो में कमी होने के काफी पहले जब घरों में प्रकाश की नयी और पर्याप्त सुविधाएँ उपलब्ध हो गयी तो इससे पूरे परिवार को पढने के लिए और जो पढा उस पर बातचीत करने के लिए अतिरिक्त समय मिलने लगा। इसके बाद बड़े-बड़े सामाजिक और राजनीतिक सुधार हुए।

एडम स्मिथ के युग की तरह ही आज भी हम देख सकते हैं कि मनुष्य अपनी विशिष्ट नैतिक शक्ति से प्रेरित होकर अपने भौतिक साधनों का विस्तार करता रहा है; चेतना के निरन्तर व्यापक होते क्षेत्र को भी वह भौतिक आधार देना चाहता है। हम ऐसे स्त्री-पुरुषों को देखते हैं जो अपने को वर्तमान भौतिक वातावरण के अनुकूल बनाकर ही सन्तोष नही कर लेते जैसा कि अतीत मे होता रहा है, बल्कि उस वातावरण को बदलने की हर सम्भव कोशिश करते है, उन्हे मालूम है कि जिस वातावरण को बदलना है उसमे वास्तव मे निजी और समूह के अनन्त सम्बन्ध, विश्वास, स्वभाव, न्यस्त स्वार्थ, दमन और उपेक्षा आदि शामिल है और ये सभी अभौतिक है।

पूर्व हो या पश्चिम, जो व्यक्ति यात्रा के दौरान, सञ्चार साधनो के द्वारा खेतों में श्रम करते हुए, कारखाने में या घर में तकनीकी ज्ञान की प्रगति के प्रभाव मे आता है, वह ऐसा व्यक्ति है जिसका शारीरिक श्रम तो कम करना पड़ेगा, लेकिन मानसिक श्रम और उसकी जटिलताएँ बढ़ती जायेंगी।

यह कहना बहुत सरल है कि इन समस्याओं का कारण तकनीकी प्रगति है। वास्तव में ये मनुष्य के स्वभाव मे निहित हैं। यह समझना भूल होगी कि केवल मशीनी सभ्यता में रहने वाले लोगो को ही अपनी सामाजिक और आर्थिक जीवन की विषमताओं को झेलना पड़ता है और उनके दिमाग मे हमेशा तनाव बना रहता है। आदिम-युग में जब कि नियमित रूप से कार्य करने की आवश्यकता का कोई ज्ञान नहीं था, लोगो पर उनकी सामाजिक और अलौकिक शक्ति की चेतना का तनाव उतना ही घातक था जितना मशीनी समाज के तनाव का।

जबकि अमेरिका मे समृद्धि तथा ख्याति के भौतिक प्रतीको और साधनों के प्रति लोगो के रुख मे महत्वपूर्ण परिवर्तन आ रहा है, अन्य देशो के लोग भौतिक स्तर पर अमेरिका की बराबरी करने की कोशिश कर रहे है। परन्तु इसमें उनकी सांस्कृतिक क्षति उतनी नहीं हो रही है जितनी की अमेरिका को इस प्रगति के दौर में हुई। विशेषकर यूरोप में और वह भी अधिकांश सम्पन्न और शिक्षित लोगो

में काफी समय तक चलने वाली उपभोक्ता सामग्री के विरुद्ध कुछ विरोधी भावना है।

इसका मूल वास्तव में परम्परावद्ध जीवन में निहित है। अमेरिका में इसका अभाव रहा। इसको किस्तों में मूल्य चुकाने की प्रणाली अधिक विकसित न होने से भी मदद मिली। यही नहीं, उद्योगों में पारिश्रमिक की दर कम होने से घरेलू काम करने के लिए अब भी घरेलू नौकरों का पुराना वर्ग बना हुआ है।

घर में नौकर या नौकरानी रखने की व्यवस्था अमेरिका के बजाय ब्रिटेन में अधिक प्रचलित है। इसका कारण घर का काम उतना नहीं जितना सामाजिक आवश्यकता है। इसका कारण यह भी है कि वहाँ आय का स्तर बहुत निम्न है।

फिर पुराने समाज में धनी वर्ग इसे अपना कर्त्तव्य समझता है कि उन लोगों को काम दे जिन्होंने केवल घरेलू कामों में दक्षता प्राप्त कर रखी है। यह भी एक कारण है कि वे श्रम बचाने वाली मशीन खरीदने के बजाय नौकर अधिक रखना पसन्द करते हैं।

परन्तु इस प्रकार के समाजों में भी मशीनों का प्रसार बढ़ता जा रहा है। खेतों में हल खींचने वाले घोड़े के साथ तस्वीर अवश्य खिचवाई जाती है लेकिन जुताई होती है ट्रैक्टर से जिसने पुरानी दुनियाँ के हलों को उखाड़ फेंका है।

दुनिया के उन पुराने हिस्सों में जिन्हें अल्प विकसित क्षेत्र कहा जाता है, तकनीकी कौशल ने भिन्न रूप धारण किया है। पश्चिम में तकनीकी प्रगति से खुशहाली बढ़ी और जनता में नया उत्साह भी पैदा हुआ लेकिन इसके विपरीत पूर्व के देशों में पुराने तौर तरीकों को त्यागकर उनके स्थान पर नये तरीकों को अपनाने में दिक्कत महसूस की जा रही है, इससे वहाँ सामाजिक और राजनीतिक उलझनें पैदा हो रही हैं।

पूर्वी देशों के लोगों को आरामदेह शानदार गाड़ियों से लेकर बिजली के सामान सभी उपलब्ध हैं, लेकिन इनका उपभोग केवल उच्चवर्ग और सट्टेबाज तथा मुनाफाखोर वर्ग ही कर पाता है जिसकी रईसी भी नकलमात्र होती है। उनकी इस सम्पन्नता से वर्ग-भेद बढ़ता है और असन्तोष तथा ईर्ष्या पैदा होती है।

आज जो सुविधाएँ उपलब्ध हैं, वे पुराने जमाने के सजे हुए हाथी की तरह नहीं हैं जो सबको सुलभ न हों। अधिकतर लोगों को ऐसा लगता है कि वे इन आरामदेह चीजों को खरीद सकते हैं। ऐसे देश बहुत कम हैं जहाँ गरीब जनता को यह सुलभ नहीं हो सकती और उनकी इस निराशा के लिए साम्राज्यवादियों पर आरोप लगाया जा सकता है।

पश्चिम में औद्योगिक क्रान्ति के आरम्भ में सारी शक्ति कुछ लोगों के हाथों में

केन्द्रित हो गयी, उनके और उनके पड़ोसियों के बीच सामाजिक भेद बढ़ता गया और व्यापार की पुरानी प्रथा खत्म हो गयी। लेकिन इसके बाद से पश्चिम में समानता की दिशा में प्रगति हुई है और पूर्वी देश इस चुनौती का सामना करने की अभी तैयारी ही कर रहे हैं।

तकनीकी प्रगति ने पूर्व पर जो समस्याएँ लाद दी हैं, उनका सबसे डरावना स्वरूप अफ्रीका में दिखाई देता है। पश्चिमी आर्थिक जीवन के प्रभाव से और दुनियां की जानकारी सहज ही सुलभ होने से पुरानी कबायली नैतिक व्यवस्था कमजोर पड़ गई है और कहीं-कहीं तो एकदम खत्म हो चुकी है। नये तरीकों और नये विचारों ने उनको कबायली प्रधानों के शासन से मुक्त होने के साधन भी दिये हैं और मुक्त होने की इच्छा भी पैदा की है।

ऐसे परिवर्तन के काल में किसी ने सही कदम उठाया या गलत काम किया, कुछ नहीं कहा जा सकता, इन सवालों का कोई निश्चित उत्तर सम्भव नहीं।

न्यूयार्क के एक प्रमुख पादरी ने अपनी प्रार्थना-सभा में चेतावनी दी कि "हमारी पीढ़ी सामूहिक सञ्चार माध्यमों के युग में रह रही है, यह विचारों की विकृतियों का युग है और इससे हमारे व्यक्तित्व को खतरा पैदा हो गया है।" बिना व्यक्तित्व के समृद्धि की बात व्यर्थ है। कम से कम वह इस बात से सजग हो गया है कि कई रूपों में हमला किया जा रहा है और इस मशीनी भौतिकवाद में वह अपने व्यक्तित्व से वञ्चित कर दिया जायेगा, उसकी महत्ता समाप्त हो जायगी।

इतिहास हमें बताता है कि अन्त में व्यक्तित्व अवश्य विजयी होगा, शर्त केवल यह है कि उसे यह मालूम हो कि सङ्घर्ष चल रहा है और इस सङ्घर्ष में उसे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करनी है।

—५—

कुछ स्थानों में सङ्घर्ष चलता रहेगा, वह सङ्घर्ष विलास के साधनों पर हावी होने के लिए नहीं है, बल्कि जीवित रहने के लिए आवश्यक साधन जुटाने का सङ्घर्ष है। उदाहरण के लिए भारत को लीजिये, २५ जुलाई १९५८ को प्रधानमन्त्री अपने दोनों नातियों के साथ नयी दिल्ली के समीप के गाँव में एक नया प्रयोग देखने गये, प्रयोग था बैलों की जोड़ी की सहायता से बिजली पैदा करने का। बैलों की जोड़ी की सहायता से इतनी बिजली पैदा की जा रही थी जिससे दिन में लकड़ी का कारखाना चलता था और रात को पूरे गाँव में प्रकाश की व्यवस्था की जाती थी।

प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू उस पीढ़ी के हैं जिसका बचपन घुड़सवारी

और बग्घियों के युग के अन्तिम चरण में बीता, परिपक्वता मोटर गाड़ियों के युग में आयी और हवाई जहाजों ने दुनिया के विस्तार को सङ्कुचित कर दिया, और अब वह पीढ़ी देख रही है कि मनुष्य चाँद तक राकेट भेजने की तैयारी कर रहा है।

उनके नाती जो अभी किशोरावस्था में हैं, वह दिन देखेंगे जबकि मनुष्य अन्तरिक्ष की यात्रा कर लेगा; आगे और क्या-क्या आश्चर्यजनक बातें वे देखेंगे यह हम नहीं कह सकते। लेकिन इतनी बात हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि उनके जीवनकाल में, जैसा कि उनके नाना के जीवनकाल में भी रहा है, उनके देश में न तो जेट प्रणोदन (जेट प्रापलशन) की शक्ति का आम प्रयोग हो सकेगा और न परमाणु-शक्ति का; उनके देश में जो बिजली इस्तेमाल होती रहेगी वह बैलों द्वारा उत्पादित बिजली ही होगी।

एक ऐसे युग में जब कि अन्तरिक्ष में स्पूतनिक भेजे जा रहे हैं और परमाणु-शक्ति चालित पनडुब्बियाँ ध्रुव-प्रदेशों का पता लगा रही हैं, भारत के सम्बन्ध में ऐसी बात कहने का मतलब उसका अपमान करना नहीं है। भारत ने जो जनसंख्या की दृष्टि से दुनिया में दूसरे नम्बर का देश है, अनेक वैज्ञानिक पैदा किये हैं जिनमें नोबल-पुरस्कार विजेता भी शामिल हैं। एक परमाणु-भट्टी वहाँ चालू हो चुकी है और उसने परमाणु शक्ति वाले राष्ट्रों के समूहों से बाहर रहकर परमाणु शक्ति के जन कल्याणकारी इस्तेमाल की बहुत महत्वाकांक्षी योजना बनायी है।

लेकिन दुनियाँ के अन्य विकसित देशों की तरह भारत की आज की और कल की सबसे बड़ी समस्या यह नहीं है कि 'गोबर युग' से, जैसा कि नेहरू ने कहा है, किस प्रकार परमाणु-युग में छलाँग मारी जाय (भारत में गोबर के उपले को ईंधन के काम में लाया जाता है)। वास्तव में मुख्य समस्या यह है कि देश की ८० प्रतिशत जनता को जो गोबर के युग में रह रही है, वह सुविधाएँ कैसे उपलब्ध करायी जायें जो पश्चिमी जगत् के लिए सामान्य-सी बात हो गयी है,जैसे, बिजली, पानी और पेटभर भोजन।

पाकिस्तान, बर्मा, थाईदेश, इन्डोनेशिया और "बाँस के गुरगुट" के पीछे उत्तरी वियतनाम तथा कम्युनिस्ट चीन में तकनीकी प्रगति ने अनेक शहरों का रूप बदल दिया है, लेकिन गाँवों में किसान अब भी धान के खेतों में घुटने-घुटने पानी में काम करता है या सदियों पहले अपने पूर्वजों की तरह ही उन्हीं तरीकों से गेहूँ की फसल के लिए खेत तैयार करता है। इस प्रकार एशिया में तकनीकी क्रान्ति को वास्तव में गाँवों की क्रान्ति बनना होगा अन्यथा पिछड़े हुए गाँवों और आधुनिक शहरों के बीच की खाईं जो कि जापान जैसे उद्योग-प्रधान देश में भी कायम है—

अधिक चौड़ी होती जायेगी, इससे सामाजिक सन्तुलन बिगड़ता जायेगा और राजनीतिक उथल-पुथल होगी।

यहाँ तक कि चीनी कम्युनिस्ट भी जो अपनी तीव्र औद्योगिक प्रगति की डींग मारा करते हैं और इस्पात तथा मशीनों के उत्पादन के आँकड़ों की प्रभावशाली सूचियाँ पेश करते हैं, इस बात को समझने लगे हैं। अब वे विशाल और अधिक लागत के बड़े-बड़े जटिल उद्योगों के बजाय लघु और औसत दर्जे के अधिकाधिक उद्योगों की स्थापना पर निरन्तर और जोर देने लगे हैं, यही नहीं कृषि-क्षेत्र में सोवियत संघ के नमूने के आधार पर मशीनीकरण की भारी लागत की योजनाओं के बदले अब वे उत्पादन बढ़ाने के लिए सौम्यता से लेकिन सामान्य ढङ्ग के सुधार लागू करने की कोशिश कर रहे हैं।

परन्तु लोकतन्त्रीय भारत में इस दिशा में बहुत आशाजनक प्रयत्न किये जा रहे हैं और बैलों की सहायता से चलने वाला जेनेरेटर (यद्यपि यह अमेरिकी इञ्जीनियरों और डिजाइनरों का योगदान है) इस बात का सबूत है कि भारत में तकनीकी क्रान्ति का शुरुआत हो चुका है।

बैलों की सहायता से बिजली पैदा करने का विचार सबसे पहले अमेरिकी प्रबन्ध परामर्शदाता ले स्टीवेन्स के दिमाग में आया। ले स्टीवेन्स ने करीब पाँच साल पूर्व लघु उद्योगों के सम्बन्ध में एक अन्तर्राष्ट्रीय अध्ययन दल के साथ भारत की यात्रा की। दुनियाँ में कुल जितने मवेशी हैं, उनका एक चौथाई भारत में हैं। श्री स्टीवेन्स ने देखा कि ग्राम्य-जीवन में, जहाँ भारत की ८० प्रतिशत जनता रहती है, बैलों की जोड़ी के बिना कोई काम नहीं चल सकता। तभी उनको बिजली के लिए बैलों के प्रयोग की बात सूझी।

अपने बैलों की मदद से किसान खेत जोतता है और उपजाऊ लेकिन अधिक गर्मी पड़ने से खेतों की तप्त और सूखी जमीन को सींचने के लिए वह इन्हीं बैलों की मदद से रहट चलाकर कुआँ से पानी खींचता है।

क्या आधुनिक तकनीकी ज्ञान का इस्तेमाल कर इस रहट की क्षमता को और नहीं बढ़ाया जा सकता जिससे निश्चित समय में इस समय की अपेक्षा अधिक पानी प्राप्त किया जा सके? श्री स्टीवेन्स सोचने लगे, क्या बैलों की इस टेढ़ी-मेढ़ी और सुस्त चाल को इतना तेज नहीं किया जा सकता कि बिजली पैदा की जा सके?

फोर्ड संस्थान की सहायता से और उदारतापूर्वक स्वयं अपना समय और अपने साधन देकर श्री स्टीवेन्स ने प्रमुख अमेरिकी कम्पनियों से इन समस्याओं को हल करने के लिए मदद माँगी। टेक्सास गैस ट्रान्समिशन कम्पनी ने जञ्जीरों और दाँतेदार पहियों की मदद से एक ऐसा पम्प बनाया जिससे एक मिनट में दो चार

चक्कर लगाने वाले बैलों की जोड़ी पहले मिनट में बीस चक्कर लगा सकती है और फिर यह गति बढ़कर डेढ़-सौ चक्कर प्रतिमिनट तक पहुँचती है जिससे तीन-सौ गैलन पानी प्रतिमिनट खींचा जा सकता है। यह मात्रा बैलों की उसी जोड़ी द्वारा रहट से इतने ही समय में खींचे जाने वाले पानी की मात्रा छह गुना अधिक है।

फिर न्यूयार्क की जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी ने श्री स्टीवेन्स को एक ऐसा जेनेरेटर तैयार करने में मदद दी जिससे बैलों की जोड़ी के घूमने से बिजली पैदा की जा सके। पानी निकालने के लिए जञ्जीरों और दाँतेदार पहियों से चलने वाले पम्प में बेल्ट फिट कर देने से जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी के इञ्जीनियरों ने चक्करों की गति बढ़ाकर १३२० चक्कर प्रतिमिनट तक पहुँचा दी और एक जेनेरेटर की औसत गति इतनी ही होती है।

बैलों की शक्ति से चलने वाले इस जेनेरेटर की बिजली से दिन में गाँव में ऐसा उपयोग चलाया जा सकता है जिसमें बीस से पचास व्यक्ति काम करते हों। इससे भारत की बेरोजगारी की सबसे बड़ी समस्या को उसके मूल में अर्थात् गाँव में ही हल करने की मदद मिल सकती है। रात में इससे १५० मकानों के गाँव में, जिसके हर घर में एक २५ वाट का बल्ब लगा हो और सड़क पर रोशनी करने के लिए १०० वाट के पन्द्रह बल्ब लगे हों, रोशनी की व्यवस्था की जा सकती है।

भारत के गाँवों में जब से रहट का आविष्कार हुआ तब से आज पहली बार एक भारतीय गाँव में यह महत्वपूर्ण तकनीकी परिवर्तन आया। इससे भावी सम्भावनाओं का अनुमान लगाया जा सकता है। फरनपुर गाँव में, जहाँ श्री नेहरू अपने नातियों के साथ गये, जो माडल लगाये गये हैं वे अमेरिका में बने हुए हैं। वे उन कम्पनियों की भेंट है जिन्होंने इन्हें बनाया। लेकिन इन माडलों का एक-एक पुर्जा ऐसा है जिसे आसानी से भारत में बनाया जा सकता है और परीक्षण पूरा हो जाने पर बड़े पैमाने पर ऐसे माडल तैयार करने के लिए शायद इनको वहीं बनाया जाने लगेगा।

कम्युनिस्ट चीन भी यह डींग मारता है कि वह भी भारत की ही तरह पशुओं की सहायता से बिजली पैदा करने लगा है। पीकिङ्ग के समाचार-पत्रों का दावा है कि आन्तरिक मङ्गोलिया में तकनीशियनों ने एक ऐसा जेनेरेटर तैयार किया है जिसे गधों की सहायता से चलाया जा सकता है। लेकिन पीकिङ्ग, भारत के ठीक विपरीत, विदेशी अतिथियों को चीन में प्रवेश कर चीन भ्रमण की अनुमति देने में बहुत सावधानी बरतता है इसलिए उसके इस दावे की सच्चाई का पता लगाने या जेनेरेटर की क्षमता की जाँच कर सकने की कोई सम्भावना ही नहीं है।

पीकिङ्ग ने हाल ही में एक और आविष्कार करने का दावा किया है। यह एक मशीन है जिससे खेतों में धान की रोपाई की जा सकती है। चीन और जापान में वसन्त के दिनों में क्यारियों में धान बो दिया जाता है और ग्रीष्म ऋतु में धान के पौधों को वहाँ से उखाड़ कर एक खास रीति से खेतों में रोप दिया जाता है। हर पौधा एक-दूसरे से कुछ फासले पर रोपा जाता है। इसमें बहुत मेहनत पड़ती है, साथ ही यह भी जरूरी है कि इस काम को जल्दी से जल्दी खत्म किया जाय जिससे पौधों को बढ़ने का पूरा मौका मिल सके। हाल ही पीकिङ्ग ने एक चित्र प्रचारित किया जिसमें एक व्यक्ति लकड़ी की एक मशीन चला रहा है जिससे एक साथ छह कतारों में धान के पौधे रोपे जा सकते हैं। मशीन में कोई विशेषता नहीं दिखायी देती। लेकिन यदि उससे कुशलतापूर्वक काम लिया जा सकता है तो वह निकट भविष्य में एशिया के किसानों को उनके सबसे अधिक परिश्रमसाध्य काम से बचा लेगी।

जापान में, जो औद्योगिक दृष्टि से एशिया के देशों में सबसे आगे है और जिसकी जनसंख्या का आधे से अधिक भाग नगरवासी है, किसानों ने कृषि के सुधरे हुए औजारों और नये तकनीकी ज्ञान का फायदा उठाना आरम्भ कर दिया है। अनेक किसान, विशेषकर समृद्ध और घने बसे दक्षिण-पश्चिमी होन्शू के किसान छोटे ट्रैक्टरों का इस्तेमाल करने हैं। सुधरे हुए बीजों, कीटाणुनाशक दवाइयों और रासायनिक खाद से पैदावार अच्छी होने लगी है और इस साल भी लगातार पिछले तीन सालों की तरह चावल की बहुत बढ़िया फसल होने का अनुमान है।

अमेरिका के मुकाबले एशिया की तकनीकी क्रान्ति बहुत सामान्य-सी है, परन्तु इससे जो सम्भावनाएँ पैदा हो गयी हैं, जैसे पहले भूख से छुटकारा, फिर अरुचिकर कामों में परिश्रम से मुक्ति और फिर जीवन का आनन्द ले सकने के बढ़ते अवसर आदि। इससे स्पष्ट है कि दुनियाँ के इस सबसे बड़े महाद्वीप में रहने वाले मानवजाति के ३/५ हिस्से पर जबरदस्त प्रभाव पड़ेगा।

—६—

एशिया की तरह मध्यपूर्व भी भौतिक अभाव से मुक्ति पाने की दिशा में तेजी से आगे बढ़ रहा है। १९५८ में मिस्र में काहिरा के दक्षिण में नील नदी के पास हैलवान के लोहे तथा इस्पात कारखाने की पहली धमन भट्ठी चालू हुई और लोहा गलाकर इस्पात बनाना शुरू किया गया। यह अरब जगत् में भारी उद्योगों के विकास की दिशा में पहला महत्वपूर्ण कदम था।

लेकिन इन धमनभट्ठियों से कुछ ही दूर मिस्री किसान हाथ से जमीन खोद

रहे हैं, उन्हीं परम्परागत कृषि-औजारों का इस्तेमाल हो रहा है जो फराओह के जमाने में नील नदी की घाटी में इस्तेमाल किये जाते थे।

उद्योग के नाम पर मध्य पूर्व के अधिकांश हिस्सों में तेल उद्योग ही एकमात्र उद्योग है। वैषम्य यहाँ भी है और एकदम स्पष्ट। अदन के बाहर बिटिश पेट्रोलियम कम्पनी का नया विशाल तेल-शोधक कारखाना खड़ा है और उसके लिए मजदूरों की भर्ती अदन के कबायलियों में से की जाती है जो नया रोजगार अपनाने से पहले पहाड़ों पर जङ्गली हालत में रहते आये हैं, लम्बे-लम्बे बाल रखे हुए और गोदने से भरी देह लेकर एक दूसरे कबीले पर चढ़ाई करते रहे हैं या झगड़ते रहे हैं।

अरब प्रायद्वीप में एक सिरे से दूसरे सिरे तक उत्तर पूर्व की ओर अरेबियन-अमेरिकन आयल कम्पनी या "अरेम्को" का कारोबार है और उसके साथ-साथ वहाँ की जनता के रहन-सहन का सदियों पुराना ढङ्ग अक्षुण्ण बना हुआ है। उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया।

मध्यपूर्व में तेल मिलने और विशाल पैमाने पर उसका उत्पादन किये जाने से इस क्षेत्र पर धारासार धन बरसा है, जो इससे पहले बेहद गरीब, घोर अपरिवर्तनशील था। यह कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा गया कि ऐसा हो सकता है। सम्पत्ति आयी लेकिन वरदान के साथ कुछ समस्याएँ भी साथ लायी।

ऐसे क्षेत्र जहाँ तेल की आय से जबरदस्त परिवर्तन हो रहे हैं या होने की सम्भावनाएँ हैं, केवल छह हैं:—कुवैत, सऊदी अरब, ईराक, बेहरिन, कतार, और ईरान।

कुछ सरकारें या शासक अचानक और इतनी तेजी से जुड़ी अपार सम्पत्ति को बहुत बुद्धिमानी से खर्च कर रहे हैं। कुछ क्षेत्रों में इस सम्पत्ति को बहुत स्वार्थी ढङ्ग से और अदूरदर्शिता के साथ खर्च किया गया। लेकिन इस सम्बन्ध में कोई अपवाद नहीं है कि समृद्धि की इस प्रक्रिया के साथ-साथ सामाजिक परिवर्तन भी आये हैं जिनके परिणामों को अभी नहीं आँका गया।

उदाहरण के लिए ईराक को लीजिये, जहाँ पिछली दशाब्दियों में तेल से होने वाली आय को मध्यपूर्व के अन्य इलाकों के मुकाबले अधिक बुद्धिमानी से और न्यायसङ्गत तरीके से खर्च किया। १९५० के बाद से देश को तेल से होने वाली आय का ७० प्रतिशत विकास-बोर्ड को दिया गया जो प्रायः स्वशासित सङ्गठन है और जिसे देश के आर्थिक विकास का कार्यक्रम लागू करने के लिए बनाया गया है।

इस बोर्ड की सबसे बड़ी और विशेष महत्वपूर्ण सफलता है मेसोपोटामिया के मैदान की दो बड़ी नदियों, टाइग्रिस और यूफ्रेटिस की बाढ़ पर नियन्त्रण। इन दोनों नदियों में सदियों तक बसन्त में और ग्रीष्म के आरम्भ में भयङ्कर बाढ़ आती रही

और निचले इसके इलाकों में हर साल विनाश का ताण्डव होता रहा। लेकिन १९५६ के बाद यह खतरा दूर कर दिया गया और इसका श्रेय विकास-बोर्ड को ही है। अब टाइग्रिस और यूफ्रेटस की बाढ़ का पानी बाड़ी थारथार और हब्बानियाँ की झीलों की ओर मोड़ दिया जाता है। इस योजना पर सात करोड़ डालर खर्च हुआ।

ईराक के विकास-बोर्ड ने और क्या किया? बहुत काम किया है। ईराक में नयी सड़कें, नये पुल, नयी आवास योजनाएँ, नये स्कूल, नये अस्पताल, नये बिजलीघर और नये कारखानों का निर्माण होने लगा है। लेकिन वहाँ जो सामाजिक और राजनैतिक उथल-पुथल मची हुई है और जिसने १९५८ की जुलाई में विस्फोटक रूप धारण कर लिया, ये तकनीकी सफलताएं उसका मुकाबला नहीं कर सकी हैं। ये तकनीकी उपलब्धियाँ अपर्याप्त सिद्ध हुई हैं।

पुराने शासन ने विकास-बोर्ड कायम कर बुद्धिमानी का कार्य अवश्य किया लेकिन वह मानवीय और भौतिक साधनों के विकास के महत्व को नहीं समझ सका।

परन्तु हाल की राजनीतिक उथल पुथल के बाद भी आर्थिक क्षेत्र में ईराक का भविष्य मध्यपूर्व के अन्य अरब राज्यों के मुकाबले अधिक उज्ज्वल है। उसके पास तेल से प्राप्त धन है। उसके पास जमीन है, पानी है और जनसंख्या की भी कोई समस्या नहीं है। मिस्र जैसे अभावग्रस्त देश की आर्थिक समस्याओं को हल करना कितना कठिन है, यह इससे पता चल जायेगा। उसके पास पर्याप्त धन नहीं है और न काफी जमीन ही है। उसके पास पानी की भी कमी है। इसकी जन-संख्या पहले से ही बहुत घनी है और निरन्तर बढ़ती जा रही है। जनसंख्या की वृद्धि की रफ्तार बहुत चिन्ताजनक है। वहाँ हर घण्टे में पचास से अधिक बच्चे पैदा होते हैं।

नील की घाटी में भूमि और पानी इतना सीमित है कि नासर की सरकार यह समझती है कि देश का तेजी से औद्योगीकरण करके ही उसकी लाखों जनता को रोजगार दिया जा सकता है और राष्ट्रीय सम्पत्ति बढ़ायी जा सकती है। नील के डेल्टा में मेहल्ला अलकुबरा और कफ़ंअल दयात में कई वर्षों से बड़ी-बड़ी सूती मिलें चल रही हैं, हेलवान के लोहे तथा इस्पात के नये कारखाने में हाल ही उत्पादन शुरू हो गया है और आस्वान में १९६० में रासायनिक खाद का एक नया कारखाना बनकर तैयार हो जायेगा।

मिस्र यद्यपि अभावग्रस्त रहा है फिर भी कुछ मामलों में अन्य अरबदेशों के मुकाबले अधिक विकसित है। परन्तु उसे बड़ी कठिनाइयों का सामना करना है। उसके पास कुशल कर्मचारियों, कारीगरों और मजदूरों का अभाव है जो नये आधुनिक तकनीकी और औद्योगिक संस्थानों को चला सकें, नयी मशीनों आदि से

काम ले सकें। इसके साथ ही पूँजी प्राप्त होना भी बहुत कठिन है। जलवायु ऐसी है कि दिन में अधिक मेहनत नहीं की जा सकती। सञ्चार-साधनों में भी सुधार करने की बहुत आवश्यकता है। यही नहीं, उसके पास ईंधन और बिजली के साधनों की भी कमी है।

इन कारणों से मध्यपूर्व में अनेक इस बात पर आशा लगाये हुए हैं कि कोई ऐसा क्रान्तिकारी आविष्कार होगा या तकनीकी विकास होगा जिसमें अरब जगत् के लाखों इन्सानों के लिए, जिन्होंने अभी तक घोर अभाव और गरीबी की जिन्दगी बितायी है, रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठाने की सम्भावना पैदा हो जायेगी और उनका प्रगति द्वार खुल जायेगा।

उदाहरण के लिए, शायद परमाणुशक्ति के द्वारा या सूर्य से प्राप्त शक्ति के द्वारा समुद्र के खारे पानी का मीठे पानी में बदलने की कोई सस्ती विधि निकल आये।

इजरायल में सूर्य से प्राप्त शक्ति (सौर-शक्ति) का इस्तेमाल करने के लिए अनुसन्धान किया गया और उन्होंने ऐसी विधि खोज निकाली है जिससे सूरज की रोशनी के ६० प्रतिशत का इस्तेमाल किया जा सकता है। लेकिन इस शक्ति का सञ्चय अभी तक भौतिक साधनों के द्वारा ही किया जाता है, जैसे, बड़े-बड़े तालाबों का पानी गरम करके, परन्तु यह ताप अधिक समय तक स्थिर नहीं रखा जा सकता।

यदि इस ताप के सञ्चय की समस्या हल हो जाय तो इसका कमरों को ठण्डा या गरम रखने में बहुत अच्छी तरह इस्तेमाल किया जा सकता है। इस बीच अनेक देशों के अनुसन्धानकर्ता सूर्य की शक्ति से खारे पानी को मीठे पानी में बदलने, अन्तरिक्ष में इस्तेमाल की जाने वाली मशीनों के लिए बिजली प्राप्त करने और खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाने की विधियाँ खोजने में लगे हुए हैं।

जो लोग इस प्रकार के अनुसन्धान कार्य में लगे हुए हैं वे प्रयोगों के दौरान दूसरों के दखल दिये जाने से खुश नहीं हैं। उनमें से एक कैलीफोर्निया विश्व-विद्यालय के डा० डेनियल आई० आर्नन का कहना है "कि हमारी बुनियादी मान्यता यह है कि सबसे पहले विषय की जानकारी प्राप्त होती है। परमाणु शक्ति की खोज सम्भव हुई क्योंकि पहले वैज्ञानिकों ने बम बनाने या इस्तेमाल के लिए परमाणु शक्ति पैदा करने के बजाय परमाणु को समझने की कोशिश की। जङ्गली घास-फूस आदि को नष्ट करने की विधि का पता तब लगा जब कि पौधे का विकास किस प्रकार हो, इस विषय पर अनुसन्धान किया गया।"

लेकिन अधिकांश विशुद्ध अनुसन्धानकर्ता इस बात से पूर्ण अवगत हैं कि विज्ञान को काम में लाने वाले उनके साथी क्या आशा लगाये हुए हैं। पामर

पुटनम ने अपनी पुस्तक "इनर्जी इन दि फ्यूचर" (वान नोस्ट्रेण्ड) में इस बात की ओर सङ्केत किया है —

"यदि यह जमीन पर आने वाली सूरज की शक्ति के दस प्रतिशत को भी मनुष्य के इस्तेमाल में आनेवाली शक्ति में बदल सकें, यदि हमें इसमें दस प्रतिशत सफलता भी मिल गयी जो असम्भव नहीं है तो फिर हमें यह मालूम होता है कि हम १७ अरब लोगों के लिए रोशनी, ताप, बिजली और पौष्टिक तत्वों की व्यवस्था कर सकते हैं।"

—५—

भविष्य में खाद्यान्न की आवश्यकता की पूर्ति के लिए केवल अल्पविकसित देशों को ही नये साधनों की आवश्यकता नहीं होगी। अमेरिका में आज किसान अपनी पैदावार से अपनी और बीस अन्य लोगों की आवश्यकता पूरी करता है जब कि १६०४ में वह केवल अपना और सात अन्य लोगों का ही भरण-पोषण कर सकता था। जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती जायेगी किसान को और अधिक उत्पादन करना पड़ेगा।

सौर-शक्ति के इस्तेमाल की दिशा में प्रगति होने से उसे इसमें सहायता मिल सकती है। उसे आशा है कि एक विशेषज्ञ के अनुसार जीव विज्ञान के क्षेत्र में नये अन्वेषणों से सम्भवतः प्रकाश-संश्लेषण (फोटोसिंथेसिस) का रहस्य मालूम हो जाने से खाद्य उत्पादन के तरीकों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाया जा सकेगा और फिर जनसंख्या में वृद्धि की कोई समस्या नहीं रह जायेगी।

सिंचाई की पर्याप्त व्यवस्था हो जाने से और यदि समुद्र के खारे जल को किसी सस्ती विधि से मीठे जल में बदला जा सका तो उससे सिंचाई कर खाद्यान्न का उत्पादन बढ़ाया जा सकेगा।

कृषि के अनुकूल वातावरण की सृष्टि कर और सम्भव हुआ तो (यद्यपि यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता) मौसम पर नियन्त्रण कायम कर कृषि उत्पादन में वृद्धि हो सकेगी।

अन्त में और शायद सबसे अधिक आकर्षक सम्भावना यह है कि परमाणु विज्ञान के द्वारा कृषि में सुधार किया जा सकेगा। वैसे अभी इस दिशा में कुछ विशेष प्रगति नहीं की जा सकी है परन्तु परमाणुशक्ति को किसानों के इस्तेमाल के लायक बनाने के लिए प्रयोग जारी हैं। भविष्य में क्या होगा, यह नहीं कहा जा सकता।

इस बीच किसान वर्ग गत पचास वर्ष की उपलब्धियों के आधार पर ही आगे बढ़ रहा है। यह उपलब्धियाँ इस प्रकार है :—

उत्पत्ति विज्ञान के ज्ञान में वृद्धि-अङ्कुर-फसल (विशेषकर अङ्कुर मक्का) तथा दोगली नस्ल के मवेशियों का प्रजनन और गुण एवम् मात्रा तथा संख्या दोनों ही में वृद्धि।

ऐसी नयी फसलों का विकास जो पहले अमेरीका में नहीं बोयी जाती थी जैसे, सोयाबीन। आज दो करोड़ दस लाख एकड़ भूमि पर पाले जाने वाले मवेशियों और मुर्गियों आदि के लिए पौष्टिक तथा सन्तुलित आहार के लिए आवश्यक प्रोटीन का ५० प्रतिशत इसी सोयाबीन से प्राप्त हो रहा है। इन मवेशियों तथा मुर्गियों आदि की कीमत आज अरबों डालर होगी। नयी फसलों के इस्तेमाल के साथ ही यह बात भी कम महत्वपूर्ण नहीं कि परम्परागत फसलों का नये रूप में प्रयोग किया जाने लगा है।

नत्रजन (नाइट्रोजन) से उर्वरक अथवा रासायनिक खाद तैयार की गई है, जिससे कम खर्च में ही खेतों की उत्पादक क्षमता में असाधारण वृद्धि सम्भव हो सकी है।

पौधों में बीमारियों की प्रतिरोध शक्ति बढ़ायी गयी, पौधों को नुकसान पहुँचाने वाले जानवरों के विनाश की विधि खोजी गयी और मवेशियों के स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिए नए उपाय लागू किये गये।

मशीनीकरण से भी कम मदद नहीं मिली। मशीनीकरण ने मुर्गीपालन के क्षेत्र में एक प्रकार से क्रान्ति ला दी है। यही विधि अब माँस के लिए पाले जाने वाले अन्य जानवरों और डेरी के काम में भी लायी जा रही है।

नये क्षेत्रों में सिंचाई की व्यवस्था की गयी।

भूमि-क्षरण को रोकने के लिए नये उन्नत उपायों को काम में लाया गया।

उत्पादन के तरीकों और उत्पादित माल के विक्रय की विधियों में सुधार किये जाने से उपभोक्ता को विशेष सुविधा हो गयी है। उपभोक्ता को बन्द डिब्बे में पका हुआ, जमाया हुआ या अन्य तरह का खाद्यपदार्थ सरलता से उपलब्ध हो जाता है। इससे उपभोक्ता के समय की बचत हो जाती है।

भविष्य में कृषि पर सम्भवतः तीन बातों का विशेष प्रभाव पड़ेगा। ये तीन बातें ऐसी है जिनसे कृषि विकास को वर्तमान स्थिति तक पहुँचने में विशेष योगदान मिला है, लेकिन जिनका महत्व अभी तक पूरी तरह आँका नहीं जा सका।

इनमें कृषि-कालेज है जिनका एक व्यापक शैक्षणिक उद्देश्य है, अनुसन्धान कार्य की जिनकी अपनी प्रणाली है, परीक्षण केन्द्र है, प्रसार-सेवाएँ हैं, काउन्टी एजेन्ट है और घर जा कर प्रदर्शन कर जनता में नयी विधि का प्रचार करने

लाने कार्य कर्ता है। फिर निजी उद्योग हैं, जिनकी अनुसन्धान, विकास और क्रय-विक्रय की अपनी महत्वाकांक्षी परियोजनाएँ हैं। और फिर है राष्ट्रीय सरकार जिसने फार्मों के मामले में कुछ हद तक प्रबन्ध-व्यवस्था को अपने हाथ में ले लिया है और फार्मों को समर्थन देना शुरू कर दिया है। यह ऐसी बात है जिसका हमसे पहले की पीढ़ियों को पता भी नहीं था। राष्ट्रीय सरकार इस क्षेत्र में अपना व्यापक अनुसन्धान कार्य-क्रम भी लागू किये हुए है।

जैसे-जैसे सौर-शक्ति और भूमि के और अच्छे इस्तेमाल की विधियों का पता लगता जायेगा, समुद्र भी अनुसन्धान का क्षेत्र बन जायेगा। समुद्र से केवल खाद्य पदार्थ ही नहीं बल्कि खनिज पदार्थ भी प्राप्त हो सकते हैं।

भूमि से खनिजों को निकाल कर इस्तेमाल करना ठीक वैसा ही है, जैसे अपनी बचत की पूंजी से मौज उड़ाना। लेकिन समुद्र से खनिज निकालने का मतलब है अपनी आमदनी से गुजारा चलाना।

इसी कारण अनेक वैज्ञानिक इस बात की कोशिश में लगे हुए हैं कि मानव जाति की खनिजों की निरन्तर बढ़ती आवश्यकता समुद्र से पूरी की जाय।

अभी तक समुद्र से केवल ब्रोमाइन, आयडीन, मैगनेशियम, पोटाश और नमक ही बड़ी मात्रा में निकाला जाता है। परन्तु ३२ करोड़ घन मील में फैले समुद्र वास्तव में अनेक दुर्लभ खनिजों के अगाध भण्डार हैं। जैसे ही इनको निकालने के लिए उपयुक्त तकनीकी विधि खोज निकाली जायेगी और इनका निकालना आर्थिक दृष्टि से लाभकर बन सकेगा, वैसे ही, ये पदार्थ सारी मानव-जाति के लिए उपलब्ध होने लगेंगे।

इस विशाल भण्डार की एक सबसे बड़ी समस्या इसकी तरलता है जिसके कारण सभी खनिज पदार्थ इसमें घुले हुए और बिखरे हुए हैं। समुद्र खान की तरह नहीं जिसमें बड़ी मात्रा में खनिज एक ही स्थान पर मिल जाता है। लेकिन इस तरलता का एक लाभ भी है। काफी बड़ी मात्रा में पानी का इस्तेमाल करना अधिक कठिन नहीं और सबसे महत्व की बात तो यह है कि समुद्र से जितना खनिज निकाला जायेगा उसमें हर साल उसकी पूर्ति भी होती रहेगी, खान की तरह वह कभी खाली नहीं होगा। ये सुविधाएँ खानों में उपलब्ध नहीं हो सकतीं।

समुद्र में गिरने वाली हर धारा और हर नदी अपने साथ घुले हुए खनिजों को भी ले जाती रहती हैं। इनके द्वारा कुछ खनिज तो चट्टानों और अन्य खनिज क्षेत्रों से सीधे समुद्र में पहुँच जाते हैं और कुछ खनिज मनुष्यों द्वारा इस्तेमाल की हुई चीजों से।

खान, कारखाने आदि धातु के अच्छे बुरे सामान के ढेर लगा देते हैं। इन ढेरों पर हवा पानी का असर होता रहता है, इससे इनमें रासायनिक क्रिया होने

लगती है और इसका रूप बदल जाता है। अन्त में समुद्र की ओर जाने वाली नदियाँ इन्हें समुद्र में पहुँचा देती हैं। फासफेट-फर्टीलाइज़र खानों से निकालकर खेतों में डाल दिया जाता है लेकिन वह भी धीरे-धीरे कई रूप धारण करता हुआ अन्त में समुद्री-भण्डार में पहुँच जाता है।

यदि कोई विधि आर्थिक दृष्टि से लाभप्रद सिद्ध हो तो अनेक प्रकार के खनिजों आदि को समुद्र से निकाला जा सकता है। परन्तु अब तक आर्थिक दृष्टि से यह सम्भव नहीं हो सका है। एक प्रसिद्ध उदाहरण है, स्वर्ण। अनुमान है कि समुद्र के प्रति घनमील पानी में २५ टन सोना है। यह बहुत बड़ी मात्रा है। लेकिन यह इतना विरल है कि इसको निकालने के लिए जो भी विधि अपनायी गयी उसमें प्राप्त स्वर्ण की कीमत से कहीं अधिक खर्च करना पड़ा।

सबसे सस्ता साधन है, सूरज का ताप। सूरज के ताप से वाष्पीकरण द्वारा बड़ी मात्रा में नमक निकाला जाता है, लेकिन यह आदिम-तरीका है, साथ ही इसके लिए काफी बड़ा भू-भाग इस्तेमाल करना पड़ता है। इसलिए वैज्ञानिक रासायनिक और विद्युत्-रासायनिक तरीकों की खोज कर रहे हैं। इसमें अधिक कीमती ईंधन का इस्तेमाल करने के बावजूद उत्पादन लाभकर रहेगा।

समुद्र से खनिजों को निकालने के लिए वाष्पीकरण के बजाय रासायनिक तरीकों को अपनाने में वही अन्तर है जो नमक में से बड़ी मात्रा में पानी को निकालने और पानी की बड़ी मात्रा में से वाञ्छित खनिज को निकालने में है। अनुसन्धानकर्त्ताओं के लिए यह एक बड़ी चुनौती है और इससे खनिजों की विरलता की समस्या को हल किया जा सकता है।

इस बाधा को और भौतिक-सीमाओं के विरुद्ध अभियान में पेश आनेवाली अन्य अनेक बाधाओं को पार करना वास्तव में प्रयत्नों और परिणाम के आर्थिक पक्ष पर निर्भर करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे रहन-सहन और जीवन-यापन के क्षेत्र में केवल बटन दबाने से ही बहुत से काम मशीनों द्वारा स्वयं ही हो जाया करेंगे, उद्योगों का सारा काम स्वचालित मशीनों के द्वारा होने लगेगा और हम वितरण के क्षेत्र में भी पूर्ण दक्षता प्राप्त कर लेंगे; परन्तु इन सबके बावजूद यह दुनियाँ हमारी कल्पना की दुनियाँ नहीं बन सकेगी। इस जगत की प्रगति और इसकी सम्पत्ति हर हालत में उत्पादन-क्षमता पर ही निर्भर करती है। उत्पादित माल को लाने-ले जाने और उसके वितरण की हमारी व्यवस्था इसमें कई गुना तेजी ला सकती है परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि मूल तो उत्पादन ही है और वह बराबर कायम रहेगा।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि हमारे आर्थिक चिन्तन में और आर्थिक ज्ञान में जो गम्भीर त्रुटियाँ रह गयी हैं, उनको दूर किया जाय। असन्तुलित आर्थिक चक्र

पर नियन्त्रण पा सकना हमारी क्षमता के बाहर नहीं है। हमारी अर्थ व्यवस्था में सम्पन्नता के बाद फिर बेरोजगारी और मन्दी नहीं आनी चाहिए।

इस दुरूह चक्र से बचने के लिए, जिसे "व्यवसाय-चक्र" या बिजनेस-साइकिल कहा जाता है, हमें यह समझना होगा कि सम्पन्नता और मन्दी का यह भीषण चक्र वास्तव में उपभोक्ताओं, उद्योगों और सरकार के अतिवादी व्यवहार का ही नतीजा है।

जितना ही हमारे स्कूलों में छात्रों को उत्पादन, माँग, पूर्ति और बचत इत्यादि के सम्बन्ध में बाजार अनुसन्धान, वितरण और वस्तुओं के चयन की शिक्षा दी जावेगी, हम अपनी आर्थिक अज्ञानता पर उतनी ही जल्दी विजय पा सकेंगे।

दुनियाँ का बाजार प्रतियोगिता के आधार पर चलता है, यदि कोई उद्योग अपनी उत्पादन-क्षमता के आधार पर प्रतियोगिता में टिका नहीं रह सकता तो उसका सफाया निश्चित है। इससे उसमें काम करने वाले सभी कर्मचारी बेरोजगार हो जायेंगे।

आखिर यह उत्पादकता क्या है? यह अर्थशास्त्र का एक बहुत पुराना और बहुपयोगी शब्द है जिसका मतलब है एक घण्टे में प्रति व्यक्ति उत्पादन। अमेरिका में उत्पादन-क्षमता में प्रतिवर्ष दो से तीन प्रतिशत की वृद्धि का औसत रहा है। एक ओर जहाँ हमने अधिकाधिक मशीनों का इस्तेमाल करना आरम्भ किया, वहीं दूसरी ओर मजदूरों की कार्यक्षमता भी बढ़ायी।

स्वचालित मशीनों और मशीनों के द्वारा आने वाले वर्षों में उत्पादन-क्षमता निरन्तर बढ़ती ही जायेगी। लेकिन जैसे-जैसे हमारी जिम्मेदारी बढ़ती जा रही है, हमें इस बात पर विशेष ध्यान देना चाहिए कि हम उत्पादन में वृद्धि की इस क्रिया को लाभकर बनाये रखें।

क्या हमें केवल दो प्रतिशत वृद्धि पर ही सन्तोष कर लेना चाहिए? इसका उत्तर स्पष्ट ही नकारात्मक होगा। यदि इतने ही से सन्तोष कर लिया जाय तो इससे अमरीका की बढ़ती जनसंख्या और अल्पविकसित देशों की आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया जा सकेगा।

हमें दर से कम चार से पाँच प्रतिशत वार्षिक वृद्धि का औसत रखना चाहिए। १९५८ की राकफेलर रिपोर्ट में कहा गया है कि यह औसत पाँच प्रतिशत प्रति-वर्ष होना चाहिए। हमारी तकनीकी-व्यवस्था से इतनी उम्मीद करना कतई अनुचित नहीं, यह बिलकुल उचित है। हमें यही उम्मीद होनी चाहिए। लेकिन बेहतर यह होगा कि, इससे पहले विश्व प्रतियोगिता हमें दुखदायी तरीके से यह समझने के लिए मजबूर करे, हमें इस बात को अभी समझ लेना चाहिए।

यदि हम उत्पादन-क्षमता के सम्बन्ध में इस महत्वपूर्ण बात को भूल जाते हैं जो कि हमारी और दुनियाँ के अन्य देशों की सफलता का रहस्य है तो फिर यह निश्चित है कि हम एक सीधी लकीर में आगे बढ़ेंगे, प्रगति नहीं हो सकेगी, जड़ता आ जायेगी और अन्त में आर्थिक निर्जीवता आ जायेगी।

जैसे-जैसे हमारे नागरिक इस आवश्यकता को समझने लगेंगे कि उत्पादन-क्षमता, पारिश्रमिक, मुनाफे, कीमतों और करों पर नागरिकों का और अच्छा नियन्त्रण होना चाहिए तो यह सम्भव है कि हम भी वैसा ही करने लगेंगे जैसा स्कैन्डेनेविया में किया जाता है, अर्थात् हम 'तीसरे पक्ष के अधिकारों' की पैरवी करेंगे। यह तीसरा पक्ष होगा उपभोक्ता। हम इस बात पर जोर देंगे कि जब उत्पादकता के लाभ का प्रबन्धकों, श्रमिकों और सरकार के बीच विभाजन किया जाय तो उपभोक्ता का भी उसमें प्रतिनिधित्व हो।

हमारी प्रगति भी इस बात पर निर्भर करती है कि सरकार अपने ऋण-मुद्रा से सम्बन्धित अधिकारों और साख तथा करों का ऐसा आर्थिक वातावरण तैयार करने के लिए इस्तेमाल करे जिससे हमारे राष्ट्र की स्थिति सुदृढ़ रहे और वह विश्व की विभिन्न सक्रिय ताकतों में शामिल हो सके। हमारे सामने यह खतरा है कि कहीं आवश्यकता से अधिक कर न लगें; इससे हमारा विकास ठप पड़ जायेगा।

इन बातों के लिए सजग नागरिकता की आवश्यकता है। साथ ही हमारे स्कूलों में हमारी अर्थ-व्यवस्था के बुनियादी सिद्धान्तों को पढ़ाये जाने की तीव्र इच्छा होनी चाहिए। हम आर्थिक मामलों में 'स्वतन्त्र व्यापार' शब्द को बहुत पीछे छोड़ आये हैं। यद्यपि हमारी वर्तमान आर्थिक व्यवस्था पर अब भी स्वतन्त्र-व्यापार का प्रभाव बना हुआ है, फिर भी दुनियाँ में बढ़ती प्रतियोगिता, हमारी अपनी जनता और अन्य देशों की लाखों जनता की बढ़ती माँगें, हमें इन प्रभावों का नामोनिशान मिटाने के लिए विवश करेंगी।

भविष्य अनेक सम्भावनाओं से भरा हुआ है, सम्भव है उसमें निरन्तर प्रगति ही होती जाय। ऐसा भी हो सकता है कि हम एक सीधी लकीर से आगे बढ़ते चलें, हममें जड़ता आ जाय और निष्प्राण हो जायें। क्या होगा, यह हम पर ही निर्भर करता है।

—:—

भविष्य कैसा होगा, यूरोपीय दृष्टिकोण से इस बात को परिवर्तन के तीन सामान्य से उदाहरण कार, टेलीविजन और स्कूल के द्वारा समझाया जा सकता है। इन प्रतीकों के द्वारा यह समझा जा सकता है कि वहाँ भौतिक ताकतों की

प्रगति की अपार सम्भावनाएँ होते हुए भी यूरोप में जिस नये युग का उदय हो रहा है, वह वस्तुओं का युग नहीं बल्कि जनता का युग है।

इसमें मुख्य बात होगी आजादी। हमारी आजादी बढ़ेगी और विकसित होगी। यह आजादी निजी जिम्मेदारियों की और अच्छी समझ पर आधारित होगी, तकनोकी विकास की माँग यही है। यद्यपि आजादी की विरोधी ताकतों की इसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हिंसक हो सकती है, लेकिन वह इस प्रवृत्ति को अब नहीं रोक सकती।

हमारे आज के साहित्य में कार को अधिकार, सम्मान और प्रतिष्ठा का प्रतीक माना गया है और कभी-कभी साख का भी। टेलीविजन निष्क्रियता या व्यर्थता का सङ्केत माना गया है (टेलीविजन को केवल स्कूलों में ही उपयोगी साधन माना गया है)।

लेकिन ये सब हमारे चारों ओर खुलने एवम् विस्तृत होते क्षितिज का प्रतीक भी माने जा सकते हैं।

कार यूरोप के उस उद्योग का माल है जो भविष्य में यूरोप का मुख्य उद्योग बनने जा रहा है। इस प्रसङ्ग में यह उन अन्य प्रकार के सामानों का प्रतिनिधित्व भी करता है जो तेजी से बढ़ती एवम् फैलती औद्योगिक व्यवस्था का उत्पादन है और जिनसे लाखों-करोड़ों मनुष्यों को अनिच्छा से किये जाने वाले कठिन परिश्रम से राहत मिलेगी।

लेकिन कार निजी स्वतन्त्रता का एक मशीनी पहलू भी है। इससे व्यक्ति अपने को स्वतन्त्र महसूस करने लगता है। इससे उसकी यात्राओं की दूरी बढ़ती है, वह जहाँ चाहे जितना चाहे घूम सकता है और पूर्व निर्धारित कार्यक्रम का पालन करने की परेशानी से बच जाता है। वह इससे सीमाओं को लाँघ सकता है और उनको तहस-नहस कर सकता है।

टेलीविजन भी एक बिल्कुल नये उद्योग का प्रतिनिधित्व करता है, यह नया उद्योग है इलेक्ट्रोनिक्स के चमत्कारों का और यह चमत्कार तो अभी इस उद्योग के विकास की शुरुआत ही है। इसके बावजूद यह इस बात का प्रतीक है कि हममें एक-दूसरे को जानने-समझने की भावना विकसित हो रही है। हम यह जान सकते हैं कि कहाँ क्या हो रहा है। जो विदेशों था, जो बहुत दूर था और जिसमें हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रहा, आज सभी हमारे कमरों में ही मौजूद है।

इसमें सन्देह नहीं कि शिक्षा के प्रसार के साथ इस भावना में भी सुधार होगा और इस शिक्षा में और भी तकनीकी विकास कर सकने का मार्ग खुल जायेगा।

यूरोप में एकता की सम्भावना से आरम्भ में आशङ्काएँ प्रगट की गयी हैं।

हिचकिचाहट है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि ये तीन प्रवृत्तियाँ यूरोप की एकता को निश्चित बना देंगी। तकनीकी ज्ञान के विकास की माँग ही एकता है। यह एकता कायम होने से कोई नहीं रोक सकता, चाहे इस एकता को विधिवत् यूरोपीय सङ्घ का रूप दिया जा सके या नहीं।

ये तीन प्रवृत्तियां उद्योगों के सङ्गठन और प्रशासन में भी एक नयी क्रान्ति की ओर सङ्केत करती है जिसने प्रबन्धकों और श्रमिकों की भूमिका बदल दी है। उन्हें श्रमिक की तरक्की करनी होगी और सम्भव है "अफसर" (बास) अनावश्यक हो जाय और वह पद ही खत्म कर दिया जाय, क्योंकि अन्त में प्रशिक्षण और शिक्षा की दृष्टि से इसमें बहुत कम अन्तर रह जायेगा, हम लगभग समान स्तर के हो जायेंगे और तब फिर एक टीम की तरह काम करने की बात यथार्थ बन सकेगी।

यही नहीं, हमारी इन तीनों प्रवृत्तियों का एक-दूसरे के प्रति सद्भाव के विकास एवम् इसमें उत्तरोत्तर सुधार का और तकनीकी ज्ञान के तीव्रगति से विकास का, सरकार पर जबरदस्त प्रभाव पड़ना निश्चित है। ऐसी स्थिति में तानाशाही सरकारें, जैसी कि अतीत में कुछ देशों में रही है, एकदम असम्भव हो जायेंगी।

एक क्षण के लिए फिर मोटरगाड़ी की ओर मुड़ चलें। पश्चिमी यूरोप का कार-उद्योग १६५० के बाद से द्विगुणित विकास कर चुका है। इस बात का कोई कारण नहीं कि फिर उसका द्विगुणित विकास क्यों न हो।

१६५० और १६५५ के बीच यूरोप की सड़कों पर कारों, बसों और ट्रकों की संख्या में ७५ प्रतिशत की वृद्धि हुई है। १६६० तक इसमे ५० प्रतिशत वृद्धि और होने की सम्भावना है। इसका तात्पर्य यह है कि उन पाँच वर्षों में ७० लाख गाड़ियों की वृद्धि हुई और दूसरे चरण में यह वृद्धि ६० लाख की होगी।

१६६० के बाद भविष्य की ओर नजर डालिए—१८ वर्ष या २८ वर्ष या फिर ३८ वर्ष आगे—तब भी क्या इस बात में सन्देह रह जाता है कि कार यूरोप की शक्ल ही बदल देगी, नये शहर खड़े हो जायेंगे और पुराने शहरों का कायाकल्प हो जायेगा?

पश्चिमी जर्मनी के दसवर्षीय कार्यक्रम के अनुसार अकेले सड़कों पर आठ अरब डालर खर्च किया जायेगा।

अपने उद्योगों के लिए शक्ति की व्यवस्था करने को पश्चिमी यूरोप १६७५ के पहले १५० अरब डालर अतिरिक्त खर्च कर डालेगा। और इसका काफी हिस्सा परमाणु शक्ति पर खर्च होगा।

१६७५ तक सम्भव है कि यूरोप में एक-सौ परमाणु शक्ति केन्द्र काम कर रहे होंगे।

यह भी सम्भव है—और ज्यूल्स वर्ने तो इसे अवश्यम्भावी कहने से नहीं

दिखेगा कि १९७५ से पहले यूरोप विद्युत् के सबसे सस्ते साधन समुद्री जल से अपार बिजली पैदा करने का रहस्य खोज लेगा।

ब्रिटेन के 'जेटा' जैसे परमाणु शक्ति के उपकरणों से किये गये प्रयोगों से यही आशा बँधती है, करीब आधे दर्जन देशों में ये प्रयोग हो रहे हैं।

यदि विद्युत् के ऐसे साधनों का प्रयोग किया जा सका जो भौगोलिक या भूगर्भशास्त्र की सीमाओं से मुक्त हैं तो फिर यूरोप को अपने अल्पविकसित क्षेत्रों की जटिल और असाध्य लगने वाली समस्या को हल करने का मौका मिल जायेगा। जहाँ बिजली नहीं है, जैसे दक्षिणी इटली या यूनान के दूरस्थ प्रदेश, वहाँ यूरोप से बिजली पहुँचायी जा सकेगी। जहाँ जमीन उपजाऊ नहीं है या कम उपजाऊ है, उसे उपजाऊ बनाया जा सकेगा।

इन क्षेत्रों का बड़े पैमाने पर विकास करने की आवश्यकता है; इस बात की आवश्यकता है कि यहाँ उद्योग-धन्धों का जाल बिछाया जाय, लेकिन उसके बाद ग्राहकों की भी तो आवश्यकता होगी।

खरीदना उतना ही महत्वपूर्ण है जितना बेचना। व्यवसायी समुदाय को लालची कहने का प्रसंग बुरा हुआ। एक की समृद्धि दूसरे की गरीबी पर निर्भर नहीं करती, जैसे कि अक्सर कहा जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि व्यवसायी समाज में वे दूसरों की निरन्तर बढ़ती समृद्धि पर निर्भर करते हैं। वैसे यह बात दुतरफा लागू होती है। यदि आप निरन्तर समृद्धिवान बनते गये तो इसमें दूसरे का भी लाभ है और आप हैं ग्राहक।

केवल पाँच साल में यूरोप में स्टोरों और बड़े-बड़े बाजारों में जो खरीदारी की गयी उसमें पहले की अपेक्षा २५ अरब डालर की वृद्धि हुई। यूरोपीय इस अतिरिक्त धन का सम्भवतः आधा हिस्सा घरेलू सामान, बिजली से चलने वाली छोटी-मोटी मशीनों, कारों और कपड़ों पर खर्च करेंगे।

इधर हाल के वर्षों में राष्ट्रीय आय का २० प्रतिशत विनियोजन में लगाया गया। इसका आधा नयी मशीनों और संयन्त्रों (प्लान्टों) पर खर्च किया गया जिससे उत्पादन और अधिक बढ़ सके।

इसलिए हम यह उम्मीद कर सकते हैं कि उत्पादकता में काफी वृद्धि होगी, उसके साथ ही इलेक्ट्रानिक्स और स्वचालित मशीनों की क्रान्ति होगी और इन सब के साथ होगा सारे यूरोपीय बाजारों का एक बाजार के रूप में विकास।

इसका तात्पर्य क्या है? इसका तात्पर्य है अनिवार्य रूप से शिक्षा का प्रसार। बच्चे पहले की अपेक्षा अधिक समय स्कूलों में रहेंगे। लाखों छात्रों को तकनीकी प्रशिक्षण दिया जायेगा। प्रबन्धकों को अधिक साहसी होना पड़ेगा और अधिक

जानकारी रखनी होगी। कर्मचारियों को नया कौशल या नया रोजगार सीखने के लिए तैयार होना पड़ेगा। नये रोजगार ऐसे देश में हो सकते हैं जो कल तक बिलकुल भिन्न प्रकार का था। हर जगह नयी बात सीखने पर ही जोर दिया जा रहा है।

अब यूरोप को, इस तकनीकी क्रान्ति को, जो कभी असम्भव और काल्पनिक बात समझी जाती थी, नया अर्थ देना है और ऐसा करने में उनको एक और नयी क्रान्ति का सामना करना पड़ेगा।

—६—

दुनियाँ की इस तकनीकी प्रगति में और इसकी चुनौतियों में प्राकृतिक विज्ञान की उपलब्धियाँ निहित हैं। जिस स्तर पर ये वैज्ञानिक किसी अज्ञात वस्तु या शक्ति की तलाश करते हैं, वह स्तर है बुनियादी अनुसन्धान का न कि तकनीकी विकास का। एक राष्ट्र बिना बुनियादी वैज्ञानिक खोज कार्य किये या बिना उसके नैतिक सिद्धान्तों का स्पर्श किये भी आधुनिक तकनीकी प्रगति का उपयोग कर सकता है। परन्तु यह आयात की हुई तकनीक होगी।

दूसरी ओर यह कहा जा सकता है कि कोई राष्ट्र जो अपनी तकनीकी ताकत बढ़ाना चाहता है और विदेशी विशेषज्ञों पर निर्भर करना नहीं चाहता, उसे बुनियादी अनुसन्धान कार्य में कुछ कोशिश करनी पड़ेगी।

इञ्जीनियरिंग के विकास में जो "कच्चा माल" इस्तेमाल होता है, वह इञ्जीनियरिंग के सम्बन्ध में अब तक के ज्ञान-भण्डार से ही लिया जाता है। लेकिन इस प्रक्रिया में यह ज्ञान-भण्डार बढ़ता नहीं है, इसमें कोई नयी बात शामिल नहीं होती। जहाँ तक विज्ञान और इञ्जीनियरिंग का सम्बन्ध है इनको अनुसन्धान कार्य के द्वारा ही समृद्ध बनाया जा सकता है। अनुसन्धान कार्य ही इन दोनों का स्रोत है।

यदि कोई राष्ट्र इञ्जीनियरिंग के क्षेत्र में अपने को समर्थ बनाना चाहता है, जो कि आधुनिक राष्ट्र बनने के लिए आवश्यक भी है, तो केवल दूसरों के तकनीकी ज्ञान को उधार लेकर यह नहीं हो सकता, उसके पास ऐसे कुछ वैज्ञानिक होने चाहिए जिनको इस क्षेत्र के ज्ञान-भण्डार की पूरी-पूरी जानकारी हो।

आधुनिक विज्ञान केवल परमाणु-विखण्डन ही नहीं है, यह केवल समुद्र की गहराई की खोज या पृथ्वी के चारों ओर चक्कर लगाने वाले कृत्रिम-उपग्रह छोड़ने तक ही सीमित नहीं। यह तो एक बौद्धिक साहस है जो पश्चिमी सभ्यता की परिचालन-शक्ति बन गया है।

भौतिक जगत् में उनकी सफलताएं वास्तव में बौद्धिक जगत् की उस हलचल का एक बाह्य प्रतिबिम्ब है जिसने इन सफलताओं को सम्भव बना दिया।

परम्परागत विश्वास का परित्याग कर और तथ्यों के आधार पर सिद्धान्तों को कसौटी में कसके मानव मात्र को सत्य क्या है, इसकी परख करने का एक नया मापदण्ड दिया। विज्ञान ने उन्हें यह दिखाया है कि रहस्यानुभूति में किस प्रकार पीछा छुड़ाया जा सकता है और किस प्रकार इस ब्रह्माण्ड की क्रिया-प्रक्रियाओं को समझकर उसे अपने मङ्क में लगाया जा सकता है।

हारवर्ड विश्वविद्यालय के नोबलपुरस्कार विजेता भौतिकशास्त्री पर्सी ब्रिजमैन के शब्दों में प्राकृतिक विज्ञान की प्रगति "वास्तव में बुद्धि के प्रयोग का ही नतीजा है"। उन्होंने 'वैज्ञानिक-विधि' की व्याख्या इस प्रकार की है, "अपनी बुद्धि का अपनी क्षमता के अनुसार अधिकतम इस्तेमाल।"

यही बुनियादी सिद्धान्त, सत्य के अन्वेषण की यह लगन और बुद्धिमत्तापूर्ण चिन्तन के प्रति यह निष्ठा ही पश्चिमी सभ्यता को प्राकृतिक विज्ञान की देन है। यह जातीय, धार्मिक या अन्ध-विश्वासों के कारण व्याप्त अन्य पूर्वाग्रहों एवम् सङ्कीर्णताओं के लिए दैवी अभिशाप के सदृश है। यह रहस्यवाद से मानव की मुक्ति का घोषणापत्र है। इसने इन्सान की प्रतिष्ठा को एक नया पहलू दिया है।

इस भौतिक जगत् का अध्ययन करने वाले वैज्ञानिकों ने अपने-अपने विशिष्ट कार्यक्षेत्र में इस नयी प्रतिज्ञा को नयी जानकारी प्राप्त करने में सफलता प्राप्त करने के लिए एक प्रारम्भिक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में महसूस किया है। लेकिन अपने-अपने विशिष्ट क्षेत्र में पहले से चले आये विश्वासों को उखाड़ फेंकने में उन्होंने उस बन्धनमुक्त बुद्धि को प्रमुख और प्रतिष्ठित स्थान दिलाने में सहायता की जिसका केवल सत्य के अन्वेषण के लिए इस्तेमाल किया जाता है, चाहे यह सत्य का अन्वेषण चिन्तन के किसी भी क्षेत्र में क्यों न हो।

ब्रिटिश वैज्ञानिक और दार्शनिक जेकब ब्रोनावस्की का कहना है कि, "विज्ञान, सिद्धान्तों से और उनके तथ्यों की कसौटी पर परखने से उत्पन्न हुआ। विज्ञान में सिद्धान्त की जाँच के लिए तथ्यों की कसौटी के सत्य के अलावा और कोई विधि नहीं है।"

उनका मत है कि "सत्य के रूप में अनुभूततथ्य से प्राप्त अधिकार ही वह मुख्य शक्ति है जिसने हमारी सभ्यता को पुनर्जागरण काल से अब तक आगे बढ़ाया और उसका सञ्चालन किया है।" साइन्स एण्ड ह्यूमन वैल्यूज, जूलियन मेसनर कम्पनी)।

परन्तु हमारी दिन रात कार्य-रत अनुसन्धान प्रयोगशालाओं में व्यावहारिक लाभ उठाने की होड़ में विज्ञान की इस बुनियादी प्रतिज्ञा को भुला दिया जाता

है। परन्तु मनुष्य की चिन्तनधारा में यह प्रतिज्ञा अपने प्रभावशाली रूप में विद्यमान ही रहती है क्योंकि जब तक विज्ञान के मूल में निहित विचारों को ग्रहण न कर लिया जाय तब तक कोई भी राष्ट्र विज्ञान की देनों को स्वीकार नहीं कर सकता।

एक साधारण-सा ऐतिहासिक उदाहरण इस बात को स्पष्ट कर देगा कि यह विचारधारा कितनी क्रान्तिकारी रही है और आज भी वैसी ही बनी हुई है।

प्राचीन यूनान के दार्शनिक अरस्तू का मत था कि जो चीज भारी होती है उसमें नीचे गिरने की प्रवृत्ति निहित होती है और जो चीज हल्की होती है उसमें ऊपर उड़ने की प्रवृत्ति होती है। उन्होंने कहा, हवा में ऊपर उड़ने की प्रवृत्ति होती है इसीलिए वह भारहीन है।

सदियों तक अरस्तू का यह सिद्धान्त बिना किसी शङ्का-आपत्ति के पत्थर की लकीर की तरह स्वीकार किया जाता रहा। यह बात बिलकुल साधारण समझ की बात लगी। तब गैलीलियों ने यह सिद्ध किया कि इस प्रकार की सामान्य समझदारी की बात भी कितनी गलत हो सकती है।

उन्होंने सुअर के मूत्राशय (ब्लेडर) में हवा भरी और फिर उसको एक तराजू में पानी से भरे बर्तन से तौलकर दिखाया। फिर उन्होंने ब्लेडर में छेद कर हवा निकाल दी। नतीजा यह हुआ कि जिस पलड़े पर पानी से भरा बर्तन रखा था, वह नीचे झुक गया। इससे यह साबित हुआ कि हवा में भी वजन है।

गैलीलियो और पुनर्जागरण काल के अन्य वैज्ञानिकों ने इस प्रकार अनेक प्राचीन मान्यताओं को गलत साबित किया, उन्होंने हर बात में तथ्यों का निरीक्षण करने, उस पर विचार करने और फिर प्रयोगों की कसौटी पर कसने का तरीका अपनाया।

"सत्य के रूप में अनुभूत तथ्य" की शक्ति मनुष्य की विचारधारा में एक ताकत के रूप में उभरी। इसने आगे चलकर अन्धविश्वास, पुरानी मान्यताओं और रहस्यवाद को जकड़ देने वाली ताकतों और विचारकों के रूप में मनुष्य के बढ़ते प्रभाव क्षेत्र में आसमान-जमीन का अन्तर स्पष्ट कर दिया। इससे सारी स्थिति ही बदल गयी।

इतिहासकार ल्वोल्क विगल के शब्दों में, "इन प्रारम्भिक वैज्ञानिकों ने यह साबित किया कि नक्षत्र-विज्ञान और भौतिक-शास्त्र दोनों में ही बाह्य रूप और गुण धोखा देने वाले होते हैं" "यह समझना कि प्रकृति के नियम अगोचर और अज्ञात हैं, उनको तर्क द्वारा जाना-पहिचाना नहीं जा सकता" "सही नहीं है।" एक बार यदि इसे मान लिया तो फिर पुरानी दार्शनिक चिन्तनधारा का कुछ भी महत्व नहीं रहता, उसका खण्डन हो जाता है। जब इसे स्वीकार कर लिया

गया तो फिर पश्चिम के व्यक्ति ने अपनी खोजबीन शुरू कर दी और प्रकृति पर विजय प्राप्त करने का अभियान छेड़ दिया।" (एण्ड दियर वाज लाइट; नाफा)

आज हर जगह का व्यक्ति उनकी जाँच-पड़ताल और उनकी विजय में हाथ बँटाने के लिए उत्सुक है। यह स्पष्ट है कि उन्हें इसके पहले मानसिक परिणामों के साथ ही व्यावहारिक लाभों को स्वीकार करने के लिए तैयार होना पड़ेगा। सिद्धान्तों तथा मान्यताओं को तथ्यों की कसौटी पर कसने की प्रक्रिया ने आगे चलकर राष्ट्रीय तथा निजी पूर्वाग्रहों और सङ्कीर्णताओं पर असर हुए बिना नहीं रहेगा।

निस्सन्देह, पश्चिमी वैज्ञानिक इसे राजनीतिक तनाव में पड़े विश्व के लिए आशा का कारण समझते हैं। उनका ख्याल है कि विज्ञान की विचार-प्रक्रिया सभी राष्ट्रों के दृष्टिकोणों को अधिक तर्कसम्मत और सहिष्णु बनायेगी और इससे अन्त में अन्तर्राष्ट्रीय तनाव कम करने में मदद मिलेगी।

इतनी अधिक परस्पर विरोधी-धाराएँ काम कर रही हैं कि यह कह सकना सम्भव नहीं है कि यह आशा केवल एक खामख्याली ही नहीं होगी। दूसरी ओर वैज्ञानिक विचार-पद्धति गैर पश्चिमी लोगों पर जबरदस्त प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती, खासकर उन पर जिन्होंने अब तक इस ब्रह्माण्ड को रहस्य-वाद के चश्मे से ही देखा है।

इस सिलसिले में यह बताया जाना अनुचित न होगा कि प्राकृतिक विज्ञान की आचार-संहिता नैतिकता की संहिता की तरह नहीं है जिसे लोग जब चाहें ताक पर रख सकते हैं। एक ऐसी विषम स्थिति में जब वैज्ञानिक और प्रकृति एक दूसरे के आमने-सामने होते हैं यदि उस समय अनुसन्धान की 'नैतिकता' का पालन करने में चूक हो जाय तो फिर उसका दण्ड बड़ा भयङ्कर होता है, वैज्ञानिक की उस एक क्षण की उसकी चूक से जीवन भर का परिश्रम व्यर्थ हो सकता है। प्रकृति को फुसला-बहलाकर या धोखा देकर अपना रहस्य प्रकट करने के लिए तैयार नहीं किया जा सकता। आपको नियमों के अनुसार खेलना होगा अन्यथा असफलता ही पल्ले पड़ेगी।

पश्चिमी समाज में परम्परागत धर्म ने विज्ञान की विचार-पद्धति के प्रभाव को सदियों पहले अनुभव किया और तब से उसका प्राकृतिक विज्ञान से निरन्तर सङ्घर्ष चल रहा है। एक आरोप जो अक्सर लगाया जाता है, यह है कि वैज्ञानिकों ने ईश्वर को उसकी सृष्टि, इस दुनियाँ, से बाहर निकाल दिया है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि वैज्ञानिक इस भौतिक प्रकृति का अध्ययन करते हैं, लेकिन वे भौतिकवाद से बँधे हुए नहीं हैं। उन्होंने ईश्वर और जीवन को सीमाबद्ध करने वाले परम्परागत सिद्धान्तों को खिड़की से बाहर फेंक दिया है। लेकिन पहले

से चली आयी मान्यताओं से मुक्त रहकर बुनियादी सिद्धान्तों की खोज और उनका इस बात पर बारम्बार बल देना कि व्यक्ति को अपने लिए ईमानदारी से सत्य की खोज करने का पूरा अधिकार है, उनकी ऐसी विशेषता है जो रूढ़िग्रस्त धार्मिक विचारकों के लिए अनजानी है।

केवल विश्वास और अधिकार पर आधारित सिद्धान्तों के द्वारा या सब कुछ स्वयं सिद्ध मानकर सत्य की खोज करने में और उन्मुक्त करने वाली उस पद्धति में, जो किसी भी मानवीय मान्यता या सिद्धान्त को तथ्यों की कसौटी से ऊपर नहीं मानती, बहुत बड़ा अन्तर है।

इस अन्तर में केवल हमारे भौतिक वातावरण पर नियन्त्रण से कहीं बड़ी चीज दाँव पर लगी हुई है। डा० ब्रोनोवस्की का यह कथन महत्त्वपूर्ण है कि, "जब हम यह जानने के लिए कि अमुक नक्षत्र कौन सा है, परीक्षण का तरीका त्याग देते हैं तो फिर यह जानने के लिए भी कि मनुष्य क्या है, हम परीक्षण की आवश्यकता नहीं समझेंगे। एक व्यक्ति दूसरे का जो आदर करता है उसके बल पर ही यह समाज कायम है। जब मनुष्य के विषय में उसकी मान्यता गलत साबित होती है तो फिर समाज कायम नहीं रहता, वह भय और सत्ता के अलग-अलग कुटों में विभक्त हो जाता है।"

यही कारण है कि सत्य के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण के नतीजे पश्चिमी राष्ट्रों में प्रयोगशालाओं की सीमा लाँघकर बहुत दूर तक पहुँच गये हैं। जैसे-जैसे यह दृष्टिकोण शेष दुनियाँ में भी फैलता जायेगा तब सारी मानव जाति पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा और क्या नतीजे होंगे, इसकी कल्पना नहीं की जा सकती है।

एक शताब्दी पूर्व, वैज्ञानिकों को यह विश्वास था कि उत्पत्ति का सिद्धान्त मालूम हो जाने पर उन्होंने इस ब्रह्माण्ड को अच्छी तरह समझ लिया है और वे सभी महत्त्वपूर्ण बातों को, जैसे जीवन को, मिकैनिकल और रासायनिक सूत्रों में बदल सकते हैं। यह समझा जाता था कि ब्रह्माण्ड और मनुष्य में ऐसा तारतम्य बना हुआ है, जो बुनियादी रूप में अपनी धुरी पर बिना किसी त्रुटि के घूमने वाले नक्षत्रों और पूर्णता के निकट पहुँची मशीनों की जटिल कला के सदृश है।

यह माना जाता था कि पदार्थ वजनदार और ठोस होता है और बिलियर्ड की गेंद की तरह के परमाणुओं से बना हुआ है। ये परमाणु इतने छोटे हैं कि समझाया नहीं जा सकता, लेकिन वे ठोस हैं और उनका और विभाजन नहीं किया जा सकता।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ तक पदार्थ के सम्बन्ध में यह ज्ञान बुनियादी तौर पर पूर्ण माना गया। वैज्ञानिकों का मत था कि यदि किसी एक क्षेत्र में परमाणुओं की स्थिति, शक्तियों, गति और ब्रह्माण्ड के भार का निश्चित अनुमान किया

गया हो तो कम से कम सैद्धान्तिक स्तर (थ्योरी) पर वे उस ब्रह्माण्ड की गति-विधि के सम्बन्ध में हमेशा-हमेशा के लिए भविष्यवाणी कर सकते है।

आत्यधिक आशावादी भौतिकवाद पहले डगमगाया और फिर नयी खोजों के प्रवाह से लुप्त हो गया। वह उन नयी खोजों का अर्थ समझ सकने में असमर्थ था।

आज भौतिक शास्त्री के पास किसी भौतिक अवस्था को समझने-समझाने के लिए तीस अणुओं की जानकारी है। किसी भी दिन उसको और अधिक अणुओं की जानकारी प्राप्त हो सकती है। लेकिन इस समय उसको केवल इतने ही अणुओं की जानकारी है और ये अणु उनसे एकदम भिन्न हैं जिन्हें १९वीं सदी में ठोस और भारयुक्त परमाणु कहा जाता था।

विकीरण के साथ निरन्तर लुप्त होने वाले या आकारहीन शक्ति से उभरने वाले ये अणु एक दूसरे के साथ निश्चित क्रिया के द्वारा ही स्थायी पदार्थ बनाते हैं। इन अणुओं के सम्बन्ध में भौतिक शास्त्रियों ने जो अपार आँकड़े जमा कर रखे हैं, उनके आधार पर उनकी अन्तर क्रिया के नियमों को बनाया जा रहा है। यह कार्य अभी केवल आरम्भ ही हुआ है।

भौतिकशास्त्री यह मानता रहा है कि वह सामान्य नियमों को अन्तरिक्ष के शतरञ्ज के खेल की तरह है—में चलने वाले कुछ बुनियादी अणुओं के माध्यम से इस भौतिक जगत् का समझा सकेगा। परन्तु एक ओर भौतिकशास्त्री अब भी यह विश्वास करता है, दूसरी ओर उसे इन अणुओं की पहेली हल करने की चुनौती का सामना करना पड रहा है।

जे० राबर्ट ओपेनहाइमर ने 'सैटरडे ईवनिंग पोस्ट' में एक लेख में इस समस्या का सार इन शब्दों में लिखा है, "अणुओं के सम्बन्ध में हमें ऐसे तथ्यों को स्वीकार करना पड सकता है जो किसी नियम विशेष के अनुसार नहीं हैं, जो जटिल और अव्यवस्थित हैं। हमें बिना इनकी पृष्ठभूमि में छिपी उस समरसता पर दृष्टि डाले ही, जिसके द्वारा इनको समझा जा सकता है, इन्हें स्वीकार करना पड़ सकता है। लेकिन हमारे पेशे का यह विश्वास और लगन है कि हम आसानी से इस प्रकार की हार स्वीकार नहीं कर सकते।"

१९वीं सदी में इस प्रकार का वक्तव्य शायद समझ में नहीं आता। इस सदी की बात कहते हुए आधुनिक परमाणु सिद्धान्त के प्रणेताओं में से एक डा० वर्नर का कथन है :—

"वैज्ञानिक विधि और तर्कपूर्ण विचार-पद्धति ने मानव मस्तिष्क से अन्य सभी मान्यताओं एवम् विश्वासों को हटा दिया है। ..आधुनिक भौतिक शास्त्र जो सबसे अधिक महत्वपूर्ण परिवर्तन लाया है, वह है मान्यताओं की जकड़ का खत्म होना ..."।"

मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्ध

आध्यात्मिक विकास की स्वतन्त्रता

मनुष्य के महान् भविष्य से न केवल भौतिक सीमाओं में और अधिक आजादी प्राप्त करने की आशा है बल्कि आध्यात्मिक विकास की ओर अधिक आजादी प्राप्त होने की भी आशा है। आध्यात्मिक प्रगति ऐसी है जिसे ठोस रूप में नहीं देखा जा सकता लेकिन अब तक जो प्रगति कर ली गयी है, उसको देखते हुए और प्रगति अवश्यम्भावी है। यदि मनुष्य ने भौतिक जगत् के रहस्यों का उद्घाटन करते हुए भौतिकवाद की जञ्जीर न पहन ली तो यह प्रगति अवश्य जारी रहेगी।

आध्यात्मिक विकास के लिए बढ़ती स्वतन्त्रता के लक्षण कहाँ हैं ? ये लक्षण वास्तव में मनुष्य के दूसरे मनुष्य के साथ सम्बन्धों में प्रकट होते हैं—परिवार में, स्कूल में, गिर्जाघर में, नगर में, राष्ट्र में और दुनियाँ में दिखायी देते हैं। लेखक की सजगता में और कलाकार की रचनाओं में इसके दर्शन होते हैं। ये अन्ततः व्यक्ति पर ही केन्द्रित हो जाते हैं, वैयक्तिकता के प्रति उस सम्वेदनशीलता में प्रकट होते हैं जो युगों से मनुष्य की विचारधारा में पनपती आ रही है।

यह एक और कहानी है जो घर में शुरू होती है।

चाँद तक पहुँचना बहुत बड़ी बात होगी। लेकिन दुनियाँ ने घर लौटने से अच्छी और किसी चीज का आविष्कार नहीं किया, बशर्ते घर में स्नेह का वातावरण हो, जहाँ माता-पिता परस्पर और अपने बच्चों से बुद्धिमत्तापूर्ण प्रेम करते हों और जहाँ बच्चे अपने माता-पिता को अच्छा मानते हों और उनका आदर करते हों तथा बड़े होकर उन्हीं की तरह बनना चाहते हों।

अमेरिका में पारिवारिक जीवन की स्थिति कैसी है ?

घर पर आज जितने दबाव आ पड़े हैं और उसे आज जिन तनावों में रहना पड़ रहा है, इससे पूर्व के इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ। ऐसा लगता है कि सभी प्रकार की ताकतें आपस में मिलकर हमारी सभ्यता के इस नींव के पत्थर को तहस-नहस करने का षड्यन्त्र रच रही हैं…।

ऐसा प्रतीत होता है कि मशीनों की संख्या में वृद्धि भी इसे तोड़ डालना चाहती है...रहन-सहन की लागत निरन्तर बढ़ती जा रही है और घर का खर्च चलाने के लिए महिलाओं के लिए भी नौकरी करना आवश्यक-सा हो गया है।

पुराने दिनों में, पिता-माता और बच्चे सभी एक ही घर में साथ काम करते थे, लेकिन अब दिन के समय सभी बिखर जाते हैं।

क्या ऐसा नहीं लगता कि जैसे यह बात आपने पहले भी सुनी हो ? ये पैराग्राफ कल के किसी समाचार-पत्र से नहीं लिये गये हैं बल्कि ये २७ नवम्बर १६०८ के "दि क्रिश्चियन साइन्स मानीटर" के दूसरे अङ्क में से उद्धृत किये गये हैं।

फिर भी पचास साल बाद परिवार अभी कायम है, उसमें तनाव के अनेक लक्षण दिखायी देने लगे हैं लेकिन स्वस्थ प्रगति के सूचक आशाजनक भण्डे भी फहराते दिखायी दे रहे हैं।

परिवर्तन के इस विशाल सागर में अब भी एक बात पूर्ववत् कायम है और वह यह है कि माता-पिता अपने बच्चों को प्यार करते हैं और बच्चे अपने माता-पिता को और उनके गुणों के प्रशंसक हैं।

१६०० के बाद हुए परिवर्तनों में तीन बातें मुख्य हैं :—

१—आज परिवार या कुल परमाणु की तरह ही खण्ड-खण्ड हो गया है, केवल माता, पिता और बच्चे बचे हुए हैं। २—अब लोग 'प्राकृतिक' ढङ्ग से नहीं रहते, अब हजार कोशिशों के साथ रहा जाता है। ३—अच्छे माता-पिता होना आज जितना कठिन हो गया है उतना पहले कभी नहीं था और आज यह दायित्व पहले की अपेक्षा कहीं अधिक उलझनपूर्ण हो गया है।

फ्लारेन्स डे की "लाइफ विद् फादर" ने हमारे मन पर बहुत प्रभावशाली ढङ्ग से विक्टोरिया के जमाने की तस्वीर जमा दी है जिसमें पिता डे जनरल हैं, माता डे लेफ्टिनेन्ट है और बच्चे केवल सैनिक मात्र हैं।

किसी के मन में यह सवाल पैदा नहीं हुआ कि बच्चों को किस प्रकार का बर्ताव करना चाहिए। जब उनसे बातचीत की जाय तभी बोलें, दिखायी दें लेकिन कम से कम बोलें। बहुत-सी समस्याएँ स्विच ने हल कर दीं।

पिता कभी घर से अधिक दूर नहीं रहे, नाश्ते, दोपहर के भोजन और रात

के भोजन के समय वे सदा घर पर ही रहे। वही रुपये-पैसे का हिसाब रखते, वे ही फैसले लेते और वही परिवार के लिए व्यवस्थाएँ कायम करते।

दादा-दादी भी घर पर ही रहे। चाचा-चाची पड़ोसी थे और चचेरे भाई बहिनों की संख्या दर्जनों में थी। जीवन एक लीक पर चलता जा रहा था।

खेतों या फार्मों में, जहाँ जनसंख्या का दो तिहाई भाग रहता है, सभी सदस्य अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए, जीवित रहने के लिए, एक दूसरे पर निर्भर करते रहे। बच्चा पैदा होने पर यह समस्या नहीं थी कि 'एक और खाने वाला पैदा हो गया' बल्कि वह आर्थिक सम्पत्ति समझा जाता था अर्थात् काम करने के लिए दो हाथ और आ गये। माता-पिता और बच्चे साथ-साथ ही रहते आयें। परिवार ही अध्ययन का केन्द्र था, वह साथी-सङ्गी था, कार्य और खेल दोनों केन्द्र भी वही था।

लेकिन इसे परिवार के आधुनिक नमूने को देखिये। परस्पर निर्भरता अब काफी हद तक खत्म हो चुकी है। ऐसा लगता है कि परिवार से अब उसके अनेक परम्परागत कार्यों को छीन लिया गया है।

पिता के का भी अब वह महत्व नहीं रहा, अब वे परिवार के लिए एकमात्र अर्जन करने वाले नहीं रहे और न घर के तानाशाह ही हैं। वे एक लोकतन्त्रीय ग्रुप के नेता की तरह अधिक हैं। यह सदी वास्तव में बच्चों की सदी है। बच्चों के अधिकारों को मान्यता दे दी गई है। उनकी भावनाओं की सुरक्षा सबसे बड़ी चिन्ता का कारण बन गयी है।

माँ का स्तर ऊँचा उठा है, वह या तो अपनी नौकरी से परिवार की आमदनी बढ़ाने में सहायता कर रही है या पूरे परिवार के पालन-पोषण का खर्च अकेले ही चला रही है। वह ड्राइवर का काम करती है, बिल चुकाती है और अधिकांश धन खर्च करना उसके ही हाथ में है। पिता के दौरे पर रहने या घर से बाहर रहने के कारण बच्चों के सम्बन्ध में अधिकांश निर्णय वही करती है।

बच्चों पर खर्च भी अधिक होने लगा है, इसलिए प्रति परिवार में बच्चों की संख्या कम होने लगी। लेकिन इधर कुछ समय से परिवारों का बढ़ना शुरू हुआ है।

शाम का कमरे में कौन बैठा रहता है? दादी, दादा, आन्टी? नहीं, वे सब घर से बहुत दूर हैं क्योंकि इस परिवार को कई बार एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना पड़ा है। अपने काम के कारण वह एक स्थान पर टिके नहीं रह सकते। नहीं, जो उस कुर्सी पर बैठी है, वह बच्चों की देखभाल के लिए नियुक्त नौकरानी है, जिसे 'बेबी-सिटर' कहते हैं और इस बीसवीं सदी में इसका विशेष महत्व है।

उनकी सलाह अब पहले की अपेक्षा कहीं अधिक ठास और युक्ति-युक्त होती है। उदाहरण के लिए, "विवाह का मुख्य उद्देश्य समर्पण है, अधिकार प्राप्त नहीं। अपने बच्चो के प्रति स्नेहभाव रखने का प्रयत्न करो, यदि तुम वास्तव में अपने बच्चों को अपने सामीप्य में रखना चाहते हो तो फिर उन्हें कहीं भी जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता दे दो।" इस प्रकार की सहायता से डेन्डम्पती अपनी समस्याओं को सुलझाते रहते है।

परन्तु सभी अमेरिकी परिवार डेन्डम्पति परिवार की तरह नहीं है, न अतीत में रहे और न वर्तमान में। पारिवारिक जीवन घड़ी के पेण्डुलम के साथ एक सिर से दूसरे सिरे तक झूलता रहता है, उनकी प्रकृति अतिवादी होती है—कभी एकदम इस ओर और कभी उस ओर।

परन्तु अधिकांश परिवार धीरे-धीरे पुरानी और नयी जीवन-पद्धति के बीच कहीं अपनी स्थिति खोज रहे है। इस बीच के रास्ते को अपनाकर वे अपने पारिवारिक जीवन को दोनों अतिवादी छोरों में से किसी एक ओर बढ़ने से रोकने में मदद कर रहे है।

—२—

बच्चो पर केवल परिवार का ही प्रभाव नहीं पड़ता। घर से निकलते ही वे बस में सवार होकर स्कूल पहुँच जाते है।

स्थान . शरद की एक सुहावनी सुबह, अमरिका का एक नगर, मुख्य सड़क और उससे मिलने वाली दोनो ओर की अन्य सड़कों से बच्चो के दल के दल चले आ रहे हैं। अल्प आयु वाले आपस में बातचीत करते, उछलते-कूदते प्रसन्नचित्त बढ़े आ रहे है, किशोर इनसे कुछ गम्भीर हैं और अपने छोटे-छोटे समूहों में जा रहे है, हर एक के पास पुस्तकों का बण्डल है। अगले मोड़ से एक बड़ी पीली बस चली आ रही है, उसके साथ ही बच्चो से लदी निजी यानो व कारों की कतार चली आ रही है, बीच-बीच में साइकिल सवारो की ब्रिगेड भी रास्ता बनाती आगे बढ़ रही है।

यातायात-पुलिसमैन सबको रुकने या आगे बढ़ने का सङ्केत देता जा रहा है, वह अनेक लड़को और लड़कियो का मजाकिया ढङ्ग से अभिवादन कर रहा है, कभी-कभी पुलिस की वर्दी पहने कोई महिला इन बच्चो का मुस्कराकर स्वागत करती है—यह माँ है जो दिन में दो बार स्कूलो के समीप के चौराहों पर पुलिस की मदद करती है।

ये बच्चे वास्तव में भविष्य के लिए राष्ट्र की पूंजी हैं। भविष्य में वे ऐसी बड़ी-बड़ी इमारतों में प्रवेश करेंगे जिनमें बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ होंगी और नगर के विभिन्न भागों में खेल-कूद के लिए अच्छे मैदान होंगे। यह विशाल पैमाने पर फैली निःशुल्क पब्लिक स्कूल प्रणाली के लिए रोज की ही बात है। यह प्रणाली ऐसी है जिससे वह सांस्कृतिक विरासत, जो बुनियादी और बहुत महत्वपूर्ण समझी गयी है, नयी पीढ़ी को प्राप्त होती रहे। यह पश्चिमी देशों में युवकों की शिक्षा के प्रति वहाँ के लोगों की लगन, ध्यान और महत्वाकांक्षा का प्रतीक है। यह इस बात का सबूत है कि लोगों को अपने बच्चों की शिक्षा-दीक्षा की बहुत चिन्ता है।

इन पश्चिमी देशों में बच्चों और उनकी शिक्षा का अन्य देशों के मुकाबले विशेष ध्यान रखा जाता है। बच्चों के काफी बड़े बहुमत को बचपन में ही स्कूल जाने का अवसर मिल जाता है, एक प्रकार से उनका स्कूल जाना अनिवार्य-सा होता है। वहाँ यह प्रवृत्ति रही है कि स्कूली शिक्षा समाप्त करने की उम्र बढ़ायी जाय, ऐसी पक्की व्यवस्था कर दी जाय कि पन्द्रह-सोलह वर्ष तक शिक्षा का अवसर मिलता रहे और नौजवान कर्मचारियों की पढ़ाई जारी रहे और उनके लिए सायङ्कालीन स्कूल चलाये जायँ।

अधिक समृद्ध देशों में लोग काफी बड़ी उम्र तक स्कूलों में शिक्षा प्राप्त करते रहते हैं। समृद्धशाली अमेरिका में विद्यार्थियों का काफी बड़ा अनुपात माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर किसी न किसी प्रकार की उच्च शिक्षा प्राप्त करता है। वयस्क जनता इस प्रवृत्ति को अधिक मजबूत बनाना चाहती है। शिक्षा सबके लिए निःशुल्क करना मुख्य लक्ष्य है।

यह वास्तव में एक आध्यात्मिक लक्ष्य है। यह केवल नयी पीढ़ी से वयस्कों द्वारा निर्धारित व्यवस्था के पालन का प्रयत्न ही नहीं, कुछ और भी है। यह केवल नेताओं को कुछ आवश्यक क्षेत्रों में प्रशिक्षित करके जैसा कि अधिनायकवादी शासन व्यवस्था में किया जाता है, समाज की प्रगति करने की कोशिश के अलावा भी कुछ और है।

पश्चिमी जगत् के स्वतन्त्र देशों में गत पचास वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में जो भी प्रगति हुई है, उसमें सरकारों और वयस्क नागरिकों का दो गम्भीर आध्यात्मिक आदर्शों ने पथ-प्रदर्शन किया है।

प्रथम, सबके लिए शिक्षा की समान सुविधाएँ उपलब्ध करना। द्वितीय, व्यक्ति को अपना विकास करने के लिए हर सम्भव मौका देना। स्वतन्त्र देशों में गत पचास वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में जो भी नयी बात लागू की गयी या जो भी विकास हुआ, उसके लिए इन दो लक्ष्यों में से कोई एक प्रेरणा स्रोत रहा है।

समानता या शिक्षा की सुविधा का तात्पर्य सबको एक ही प्रकार की शिक्षा देना नहीं है। यह मतलब तब होता जबकि सभी बच्चों को एक ही तरह की शिक्षा देने की आवश्यकता होती। लेकिन उन्हें एक ही प्रकार की शिक्षा दिये जाने की आवश्यकता नहीं है। इसका तात्पर्य यह है कि सभी बच्चों को स्कूल जाने या शिक्षा प्राप्त करने का समान अवसर मिले। इसलिए अनिवार्य शिक्षा कानून है और इन कानूनों का उद्देश्य यही देखना है कि माता-पिता बच्चों को कम उम्र में ही काम पर न लगा दें। इसका यह भी मतलब है कि बड़े होने पर यदि उनका काम करना जरूरी हो तो उनके लिए निःशुल्क शिक्षा देने वाली रात्रि-पाठशालाएँ हैं, वयस्क शिक्षा पाठ्यक्रम है और स्केन्डिनेविया के सुप्रसिद्ध हाईस्कूल हैं जहाँ अवकाश के समय लोग शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

यदि कुछ बच्चे फेल हो जाते हैं, या स्कूल छोड़ना चाहते हैं और पुस्तकीय ज्ञान प्राप्त करने के लिए चली आयी परम्परागत शिक्षा-व्यवस्था उनके लिए उपयुक्त सिद्ध नहीं होती, या वे उसे पसन्द नहीं करते, तो इनके लिए व्यावहारिक एवम् व्यावसायिक पाठ्यक्रम रखे गये है और ऐसी शिक्षा देने वाले हाईस्कूल कायम किये गये हैं—विशेषकर अमेरिका में। परन्तु अब इस प्रकार के स्कूल अमेरिका से बाहर के देशों में भी कायम किये जाने लगे हैं।

समान अवसर देने और व्यक्ति को अपनी प्रतिभा एवम् योग्यता का पूरा-पूरा विकास करने का मौका देने के इस आदर्श से अनेक स्तरों पर छात्रवृत्तियों की व्यवस्था को विशेष प्रोत्साहन मिला है। यह समझा जाता है कि धन की कमी से बच्चों और जवानों को उनकी तरक्की और विकास के साधनों से वञ्चित न होने दिया जाय। ब्रिटिश पब्लिक स्कूल, जैसे हैरो और ईटन ने अपने मूल उद्देश्य को कायम रखने के लिए इस आधुनिक विधि का इस्तेमाल किया है। इनका मूल उद्देश्य श्रेष्ठ छात्रों को शिक्षा देना है। कालेज के छात्रों के लिए छात्रवृत्तियाँ और विभिन्न व्यावसायिक संस्थाओं एवं संस्थानों द्वारा स्कूलों और कालेजों को दान देने की प्रेरणा भी इसी आदर्श से प्राप्त हुई है।

इस बात की चिन्ता ने कि व्यक्ति विकास करे और समाज की तरक्की में योगदान करे, बच्चों की प्रवृत्तियों आदि के अध्ययन की आवश्यकता को जन्म दिया। बाल-प्रवृत्तियों के अध्ययन ने एक आन्दोलन का रूप धारण कर लिया और इससे कक्षा में अध्यापन के तरीकों आदि में काफी परिवर्तन आया है। १९२० से १९३० के बीच जान डीवी जैसे शिक्षाशास्त्रियों की शिक्षाओं के आधार पर 'प्रगतिशील शिक्षा आन्दोलन' चल पड़ा जिसको काफी बदनाम भी किया गया। अब यह महसूस होता है कि इस आन्दोलन के अनुसार स्कूलों में बच्चों में समानता के प्रश्न पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया गया। इसमें

इस बात पर बल दिया गया कि बच्चों की आवश्यकताओं का अध्ययन किया जाय, सभी विषयों के अध्यापन को और अधिक रुचिकर बनाया जाय, ऐसा प्रकट किया जाय कि बच्चों के लिए यह बहुत आवश्यक है। इसमें व्यक्ति की योग्यता तथा प्रतिभा पर अधिक ध्यान दिया गया और उन तरीकों को अपनाने पर बल दिया गया जिनसे व्यक्ति की इन प्रतिभाओं का विकास हो सके।

इस दिशा में अधिक जोश दिखाने से इसका कड़ा विरोध भी हुआ लेकिन यह विरोध इस आन्दोलन को अतलान्तिक के दोनों ओर और दुनिया के अनेक भागों में अपना व्यापक और स्थायी प्रभाव डालने से नहीं रोक सका। पचास वर्ष के अन्दर ही कक्षाओं का विशेषकर प्राथमिक स्कूलों की कक्षाओं का स्वरूप ही बदल गया, उनका वातावरण एकदम भिन्न हो गया, उनमें छात्रों को अधिक आजादी मिलने लगी, वे घर का सा अनुभव करने लगे, पहले की सी कड़ाई न रहकर उनमें परिवर्तनशीलता का गुण आ गया। बच्चे स्थापित समितियों के सदस्य व पदाधिकारी आदि के रूप में काम करते लगे, बहसें होतीं, स्कूल की ओर से छोटी-मोटी यात्राओं की योजना बनती, अब यह आवश्यक नहीं रहा कि बच्चे कक्षा में पढ़ाई आरम्भ होने से अन्त तक वहीं फर्श पर जड़े डेस्कों की कतारों में दिनभर बैठे रहें।

सभी लोगों के सभी प्रकार के बच्चे स्कूलों में आने लगे और जैसे-जैसे शहरों का आकार बढ़ता गया और उनकी समस्याएँ स्कूलों को भी प्रभावित करने लगीं, वैसे-वैसे सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना भी बढ़ने लगी। अध्यापकों को पता चला कि जौनी या मेरी के पास नाश्ते के लिए कुछ नहीं है, या उनका लञ्च पैकेट बहुत पतला है, उसमें अधिक चीजें नहीं हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार की ओर से 'स्कूल लञ्च आन्दोलन' चल पड़ा। इस बात की आवश्यकता महसूस की गयी कि अनेक विषयों की पढ़ाई की सुविधा चाहिए। इसके लिए पड़ोस के या ग्राम्य-क्षेत्रों के स्कूलों में पर्याप्त व्यवस्था नहीं हो सकती थी। स्कूल के इलाके या स्कूल-डिस्ट्रिक्ट का विस्तार किया गया और एक नये प्रकार के स्कूल का विकास हुआ जिसमें विभिन्न प्रकार के विषयों की पढ़ाई की व्यवस्था थी।

कक्षाएँ बड़ी-बड़ी हो गयीं, और छात्रों की संख्या अधिक होने से शिक्षकों को उनके सम्बन्ध में अधिक जानकारी नहीं रही, इसलिए प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा निर्देशन की आवश्यकता महसूस की गयी। इसने एक आन्दोलन का रूप ले लिया है जो धीरे-धीरे लेकिन मजबूती के साथ बढ़ता जा रहा है। स्कूल और घर की दूरी बढ़ गयी है, अब ऐसा नहीं है कि स्कूल में कुछ घण्टों के बाद छात्र घर पर पढ़ता हो। अब छात्रों के माता-पिता को स्कूल में बुलाया जाता है, उनसे

परामर्श किया जाता है और मदद की जाती है। इससे 'अभिभावक-शिक्षक' आन्दोलन चल पड़ा है।

आज की स्कूली दुनियाँ १९०८ के सामान्य कस्बों या गाँवों से कितनी भिन्न है! तब जूनियर हाईस्कूल का नाम भी लोगों ने नहीं सुना था, केवल कुछ ही स्थानों पर ऐसे स्कूल थे और उन स्थानों के लिए भी यह स्कूली-सङ्गठन की एक बिलकुल नयी सूझ थी। शरद् काल में बच्चे पैदल स्कूल जाते और पैदल वापस आते, विश्राम के समय वही पुराने खेल खेलते, तब स्कूल के अहातों में आज की तरह झूले इत्यादि नहीं लगे थे। नैतिकता की शिक्षा की मैकगुफे परम्परा अभी काफी मजबूत थी। कोई चीज बरबाद न करो, किसी चीज की इच्छा न करो—की कहानी कण्ठस्थ कराई जाती थी।

पढ़ने का मतलब था अपने डेस्क के पास खड़े होकर जोर-जोर से पढ़ना, इससे कोई मतलब नहीं था कि पढ़ने में हर अक्षर पर नजर टिकती है या नहीं अथवा जो पढ़ा वह समझ में आता भी है या नहीं। शुक्रवार का दिन भाषणों का दिन होता और टेनीसन और लांगफैलो की रचनाओं को जोर-जोर से पढ़ा जाता। गम्भीर विषयों पर छात्रों के भाषण होते।

वह दुनियाँ भी बहुत खुशनुमा थी, उसमें कोई बनावट नहीं थी, वह सीधी-सादी थी। वैज्ञानिकों को पैदा करने में सोवियत सङ्घ ने अन्य सबको मात दे दी, इससे तब उसको कोई परेशानी नहीं थी। योग्यता-छात्रवृत्ति की परीक्षाओं के लिए किशोर छात्र-छात्राओं की चिन्ता और कालेज बोर्डों की परेशानी से वे प्रायः मुक्त थीं।

लेकिन अब कौन पीछे लौटना चाहेगा? अपने तमाम दोषों के बावजूद पश्चिमी राष्ट्रों के स्कूल आज जितने अच्छे हैं, उतने पहले कभी नहीं थे। इन स्कूलों ने इस जटिल दुनियाँ और विभिन्न प्रकार की जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए असाधारण कार्य किया है। दो विश्वयुद्ध हो चुके हैं और इनसे कुछ कमियों का पता चला, लेकिन ऐसे नौजवान भी सामने आये जिन्होंने इनकी चुनौतियों का बहुत शानदार ढङ्ग से मुकाबला किया। आलोचकों के बावजूद यह कहा जा सकता है कि गणित पहले से कहीं अच्छी तरह पढ़ाया जाता है। विज्ञानों के अध्ययन की ओर अधिक ध्यान दिया जा रहा है, इस क्षेत्र में प्रोत्साहन मिला है और निरन्तर सुधार किया जा रहा है। बच्चों का अधिक समय स्कूल में बीतता है, उनको अध्ययन के लिए, यात्रा के लिये और अन्य देशों के सभी वर्गों के छात्रों से मिलते-जुलते रहने के लिए पहले की अपेक्षा बहुत अधिक सुविधाएँ प्राप्त हैं, उन्हें इस बात का मौका मिलता रहता है। आज ऐसे हजारों छात्र कालेजों में प्रवेश पाते हैं जो पहले इसकी कल्पना

भी नहीं कर सकते थे। अन्तर्राष्ट्रीय बाल-कला प्रतियोगिताओं, एवम् प्रदर्शनियों, अखिल देशीय सङ्गीत सम्मेलनों, संग्रहालयों की यात्राओं; पुस्तक-मेलों आदि के रूप में सांस्कृतिक अभिरुचियों का भी विकास हो रहा है।

आज अमेरिका में विशेषकर दक्षिणी राज्यों की स्कूली-व्यवस्था को जातीय-एकता की जबरदस्त चुनौती का सामना करना पड़ रहा है। दूसरी ओर नागरिक अब भी स्कूलों की आलोचना करते हैं, उनकी शिकायत है कि प्रायः सभी बुनियादी विषयों की पढ़ाई ठीक तरह से नहीं की जाती, लेकिन यह पचास वर्ष से भी अधिक पुरानी परम्परा है। आज इस प्रकार की आलोचना का स्वागत नहीं किया जाता है क्योंकि इसे जनता की शिक्षा के मामलों में सक्रिय दिलचस्पी का प्रतीक समझा जाता है, इससे सतर्क शिक्षाविदों और अभिभावकों को इस बात का मूल्याङ्कन करने का अवसर मिलता है कि स्कूलों में क्या हो रहा है। साथ ही उन्हें सुधार के लिए काम करने की प्रेरणा भी मिलती है।

जहाँ स्कूलों की अभी तक कमी बनी हुई है, वहाँ स्कूल से अधिक मूल्यवान् और कोई चीज नहीं हो सकती। इस अर्द्धशताब्दी की एक उत्साहवर्द्धक बात यह है कि उन देशों में भी निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की जाने लगी है जहाँ पहले नहीं थी। आज मानवजाति के पास अपने बच्चों और अपने नौजवानों के लिए केवल यही लक्ष्य है कि उन्हें शिक्षा के लिए समान अवसर प्राप्त हों, प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता का विकास करने के लिए हर सम्भव मौका मिले जिससे वह पूरे समाज के कल्याण के लिए भरपूर योगदान कर सके।

—२—

स्कूल के बाद गिरजाघर, यह दूसरी मञ्जिल है। व्यक्ति अपने पसन्द की धार्मिक संस्था के अधीन भविष्य के लिए आध्यात्मिक निर्देशन प्राप्त करने की कोशिश करता है और ये धार्मिक संस्थाएँ अथवा विभिन्न चर्च-सङ्गठन भविष्य में परस्पर अधिकाधिक एकता की आशा लगाये हुए हैं।

ईसाई समाज में, एकता की दिशा में, पचास वर्ष पूर्व अमेरिका में प्रोटेस्टेन्ट चर्चों ने बहुत साहस का कदम उठाया। दिसम्बर १९०८ में अमेरिका में 'फेडरल कौंसिल आफ दि चर्चेज आफ क्राइस्ट' की स्थापना की गयी।

यह कार्य, जिसका बाद में दुनियाँ में अन्यत्र भी प्रभाव पड़ा, एक दिन का कार्य नहीं था। चर्च ईसाई समाज की एकता के लिए वर्षों से सोच रहे थे और इस दिशा में उनका प्रयत्न जारी था। इस रूप में वह सङ्गठन वास्तव में वर्षों

की इस लगन का प्रतिनिधित्व करता है। इससे पहले भी विभिन्न धार्मिक नेताओं ने विभिन्न रूपों में अपनी उस इच्छा को व्यक्त किया था।

१८६७ में विभिन्न धार्मिक सङ्गठनों के लोगों ने अमेरिकन इवान्जेलीकल एलायन्स की नींव डाली थी। फेडरल कौंसिल उसी का अगला स्वरूप है और इस दृष्टि से इसे भूतपूर्व अलायन्स से अधिक उन्नत कहा जा सकता है कि इसका निर्माण चर्च की साधिकारिक स्वीकृति से किया गया।

१९०५ में जब अमेरिकी चर्च गए नयी फेडरल कौन्सिल के लिए, विधान तैयार करने के लिए, मिले तो उस समय फ्रान्स में भी फ्रान्सीसी प्रोटेस्टेन्ट मतावलम्बी फ्रान्सीसी प्रोटेस्टेन्ट फेडरेशन की स्थापना कर एकता कायम करने की कोशिश कर रहे थे।

फ्रान्सीसी कौन्सिल को बने तीन वर्ष होते-होते नये अमेरिकी गुट के विधान को अन्य सम्बद्ध चर्च सङ्गठनों ने स्वीकार कर लिया और १९०८ में फेडरल कौन्सिल साधिकारिक संस्था बन गयी।

यह सङ्गठन इतना महत्वपूर्ण था कि विश्वचर्च परिषद् (वर्ल्ड कौन्सिल आफ चर्चेज) भी इसी के अनुसार सङ्गठित हुई। यह परिषद् १९४८ में आम्स्टरडम में बनायी गयी। एक ईसाई इतिहासकार ने 'चर्चों के बीच सहयोग के इस अपूर्व और महान् प्रयोग' के लिए सारा श्रेय अमेरिकन कौंसिल को दिया है।

पचास वर्ष पूर्व जब फेडरल कौन्सिल की तीस प्रोटेस्टेन्ट संस्थाओं ने, जिनके प्रधान कार्यालय न्यूयार्क में थे, संयुक्त प्रार्थना सभा में भाग लिया तो इस घटना को 'दि क्रिश्चियन साइन्स मानीटर' ने अपने प्रथम पृष्ठ में प्रकाशित किया। उस समय 'दि क्रिश्चियन साइन्स मानीटर' को प्रकाशित हुए केवल बारह दिन ही हुए थे।

चर्च सामाजिक व्यवस्था के प्रति अपना उत्तरदायित्व अनुभव करने लगा था और इसका सबूत था 'मानीटर' में प्रकाशित ७ दिसम्बर १९०८ की फिलाडेल्फिया असेम्बली की कार्रवाई का विवरण। इसमें बताया गया था कि असेम्बली ने 'तीन महत्वपूर्ण विषयों' पर विचार किया और ये विषय थे— 'मद्यनिषेध, तलाक और जातीय आत्महत्या।'

ऐसे समय जबकि १९वीं सदी के उत्तरार्द्ध का मद्यनिषेध आन्दोलन फिर लोकप्रिय बन रहा था, फेडरल कौन्सिल की मद्यनिषेध समिति ने अनुरोध किया कि "दूकानों में पूर्ण मद्यनिषेध व्यवस्था लागू की जाय और शराब का व्यवसाय खत्म किया जाय।"

कौन्सिल की कमेटी द्वारा शराब के व्यापार की जोरदार शब्दों में निन्दा किये

जाने के बाद पचास वर्षों में शराब की समस्या इस हद तक बढ़ गयी कि चर्चों को फिर फरवरी १९५८ में एक कड़ा वक्तव्य जारी करना पड़ा। शराब के सम्बन्ध में कौन्सिल ने इतने कड़े वक्तव्य कम ही दिये हैं।

इस बार यह केवल पुरानी फेडरल कौन्सिल के अधीन बने उन सङ्गठनों तक ही सीमित नहीं रहा जो कि प्रचार-कार्य कर रहे थे। १९५० में फेडरल कौन्सिल ने सात अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर अमेरिका में एक 'नेशनल कौन्सिल आफ दि चर्चेज आफ क्राइस्ट' की स्थापना की।

इस संस्था में अब ३४ चर्चों का प्रतिनिधित्व प्राप्त है और इनकी कुल सदस्य संख्या ३७, ८७०,००० है। इसका सम्बन्ध ९०० से अधिक राज्य एवम् स्थानीय परिषदों से और दो हजार पादरी सङ्गठनों से है।

१९५८ का 'चर्च और शराब' विषयक घोषणा पचास वर्ष पूर्व की समस्याओं की तुलना में भिन्न है। १९०८ में माँग की गयी थी कि शराब का व्यापार बन्द कर दिया जाय लेकिन अब इसके बजाय शराबखोरी से उत्पन्न समस्याओं, शराबियों के प्रति चर्च का रुख और चर्चों द्वारा शराबबन्दी के सम्बन्ध में प्रचार, आदि पर जोर दिया गया। यह समझा गया कि जनता को शराब की हानियों से अवगत करने का कार्य चर्च को सँभालना चाहिए।

राष्ट्रीय परिषद् का निर्माण फेडरल कौन्सिल में निम्नलिखित विशेषज्ञ-सङ्गठनों को विलय करके किया गया :—दि फारेन मिशन्स कान्फ्रेन्स आफ नार्थ अमेरिका, दि होम्स मिशन्स कौन्सिल आफ नार्थ अमेरिका, दि इन्टर नेशनल कौन्सिल आफ रिलिजस एज्यूकेशन, दि नेशनल प्रोटेस्टेन्ट कौन्सिल आफ हायर एज्यूकेशन, दि मिशनरी एज्यूकेशन मूवमेंन्ट आफ दि यूनाइटेड स्टेट्स एण्ड कनाडा, दि यूनाइटेड स्टीवार्डशिप कौन्सिल और दि यूनाइटेड कौन्सिल आफ चर्च विमेन।

जिन धार्मिक नेताओं ने क्रिश्चियन चर्चों में अधिकाधिक सहयोग की प्रवृत्ति का अध्ययन किया है। उनका मत है कि चर्चों की एकता का यह आन्दोलन गत पचास वर्षों में विकसित हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि अमेरिका और अन्य देशों में ईसाई समाज की एकता की ओर बढ़ने वाले अधिकांश सङ्गठन १९०८ के बाद अपने से बड़े सङ्गठनों में मिलते चले गये।

एक पक्ष का प्रतिनिधित्व विश्वमिशनरी सम्मेलन करता है जो १९१० में एडिनबरा में हुआ। अन्य स्थानों के बजाय स्वयं मिशन के अपने क्षेत्र में "विभक्त चर्च" के दोष अधिक स्पष्ट रूप से उभरे और तब एकता की अत्यन्त आवश्यकता महसूस की गयी। यह समझा गया कि यह एकता कायम करना अनिवार्य है।

१९वीं सदी में यूरोप और अमेरिका ने मिशनों के द्वारा ईसाई मत का प्रसार करना चाहा लेकिन इससे "विभक्त मिशन" का ही प्रसार हुआ। गैर ईसाई जगत् के साथ मुकाबला होने पर विभिन्न मिशनों को यह मालूम हुआ कि उनका अलग-अलग रहकर पृथक् सङ्गठनों के रूप में कार्य करना कितनी बेहूदी बात है। ईसाई बनाना बहुत बड़ी उपलब्धि थी, लेकिन दीक्षित (धर्म-परिवर्तन) किये हुए व्यक्ति से यह आशा करना कि वह अपने को बैपटिस्ट समझे या मैथोडिस्ट समझे या प्रोटेस्टेण्टों के अनेक भेदों में से किसी एक प्रकार का समझे, बहुत विचित्र बात थी। यह वास्तव में उसके साथ ज्यादती करना ही कहा जा सकता है।

इस बात को ध्यान में रख कर एडिनबरा में हुए मिशनरी सम्मेलन में ईसाई अपरान की एकता की आवश्यकता पर बल दिया गया। अमेरिका में, इस एकता की भावना से प्रेरित व्यक्तियों ने इसमें आवश्यक सहायता पहुँचायी और प्रोत्साहन दिया। इसने एक वर्ष के अन्दर ही अनेक नामधारी ईसाई सङ्गठनों ने ईसाई एकता पर विचार करने और इसके लिए मार्ग सुझाने को आयोग नियुक्त किये।

एडिनबरा से प्रवाहित इस धारा ने बाद में 'फेथ और आर्डर मूवमेण्ट' के रूप में ठोस रूप धारण कर लिया। इसका सम्मेलन १९२७ में लोसाने, स्विटजरलैण्ड में हुआ। प्रथम विश्व युद्ध ने चर्चों का ध्यान एक दूसरे के "ऐतिहासिक, आराधना के नियमों और मतों से सम्बन्धित भेदों" की ओर आकृष्ट किया। वे इन भेदों पर विचार करने लगे क्योंकि सङ्गठन की एकता के लिए यह बुनियादी बात थी।

इसी बीच समाज के प्रति चर्च के उत्तरदायित्व का सिद्धान्त धीरे-धीरे आकार ले रहा था। पुरातन व्यवस्था को पुनर्जीवित करने के आन्दोलन का १९वीं सदी के उत्तरार्द्ध में ह्रास होने लगा था। इस आन्दोलन के आलोचकों ने अनुरोध किया कि चर्च के अन्दर परिवर्तन धीरे धीरे लाया जाय, इसमें शीघ्रता न की जाय। इसके साथ ही चर्च को एक सामाजिक सन्देश की भी आवश्यकता है जिससे वह औद्योगीकरण द्वारा लायी गयी उन समस्याओं का, जो वैसी ही चुनौती लिए हुए हैं, जिनका पुरातन व्यवस्था को पुनर्जीवित करने वालों को सामना करना पड़ा था, हल कर सकें।

सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में इस दिलचस्पी को 'लाइफ एण्ड वर्क मूवमेन्ट' में अभिव्यक्ति मिली। इसका प्रथम विश्व सम्मेलन १९२५ में स्टाकहाम में हुआ।

बाद के ये दोनों आन्दोलन बराबर बढ़ते गये और १९४८ में जब विश्व

चर्च परिषद् कायम की गयी तब इनका उसमें विलय कर दिया गया। राष्ट्रीय मिशन जिनका प्रतिनिधित्व अन्तर्राष्ट्रीय मिशनरी कौन्सिल करती है, विश्व चर्च परिषद् के सहयोगी सङ्गठन के रूप में हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय मिशनरी कौन्सिल का सम्मेलन १९५८ में घाना में हुआ और उसमें विश्व के विभिन्न मिशनों ने विश्व चर्च परिषद् में विलय होने का निश्चय किया। यह विलय १९६१ में पूर्ण होगा।

ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे गत पचास वर्षों में धार्मिक नेताओं की ईसाई एकता के लिए तैयार किया जा रहा था। १९५७ में उत्तरी अमेरिका के अनेक क्रिश्चियन चर्चों ने ईसाई जगत् के इतिहास में सबसे बड़ी और महत्वाकांक्षी परियोजना लागू करने में सहयोग दिया। उन्होंने अध्ययन के लिए यह सवाल पेश किया, "हम किस प्रकार की एकता चाहते हैं ?" इस अध्ययन क्रम का चरमबिन्दु थी उत्तरी अमेरिका की 'फेट एण्ड आर्डर स्टडी कान्फ्रेन्स' जो सितम्बर १९५७ में ओबर्लिन, ओहियो में हुई।

—४—

घर, स्कूल और धर्म पारिवारिक जीवन का केन्द्र तो है, लेकिन उसका भावी विकास इनकी परिधि के अन्दर ही सीमित नहीं रहता। व्यक्ति उनकी परिधि से बाहर निकलकर विश्व सम्पर्क कायम करता है।

मनुष्य आज एक-दूसरे के जितने निकट आ गया है उतना इससे पहले कभी नहीं था। उसको एक-दूसरे से सम्पर्क कायम करने के लिए कई सप्ताह और महीनों की यात्रा करनी पड़ती थी। लेकिन गत अर्ध शताब्दी में यह दूरी कुछ दिनों और घण्टों में बदल गयी है। आज जब हम अपने रेडियो टेलीविजन का स्विच खोलते ही हजारों मील दूर के व्यक्ति को देखते है और उसकी बात सुनते हैं तो हमें इससे कोई आश्चर्य नहीं होता। सदियों से मनुष्य चाँद-सितारों तक पहुँचने की कल्पना करता रहा लेकिन आज आधुनिक आविष्कारों ने यह कल्पना सम्भव बना दी। अब यह चाँद सितारे मनुष्य की पहुँच से दूर नहीं रहे।

यह सब होते हुए भी क्या मनुष्य वास्तव में एक-दूसरे के निकट आ सका है ? राष्ट्र क्या परस्पर इस निकटता का अनुभव करते है ? यह निकटता है क्या चीज ?

यह सम्भव है कि दो व्यक्ति पास बैठे हों लेकिन उनमें से एक के विचार हजारों मील दूर की किसी बात पर केन्द्रित हो सकते हैं। इससे समीप बैठे होने के बावजूद वह उतनी ही दूर होता है जितनी दूर उसके विचार। यह दूरी ऐसी

है जिसे मीलों में नहीं नापा जा सकता और ऐसी निकटता भी है जिस पर मीलों की दूरी का कोई असर नहीं पड़ता।

पिछले इन पचास वर्षों में जिनमें दो विश्व-युद्ध हो चुके हैं और अनेक छोटे-मोटे सङ्घर्ष होते रहे हैं, मनुष्य एक-दूसरे के निकट आने में कितना सफल हुआ है?

यह कम आश्चर्य की बात नहीं कि स्थायित्व की पुरानी मान्यताओं के छिन्न-भिन्न होने और देश की सीमाओं में जबरदस्त हेरफेर हो जाने के बावजूद जैसे-जैसे मनुष्य मानवता के व्यापक सिद्धान्त की परिधि में सिमटता आ रहा है, उसकी पारस्परिक दूरी कम होती जा रही है और निकटता आती जा रही है।

लोग एक-दूसरे की सहायता करने के लिए मिलकर प्रयास करते हैं। इसका यह कारण नहीं कि वह एक ही परिवार के हैं या एक ही समुदाय के हैं या एक ही देश के हैं। इसका कारण केवल यह भावना है कि दूसरे लोग सङ्कट में हैं। इस प्रकार की एकता की प्रेरणा वास्तव में एक आध्यात्मिक प्रेरणा ही होती है चाहे उसे वह स्वीकार वास्तव में करें या न करें। यह वास्तव में मानव-मात्र के प्रति प्रेम का ही भाव है जो इस दिशा में प्रेरित करता है।

न्यूयार्क में संयुक्त राष्ट्रसङ्घ की इमारत का शिलान्यास करते हुए, जो विशेष रूप से शीशे का भवन है, राष्ट्रसङ्घ की महासभा के अध्यक्ष, फिलिपीन के प्रतिनिधि जनरल कार्लो पी० रोमुलो ने अब्राहमलिङ्कन के उन शब्दों को दुहराया था जो उन्होंने १८६० में गृह-युद्ध से जर्जर राष्ट्र को सम्बोधित करते हुए कहे थे। उन्होंने कहा था, "हम शत्रु नहीं हैं, मित्र हैं। हमें शत्रुता का भाव नहीं रखना चाहिए। यह सम्भव है कि भावनाएँ उबाल खा गयी हों और क्रोध सीमा लाँघ गया हो लेकिन उनसे हमारे पारस्परिक स्नेह के बन्धन नहीं टूटने चाहिए। जब क्रोध शान्त होगा और विवेक जागेगा तो युद्ध के मैदानों और देश-भक्तों की समाधि से जुड़ी वे रहस्य-पूर्ण स्मृतियाँ निश्चय ही एक बार फिर उभरेंगी। इस विशाल देश के प्रत्येक प्राणी व प्रत्येक परिवार को प्रभावित करेंगी और एक बार फिर देश की महान् एकता का गीत देश भर में गूँज जायेगा।"

१९५८ में मेरीलैंड में भाषण करते हुए जनरल रोमुलो ने इन्हीं शब्दों को फिर दोहराया था। उन्होंने कहा, "मुझे ऐसा महसूस होता है कि जैसे यह वाणी इतिहास के साथ-साथ आगे बढ़ती जा रही है, क्योंकि इसने निरन्तर मार्ग-दर्शन किया और आज भी हमारे साथ है। संयुक्त राष्ट्रसङ्घ का घोषणा-पत्र, जिसकी एक प्रतिलिपि नींव के पत्थर के साथ सुरक्षित रखी गयी है, वास्तव में सभी राष्ट्रों को यह उद्बोधन है कि 'शत्रु भाव त्यागो और मित्र बनो।' यह मानव-मात्र में बन्धुत्व की भावना और मानव परिवार की कभी भङ्ग न होने वाली एकता का करारनामा है।"

उन्होंने यह भी बताया कि मानव की स्वतन्त्रता या बुनियादी अधिकारों के सवाल पर संयुक्त राष्ट्रसङ्घ के अन्तर्गत सभी राष्ट्र समान उद्देश्य की भावना से प्रेरित हो स्वेच्छा से एक-दूसरे के समीप आये हैं। कोई भी समझौता, चाहे वह कितना ही पक्का क्यों न माना जाय, इसका मुक़ाबला नहीं कर सकता और न इसमें किसी प्रकार का सुधार ही कर सकता है।

जब परिवार एक मजबूत इकाई थी और सभी सदस्य सुरक्षा के लिए रीति-रिवाजों तथा परम्परा से तथा पारस्परिक सहयोग और समर्थन के लिए एक-दूसरे से बँधे हुए थे तब भी इस पारिवारिक इकाई की एक सीमा थी जहाँ उसके उत्तर-दायित्व का अन्त हो जाता था।

परन्तु तब से दुनियाँ में भारी परिवर्तन हुआ है और पारिवारिक जीवन का पुराना ढाँचा बिखर गया है। उदाहरण के लिए, जापान में परिवार की सीमा में सभी निकट सम्बन्धी शामिल रहते थे। यदि कोई स्त्री विधवा हो जाती तो वह अपने माता पिता के पास लौट आती थी। यदि किसी को दुर्भाग्य की मार सहनी पड़ी या उसे मदद की आवश्यकता हुई तो वह आश्रय के लिए अपने परिवार पर भरोसा रख सकता था। अब परिवार में कानूनी-तौर पर माता-पिता और बच्चे शामिल समझे जाते हैं। जो पहले आवश्यकता पड़ने पर अपने परिवार से सहायता की अपेक्षा कर सकते थे, उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अब कानून बनाने की माँग की जा रही है। एक-दूसरे की सहायता करने के लिए नागरिकों को अब अधिक व्यापक आधार पर सहयोग करना चाहिए।

एशिया और यूरोप के कुछ हिस्सों में जहाँ गत दो दशाब्दियों में बड़ी संख्या में लोगों को अपने घर द्वार छोड़ने को मजबूर होना पड़ा, और परिवार बिखर गये। लाखों लोगों को जिन्दा रहने के लिए उनके आश्रय में जाना पड़ा जो उनके परिवार के नहीं हैं।

पारिवारिक इकाई को यद्यपि अब भी काफी पसन्द तो किया जाता है फिर भी अब वह परिवार के स्थायित्व का आधार नहीं रही। आवश्यकताओं को देखते हुए सहायता और पुनर्वास की व्यवस्था को अपर्याप्त समझा जा सकता है परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि न्याय, स्वतन्त्रता और दया की भावना ने ही इस व्यवस्था के लिए प्रेरित किया। इन भावनाओं से ही मनुष्य एक-दूसरे की सहायता के लिए सहयोग कर रहा है। चिन्ता का विषय वास्तव में मानव परिवार है और उसको सङ्गठित करने की ताकत प्रेम और मानवता के प्रति दया का भाव है।

दुनियाँ भर में ऐसे स्त्री-पुरुष जो अन्य लोगों की आवश्यकताओं और आकांक्षाओं को समझते हैं, मानव परिवार की सहायता के उद्देश्य से प्रभावित होकर स्वय ही ऐसे कदम उठाने को विवश हो जाते हैं जिनसे इस महान् उद्देश्य को

अभिव्यक्ति मिल जाती है। १९४८ से १९५२ तक इक्वेडोर के राष्ट्रपति डा० गेलो प्लाजा लासाने, जो अमरीका में राजदूत रह चुके थे और बाद में लेबनान के लिए राष्ट्रसङ्घीय पर्यवेक्षक दल के अध्यक्ष थे, अपनी ही इस्टेट के परिवारों के बीच समाज-सेवा शुरू करके अन्य लोगों के कल्याण के लिये अपनी चिन्ता को अभिव्यक्त किया।

उनके कार्य से प्रभावित होकर उनकी पुत्री लुज एवेलिना प्लाजा के मन में भी दूसरों की सहायता का भाव जगा। उन्होंने अपने देश, फिर अमेरिका और यूरोप में इस सम्बन्ध में व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त की और अब क्विटो में महिलाओं के बीच सेवा-कार्य कर रही हैं।

ईरान में, अमेरिका के लड़के और लड़कियों के '४ एच० क्लबों' की तरह के '४-डी क्लब' हैं। ईरान सरकार के पारिवारिक आर्थिक प्रसार-कार्यक्रम की राष्ट्रीय सुपरवाइजर श्रीमती इज्जत अधेवली अपनी बीस सहायक युवतियों के साथ गाँवों में रहती हैं और अमेरिका के ग्राम्य-जीवन में सुधार के लिए जो तरीके अपनाये जाते हैं, उसी विधि से ईरानी ग्राम्य-जीवन का स्तर ऊँचा उठाने में सहायता कर रही हैं। इससे प्रकट होता है कि मानव-कल्याण के प्रति मनुष्य की दिलचस्पी बढ़ने के साथ ही एक देश के अनुभवों का लाभ उठाकर दूसरे देश के परिवारों की सहायता की जा सकती है।

आधुनिक समाज में अनेक पुरानी मान्यताएँ लुप्त हो गयी हैं और नये समाज को अपने लिए नये मूल्यों और नये आधारों की खोज के लिए विवश होना पड़ा है। यह सम्भव है कि नये आधार कुछ कमजोर प्रतीत हों लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि ये अतीत की कृत्रिम मान्यताओं से अधिक ठोस हैं।

अनेक देशों में माता पिता दोनों ही किसी व्यापार या किसी उद्योग में काम करते हैं। वे अपने हितों का परस्पर विलय कर एक नये प्रकार के सहयोग को जन्म देते हैं, जिसमें प्रत्येक दूसरे की जिम्मेदारियों के निर्वाह में अधिक से अधिक हाथ बँटाता है। वे समुदाय के प्रति और परिवार पर समुदाय के प्रभाव के प्रति पूर्ण सजग होते हैं। वे यह भी जानते हैं कि उनका परिवार समुदाय को प्रभावित करता है। इसलिए वे अपने घेरे से बाहर निकल कर अपने विचारों और ताकत से उस क्षेत्र के सुधार में योगदान करते हैं। वे समान विचार वाले पड़ोसियों के साथ मिलकर एक-दूसरे की और स्वयं अपनी सहायता करते हैं। उनकी एकता समान उद्देश्य की प्राप्ति की लगन पर आधारित होती है।

अमेरिका में इस प्रकार के सहयोग से अनेक युवक-केन्द्रों, पुस्तकालयों, खेल के मैदानों और अन्य अनेक नागरिक सुविधाओं का विकास हुआ है।

परन्तु एक परिवार में, समुदाय, राष्ट्र या राष्ट्रों के परिवार में उद्देश्यों और

महत्वाकांक्षाओं में परस्पर विरोध हो सकता है और इन विरोधों को कम भी किया जा सकता है। पर की दीवारें, समुदाय की परिधि और राष्ट्र की सीमा, लोगों को एकताबद्ध नहीं कर सकती। लेकिन कुछ ऐसे बन्धन होते हैं जो इस विभिन्नता के बावजूद लोगों को एक रखते हैं और यह बन्धन वास्तव में मानव जाति के कल्याण के समान उद्देश्य से ही विकसित होते हैं। प्रेम, दया और दान की भावना ही इनको जन्म देती है। यह भावना बाहर से नहीं आती वरन् दिलों में पैदा होती है, अर्थात् घरों में ही इनको जन्म मिलता है और फिर वहां की सीमा पार कर यह अधिक व्यापक हो जाती है।

—५—

भावना के इस प्रसार को भौगोलिक या राजनीतिक सीमाएँ नहीं रोक सकती। यह कम्युनिस्ट जगत् में भी है और स्वतन्त्र जगत् में भी।

सर विन्स्टन चर्चिल ने युद्ध के बाद के अपने महत्वपूर्ण भाषणों में से एक में कहा था :—

"कानून, चाहे वह न्यायसङ्गत हो या न हो, लोगों की कार्रवाई का सञ्चालन कर सकते हैं। अत्याचारी शासन उनके विचारों पर नियन्त्रण रख सकते हैं या उनको अपने मन-मुताबिक बनाने की कोशिश कर सकते हैं। प्रचार के द्वारा उनके दिमागों में झूठी बातें भर सकते हैं, और कई पीढ़ी तक उन्हें सच्चाई से दूर रख सकते है। लेकिन मनुष्य की आत्मा को, जो इस प्रकार संज्ञाशून्य और मृत प्राय कर दी गयी है, एक चिनगारी से जगाया जा सकता है और क्षण भर में झूठ और दमन पर आधारित पूरा ढाँचा ढह जाता है। ईश्वर ही जानता है कि यह चिनगारी कहाँ से आती है। दासता के बन्धन में जकड़े लोगों को कभी निराश नहीं होना चाहिए।"

इन शब्दों का बहुत गूढ़ अर्थ है। यह इतिहास का सबक है, आज का आश्वासन और भविष्य के लिए आशा की मशाल है। यह बात ३१ मार्च १९४६ को कही गयी थी जब कि स्तालिनवाद अपने पूरे जोर पर था और कम्युनिस्ट जगत् में आतङ्क, अत्याचार और गुलामी का ऐसा भयङ्कर शासन था कि अनेक लोगों को तो यह आश्चर्य होता था कि पूर्वी योरप की जनता के दिलों और विचारों में आजादी की कोई चिनगारी शेष रह भी गयी है या नहीं।

परन्तु इस बात को कहे हुए चार वर्ष से कुछ ही अधिक समय बीता था कि कम्युनिस्ट निमन्त्रित पूर्वी जर्मनी की जनता उठ खड़ी हुई और मास्को के इशारों पर चलने वाले अपने शासकों के विरुद्ध उसने विद्रोह किया। फिर साढ़े सात वर्ष

के अन्दर ही पोलैंड ने सोवियत नियन्त्रण से काफी हद तक स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली। हङ्गरी ने तो, चाहे वह कुछ दिन ही रही, लेकिन पूर्ण आजादी प्राप्त कर ली और लाल सेना के गुलामी के बन्धनों को तोड़ फेंका।

१९५८ में जब कि यह पुस्तक लिखी जा रही है, परिस्थितियाँ १९५३ और १९५६ की घटनाओं के बाद फिर प्रतिकूल होती गयी। पोलैंड को अपनी आजादी का कुछ अंश छोड़ने पर मजबूर होना पड़ा जब कि हङ्गरी में पुनः सोवियत साम्राज्यवाद हावी हो गया और उसे पाशविक दमन सहना पड़ा।

फिर भी, सन्देश स्पष्ट है और उसमें किसी प्रकार की भ्रान्ति नहीं हो सकती। जैसा कि सर विन्स्टन ने कहा है, दासता के बन्धन में जकड़े लोगों को निराश होने की आवश्यकता नहीं। मानव-जाति के आजादी और न्याय के अधिकारों की जानकारी, आदर्शों और आकांक्षाओं के उत्थान और सारी मानव-जाति के दिमागों में विचारों की जो उथल-पुथल मची हुई है उससे यह निश्चित है कि अन्त में न्याय की अवश्यक विजय होगी और अत्याचारों का अन्त हो जायेगा।

पूर्व वर्णित, हङ्गरी, पोलैंड और अन्य स्थानों की घटनाएँ इस बात को सिद्ध करती हैं कि कितना ही दमन किया जाय चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक, वह चिनगारी नहीं बुझ सकती जिसकी बात सर विन्स्टन ने कही और जो अन्त में आतङ्क और अत्याचार को समाप्त करके छोड़ेगी।

यह काफी पहले स्पष्ट हो गया था कि कम्युनिस्ट जगत् के अन्दर भी विचारों की उथल-पुथल मची हुई है। यह बात जितनी सोवियत सङ्घ पर लागू होती है उतनी ही उसके पिछलग्गू देशों पर भी। विचारों की इस उथल-पुथल का क्या परिणाम निकलेगा, यह अभी नहीं कहा जा सकता। परन्तु जो प्रमाण मिले हैं, उनके आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि आगे चलकर वहाँ की जनता को अधिक आजादी और लोकतन्त्र का लाभ मिल सकेगा।

यद्यपि यह विचार-सङ्घर्ष जनता को सभी क्षेत्रों में उसी दिशा में आगे नहीं ले जा रहा है जिसकी पश्चिमी लोकतन्त्र माँग करते रहे हैं, फिर भी यह बात कही जा सकती है। यह भी सही है कि इस विचार-सङ्घर्ष से यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि निकट भविष्य में कम्युनिस्ट जगत् में कोई बड़े परिवर्तन होंगे, फिर भी यह कहा जा सकता है कि परिवर्तन असम्भव नहीं है।

यह स्पष्ट है कि विचारों को पूर्णतया नियन्त्रित रखने की कोशिश के बाद भी लोग अपने स्वतन्त्र विचारों के अनुसार कार्य करने पर जोर देते हैं, आज सेन्सर करने की कोई भी विधि पूर्णतया सफल नहीं हो पाती। सत्य को जानने-समझने की इच्छा व्यक्ति या क्षेत्र तक सीमित न रहकर व्यापक हो गयी है।

यदि केवल सोवियत राष्ट्र की स्थिति पर ही विचार किया जाय तो मालूम होगा कि वहाँ जो उथल-पुथल मची हुई है, उसके प्रति 'क्रेमलिन' (सोवियत शासकों) का चाहे कितना ही कड़ा रुख क्यों न हो, पश्चिमी पर्यवेक्षक उसे न तो देशद्रोह कह सकते हैं और न क्रान्तिकारी।

बल्कि यह कहा जा सकता है कि लोग वर्तमान स्थिति के औचित्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं, वह उसको जाँचने-परखने में लगे हैं। कम्युनिस्ट व्यवस्था के उन अनेक दमनपूर्ण और दम घोटने वाले पहलुओं के प्रति बढ़ते असन्तोष के साथ वह कुछ ऐसे नये आदर्शों की खोज में है जो उन्हें अधिक सन्तोष दे सकें।

सम्भव है सोवियत जनता का एक बहुत छोटा भाग यह समझता हो कि उसका यह असन्तोष क्या रूप धारण करेगा, परन्तु अधिकांश जनता केवल इस असन्तोष का विभिन्न अंशों में अनुभव भर करती है।

यह एक विरोधाभास ही है कि कम्युनिस्ट जगत् में कुछ सुविधाओं और विशेषाधिकारों के विकास के साथ-साथ यह असन्तोष बढ़ा है। वहाँ जैसे-जैसे शिक्षा और उत्पादन-क्षमता का विस्तार होता जा रहा है, ऐसे व्यक्तियों की संख्या भी बढ़ती जा रही है जो अपने को वफ़ादार मार्क्सवादी और वफ़ादार सोवियत नागरिक मानते हुए सोवियत जीवन के कुछ पहलुओं के अधिकाधिक आलोचक होते जा रहे हैं।

इसमें सबसे आगे वह बुद्धिजीवी वर्ग है जिनका पश्चिमी साहित्य से सम्पर्क कायम हो सका है। यद्यपि यह सम्पर्क अत्यन्त सीमित है फिर भी उसने बौद्धिक जीवन के हर पहलू पर कड़ा नियन्त्रण रखने की कम्युनिस्ट नीति के विरुद्ध असन्तोष पैदा कर दिया है।

इसके बाद सोवियत समाज के वह "सफल" स्त्री-पुरुष हैं जो व्यवस्थापक वर्ग, किसी पेशे में या प्रोफेसर वर्ग के अन्तर्गत आते हैं और जिन्हें देश के प्रति उनकी सेवाओं के लिए विशेष रूप से पुरस्कृत किया गया है।

इसमें सन्देह नहीं कि वह इन पुरस्कारों से सन्तुष्ट हैं और अपने को उस व्यवस्था के प्रति आभारी भी मानते हैं जिसने उन्हें यह सम्मान प्रदान किया। फिर भी इन लोगों में इस बात की तीव्र इच्छा दिखाई देती है कि अपने देश को उस निरंकुश और दमनपूर्णशक्ति से छुटकारा दिलाया जाय जो किसी भी क्षण उनको सभी विशेषाधिकारों और सुविधाओं से वञ्चित कर सकती है।

यद्यपि इतनी जल्दी यह नहीं कहा जा सकता कि बुद्धिजीवियों या पेशेवर-वर्ग की यह भावनाएँ सोवियत-व्यवस्था के लिए कोई गम्भीर खतरा पैदा कर

सकती है, परन्तु इस बात के प्रमाण है कि उनके रुख के कारण ऐसे अनेक कदम उठाये गये जिनसे आतङ्क और दमन पर आधारित नीति में जो कि मार्च १९५३ में स्तालिन के देहावसान के पूर्व सोवियत सङ्घ की व्यवस्था की विशेषता रही है, कुछ सुधार किया गया।

बुद्धिजीवी क्षेत्र में यह विचार-सङ्घर्ष कई रूपों में प्रकट हुआ है। इसका सबसे पहला सङ्केत स्तालिन के देहावसान के कुछ समय बाद सोवियत व्यवस्था में की गयी कुछ ढिलाई से मिलता है। प्रथम तीन-चार वर्षों में सोवियत सङ्घ में साहित्य की अनेक रचनाएँ प्रकाशित हुईं जिनकी उसमें पूर्व-कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

विचार-विमर्श की भी कुछ अधिक छूट मिली जिससे नागरिकों ने नये जीवन का अनुभव किया। इसी प्रकार नीति में इस ढील के फलस्वरूप बौद्धिक और कला के क्षेत्र में पश्चिम से जो भी सम्पर्क कायम हो सका, उस पर औसत सोवियत नागरिकों ने प्रसन्नता प्रकट की।

इसी अवधि में अनेक ऐसी साहित्यिक कृतियों की रचना हुई जिनमें सोवियत जन-जीवन की सतही शान्ति के नीचे छिपे विचार-सङ्घर्ष और असन्तोष को अभिव्यक्ति मिली। इनमें से सबसे प्रमुख उपन्यास "नॉट बाई ब्रेड अलोन" और "डाक्टर जिवागो" हैं। इनमें प्रत्येक इस बात का प्रमाण है कि चालीस साल तक विचारों पर कड़ा नियन्त्रण रखने के बाद भी कम्युनिस्ट जगत् में स्वतन्त्र विचार शक्ति को नष्ट नहीं किया जा सका।

इस बात को कम्युनिस्टों ने स्वयं स्वीकार किया है कि १९५६ के उत्तरार्द्ध में, हङ्गरी और पोलैण्ड में जो कुछ हुआ, वह इन दोनों देशों के असन्तुष्ट बुद्धिजीवियों की वजह से ही हुआ और उन्होंने ही इसका नेतृत्व भी किया। इसी प्रकार हङ्गरी के मामले में सोवियत सङ्घ के हस्तक्षेप के औचित्य पर सोवियत सङ्घ के बुद्धिजीवियों ने ही सबसे अधिक सन्देह व्यक्त किया।

यह सन्देह इतना गहरा था कि सोवियत विश्व-विद्यालय में जब प्रोफेसरों ने हङ्गरी की आजादी के दमन के लिए लाल सेना की कार्रवाई का सरकारी दृष्टिकोण से स्पष्टीकरण किया तो छात्रों ने उसे स्वीकार करने से खुले रूप से इन्कार कर दिया। इस सम्बन्ध में कई प्रमाण मिले हैं।

"दि क्रिश्चियन साइन्स मानीटार" में १९५८ में एक लेख प्रकाशित हुआ था जिसमें एक सोवियत स्नातक ने, जो अब पश्चिम में रहता है, विस्तार से यह बताया है कि शिखर-सम्मेलनों से किस प्रकार कम्युनिस्ट देश के औसत नागरिक को सोचने-समझने की नयी दृष्टि मिलती है।

जेनेवा सम्मेलन (१६५५) में कम से कम दो बातों में सोवियत नेताओं की पराजय हुई। सोवियत नेताओं ने पूरे जर्मनी में स्वतन्त्र चुनाव कराने की ईडन-योजना को स्वीकार कर (सोवियत बुद्धिजीवी-वर्ग की दृष्टि में) यह तथ्य स्वीकार कर लिया कि पूर्वी जर्मनी में स्वतन्त्र चुनाव नहीं हुए।

फिर श्री डलेस के सांस्कृतिक विनियम के प्रस्ताव को अस्वीकार करने का यही अर्थ लगाया गया कि सोवियत नेताओं को यह डर है कि पश्चिम के साथ बहस में उलझ कर सोवियत सङ्घ की सैद्धान्तिक एकता की स्थिति का खतरा पैदा हो सकता है।

अनेक वर्ष तक कम्युनिस्ट आन्दोलन की यह विशेषता रही है कि उसके अनुयायी साधन नहीं, बल्कि लक्ष्य को ही महत्व देते रहे। उनकी मान्यता थी कि लक्ष्य अच्छा है तो उसकी प्राप्ति के लिए कोई भी साधन बुरा नहीं। इस दृष्टि-कोण के कारण वह मानव के सम्मान, सभ्यता और दयाभाव की मान्यताओं के खुले-आम उल्लङ्घन को सहन करने और उसे क्षमा करने के लिए तैयार रहे। वैसे अब भी काफी बड़ी संख्या में कम्युनिस्टों की इस बर्बर सिद्धान्त पर आस्था है लेकिन इस बात के सबूत हैं कि इनकी संख्या निरन्तर कम होती जा रही है।

स्तालिन की क्रूरताओं पर प्रकाश पड़ने से, हङ्गरी की दुखान्त घटना से और हाल ही में हङ्गरी के चार देश-भक्तों को फाँसी दे दिये जाने से, पश्चिम में कम्युनिस्टों के अनुयायियों में गहरी हलचल पैदा हो गयी और विभिन्न देशों की कम्युनिस्ट पार्टियों से अनेक लोगों ने इस्तीफे भी दे दिये।

यह समझना केवल अपने को धोखा देना होगा कि इससे कम्युनिज्म को घातक आघात लगा है परन्तु यदि हम यह कहें कि इस सारी प्रक्रिया से यह प्रकट होता है कि कम्युनिस्ट जगत् में कम्युनिज्म की विधियों और सिद्धान्तों की आलोचना की प्रवृत्ति बढ़ती ही जा रही है तो अनुचित न होगा।

इस आलोचना और नये दृष्टि-कोण के विकास से कम्युनिज्म की निरंकुशता कब तक नष्ट होगी या कम्युनिस्ट व्यवस्था का कब तक पुनर्गठन हो सकेगा, यह कोई नहीं कह सकता। बिना किसी प्रकार की अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक अथवा राजनीतिक उथल-पुथल के यह सम्भव है कि इस प्रक्रिया की गति धीमी रहे, इसका क्रमशः विकास हो और पूर्ण परिवर्तन लाने में अनेक वर्ष लग जायें। चाहे कुछ हो, यह तय है कि कम्युनिस्ट जगत् पर दृष्टि डालने से वहाँ जो उथल-पुथल मची हुई है, वह दृष्टि से छिपी नहीं रह सकती और जैसे-जैसे समय बीतता जायेगा यह बढ़ती ही जायेगी और कम्युनिस्ट जगत् कमजोर होता जायेगा।

—६—

यह सर्वविदित है कि लौह आवरण के पीछे भी स्वतन्त्र विचार जीवित रहे और इसका सबूत है बोरिस पास्तरनाक की रचना "डाक्टर जिवागो" और व्लादिमीर दुदिनेत्सेव की "नॉट बाई ब्रेड अलोन" स्वतन्त्र विश्व में स्वतन्त्र विचार न केवल जीवित ही रहे बल्कि भविष्य की ओर बढ़ते हुए वे साहित्य में फूले फले और पूर्ण विकसित हुए। परन्तु आध्यात्मिक मूल्य कुछ कम स्पष्ट हो पाये है, शायद इसलिए कि बीसवीं सदी का साहित्य इन मूल्यों की पुष्टि करने के बजाय अधिकतर इनको कसौटी पर परखता रहा है। यहाँ तक कि आध्यात्मिक दृष्टि से लिखने वाले कुछ लेखकों ने भी कठिन शैली अपनाकर कठिन शब्दावली का प्रयोग कर और दुरूह विषयों का चयन करके अपनी रचना को सामान्य पाठक के लिए दुर्बोध बना दिया। इससे उनका उद्देश्य ही व्यर्थ हो गया।

१६वीं सदी के अन्त में विलियम डीन होवेल्स ने ऐसे उपन्यास लिखे जाने की स्वतन्त्रता पर आपत्ति की जो युवतियो के लिए उपयुक्त न हो, या जो उनको खटकते हों। बीसवी सदी के मध्य में ये नवयुवतियाँ ही ऐसे उपन्यास लिखने लगी हैं जिनसे होवेल्स को गहरा धक्का लगा होता।

इस प्रकार का परिवर्तन आज के अधिकाश सामान्य पाठको की साहित्य की स्थिति समझाने के लिए पर्याप्त है। वे सोचते हैं कि पुराने प्रतिबन्ध अब नही रहे। इस विचार से उनको घृणा भी होती है और वे इस ओर आकृष्ट भी होते है।

परन्तु बिक्री और अनुवाद के आँकड़े यह प्रकट करते है कि ये सामान्य पाठक बीसवी सदी का वह साहित्य कम पढ़ते है जिसे साहित्य-जगत् बहुत महत्वपूर्ण मानता है। लेकिन इसके लिए हमेशा ही सामान्य पाठक को दोषी नही ठहराया जा सकता। सम्भव है, प्रयोग और मूल्याङ्कन की इस दिशा का सङ्केत समझने में वे असमर्थ रहे हों, जिसका नयी स्वतन्त्रता अथवा स्वच्छन्दता एक अंश रही है।

दुनिया का गम्भीर साहित्य उत्तेजनापूर्ण, खेदजनक, लाभदायक और हास्यास्पद खोजो की अर्द्धशताब्दी से होकर गुजरा है। उसने भाषा, रूप, व्यवहार, मनोविज्ञान और मूल्यो की सीमाओ को कसौटी पर रखकर परखा। उसने मनुष्य के व्यक्तित्व को देखा है, परखा है। उन राजनीतिक एवम् सामाजिक क्षेत्रो में भी भाँका है जहाँ कम्युनिज्म, फासिज्म और लोकतन्त्र का सङ्घर्ष चल रहा है।

वह जितना ही बढ़ा, उतना ही टूट-बिखर भी गया। लेकिन इस बात के

स्पष्ट सङ्केत दिखायी देते हैं कि वह एक नये दौर में प्रवेश कर रहा है। यह नया दौर है संयोजन का जिसमें उपलब्धियों को समझा जाता है और अपना लिया जाता है और जो असफलताएँ मिली हैं उनको छोड़ दिया जाता है।

१६२२ में दो रचनाएँ प्रकाश में आयीं जिन्होंने दो विश्व युद्धों के बीच के समय को ऐसा रूप देने में सहायता की जो बीसवीं सदी के साहित्यिक प्रयोग की अपनी खास विशेषता समझी जाती है। वैसे यूरोप में यह नयी हलचल काफी पहले शुरू हो चुकी थी। टी० एस० ईलियट की कविता 'दि वेस्टलैंड' में निस्तेज और अशक्त समाज की दार्शनिक दृष्टि से बहुत कमजोर लेकिन काव्य की दृष्टि से बहुत सुन्दर तस्वीर खींची गयी है। ईलियट ने रूप-विधान को तोड़कर और अस्पष्ट तरीके से अथवा कई पृष्ठों की टिप्पणी में (ईलियट ने स्वयं कहा है कि ये टिप्पणी इसलिए लिखी गयी या इनका विस्तार इसलिए किया गया जिससे छोटी पुस्तक का आकार बढ़ाया जा सके।) समझाये गये सङ्केतों के माध्यम से एलिजेबेथ के युग की रचनाओं और फ्रान्सीसी प्रतीकवादियों से ली गयी बातों को बिलकुल नये ढङ्ग से प्रस्तुत किया और इसने आगे चलकर पूरे काव्य-साहित्य को प्रभावित किया।

जेम्स जायस ने होमर की 'आडिसी' की तरह ही आयरिश पृष्ठ-भूमि में "उलीसिस" की रचना की। इसकी ओर केवल इसकी अश्लीलता के कारण ही ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ बल्कि भाषा पर लेखक के पूर्ण अधिकार, कथा और प्रतीक ने भी इसमें योग दिया। इसने चेतना के प्रवाह के माध्यम से चरित्र-चित्रण की व्यापक सम्भावना का द्वार खोल दिया। यह एक नयी टेकनीक थी।

जिस वर्ष की यह बात है, उस वर्ष अमेरिका में सर्वाधिक बिक्री वाले उपन्यास थे 'इफ विण्टर कम्स', 'दि शेक' और बूथ तारकिङ्गटन का 'जेण्टल जूलिया।'

एक और नमूना प्रस्तुत है—१६२६ में दो ऐसी रचनाएँ प्रकाशित हुईं जिनका आज भी अध्ययन हो रहा है। यह बात सर्वाधिक बिक्री वाले उपन्यासों के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। ये रचनाएँ थीं—'दि प्राइवेट लाइफ आफ हेलन आफ ट्राय' और 'जेण्टलमैन प्रिफर ब्लौंडो'।

इसी वर्ष फेंज कफ्का के 'दि कैस्सल' का जर्मन संस्करण प्रकाशित हुआ। यह एक रहस्यमय पात्र "के०" और रहस्यमय-लक्ष्य की ओर उसकी रहस्यमय प्रगति की अभिव्यञ्जनावाली कहानी है। कभी इसकी तुलना 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' से की जाती है और कभी इसे 'पिलग्रिम्स प्रोग्रेस' से एकदम भिन्न बताया जाता है। दोनों ही पक्षों में जोरदार बहसें चलती रही हैं। इसके बावजूद धर्मशास्त्र के

पण्डितों, दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण करने वालों और समाजशास्त्रियों को बहस के लिए इसमें काफी सामग्री मिल जाती है।

१९२६ में ही अर्नेस्ट हेमिंग्वे की रचना 'दि सन आल्सो राइजेज' प्रकाशित हुई जिसमें इस अमेरिकी लेखक ने, जो संयोग से स्वयं बाहर से आकर अमेरिका में बस गया, इस पीढ़ी के असहाय और निर्मूल स्थिति तथा उसकी निराशा का चित्रण किया है। उनकी गद्य-शैली अलङ्कारहीन है लेकिन जबरदस्त प्रेरणादायक है और शायद इसके बाद के अमेरिकी गद्य-साहित्य पर इसका सबसे अधिक प्रभाव पड़ा।

डिकन्स के विपरीत जिसने आम पाठक का मनोरञ्जन किया और किसी तरह 'क्लासिक' बन गया, बीसवीं सदी के अनेक परिवर्तनवादी या कोई नयी बात नये ढङ्ग से कहने के लिए प्रयत्नशील लेखकों ने उन पाठकों की सुविधा का बहुत कम ध्यान रखा जो उनके मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, नृशास्त्र या जातीय जोश एवम् उत्साह के धरातल तक नहीं पहुँच सकते। लेकिन उनका प्रभाव न केवल बाद के गम्भीर साहित्य पर दिखायी देता है बल्कि जनता के मनोरञ्जन के माध्यमों को भी इन्होंने प्रभावित किया— जासूसी कहानियों में हेमिंग्वे की गद्य शैली की छाया है, फिल्मों में स्वप्न से सम्बन्धित दृश्य 'सररियलिस्टों' की याद ताजा करते हैं और टेलीविजन के अन्तर्मुखी पात्रों की कहानी मनोवैज्ञानिक उपन्यासकारों के प्रभाव की देन है।

परन्तु अभी जिन लेखकों के नाम गिनाये हैं 'सिक्स्टी इयर्स आव बेस्ट सैलर्स: १८९५-१९५५' (१८९५ से १९५५ तक का सर्वाधिक बिक्री वाला साहित्य) में इनका नाम प्रथम सौ लेखकों में नहीं है। यहाँ तक कि अमेरिका में सस्ते संस्करणों की बिक्री मिलाकर भी ये उस कोटि में नहीं आते। यही नहीं, यूनेस्को द्वारा १९४८ से १९५५ तक के सर्वेक्षण से यह भी मालूम होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इनमें से कोई भी उन प्रथम पचास लेखकों में शामिल नहीं है जिनकी रचनाओं का अन्य भाषाओं में काफी अनुवाद हुआ (वैसे दूसरे पचास लेखकों में हेमिंग्वे को प्रमुख स्थान प्राप्त हुआ है)।

यही बात अन्य प्रभावशाली लेखकों, जैसे, विलियम फाकनर, विलियम बटलर, यीट्स, थामस मान, लुइगीपिरेन्डेलो, डी० एच० लारेन्स, मार्सेल प्राउस्ट, जोजफ कानरेड और सम्भवतः इस युग के सुप्रसिद्ध (उपन्यासों के लिए नहीं) साहित्यकार जार्ज बर्नार्ड शा पर भी लागू होती है।

दो विश्वयुद्धों के बीच के वर्षों के कुछ लेखकों ने द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भी लेखन-कार्य जारी रखा, लेकिन आलोचकों की दृष्टि में युद्ध के बाद की उनकी ऐसी बहुत कम रचनाएँ हैं जो उनकी पहले की रचनाओं का मुकाबला कर सकें।

युद्ध के बाद उभरे उपन्यासकारों में से भी बहुत कम ऐसे हैं जो आलोचकों की दृष्टि में उस स्तर तक पहुँच सके है।

१९५७ में साहित्य पर नोबल पुरस्कार विजेता फ्रान्स के एलबर्ट कामू ही ऐसे प्रतीत होते हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय आकर्षण के केन्द्र बन सकेंगे। ऐसा प्रतीत होता है कि वे उन बुद्धिवादियों में धर्म की भावना का उद्धार करने के लिए बेचैन हैं जो पुरानी रूढ़िवादी धर्मव्यवस्था से सन्तुष्ट नहीं है। कामू अपनी शैली के लिए उतने प्रसिद्ध नहीं हैं जितने विषय-वस्तु और मानवीय उद्देश्यों तथा नैतिकता के विश्लेषण में अपने निराशावाद (लेकिन एकदम हताश नहीं) के लिए।

अमेरिका में जे० डी० सैलिंजर भी जो उपन्यासों के "न्यूयार्कर" (पत्रिका) स्कूल के नेता समझे जाते हैं, अपनी कहानियों में मोटे रूप में धर्म की बात कहते हैं। ये कहानियाँ वास्तव में युद्धोत्तर काल की कालेज की शिक्षा पायी हुई पीढ़ी के लिए है।

ब्रिटेन में अनेक 'विद्रोही युवकों' को एक ही समूह में डाल दिया गया है, उनसे उन्हें बहुत आश्चर्य और साथ ही निराशा भी हुई है। किंग्सले के व्यंग्यों और जान आसबोर्न के जोशीले नाटकों आदि के द्वारा यह समूह विद्रोही युवकों की अपनी परम्परा के अनुसार उस समाज पर कड़े आघात करता है जिसको उन्होंने नहीं बनाया। लेकिन उनका दृष्टिकोण हमेशा ही नकारात्मक नहीं होता। वे जो भाप उगलते हैं और सब नष्ट कर देना चाहते हैं उसमें ईमानदारी, उनका अपना व्यक्तित्व और बमों की काली छाया के नीचे भौतिकवादी सुख के युग में धर्म के प्रति उनकी आस्था का भाव झलकता है।

नये मूल्यों की स्थापना के साथ-साथ कुछ नये रूप-विधानों का भी विकास हुआ। आज के कवि जो विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाये हुए हैं और जिन्हें अक्सर विश्वविद्यालयों का समर्थन प्राप्त है, अपनी रचनाओं के लिए नमूनों की खोज में अपने से पहले की या समकालीन प्रौढ़ पीढ़ी के साहित्य की ओर न मुड़कर क्लासिकल साहित्य की ओर मुड़ते हैं। बिलकुल नये उपन्यासकार, कम से कम अमरिका में, स्पष्ट और सीधे यथार्थवाद को अपनाना अधिक पसन्द करते है, और उपमाओं एवम् प्रतीकों का उन्होंने परित्याग कर दिया है।

आज की सबसे अधिक बदनाम "प्रयोगवादी" रचनाएँ सम्भवतः अमेरिका के उन लेखकों की है जो सेक्स की विकृतियों, मदिरापन और घुमक्कड़ी का बखान करने तथा "अपूर्व आनन्द" की खोज के लिए बिना सोचे समझे साहित्यिक उपमाओं और जाज-नृत्य के शौकीनों की गालियों से भरी भाषा का खुलकर प्रयोग करते हैं। क्या प्रयोगों को कम करने से साहित्य का भविष्य नीरस हो जायेगा? यह कोई जरूरी नहीं है। कुछ नयी बात कहने की धुन और कहने के नये तरीकों

की खोज के इस युग को न कोई मिटाना चाहता है और न कोई भविष्य मे इसी प्रकार की कोशिशो को रोकना ही चाहता है। लेकिन इस अन्तरिमकाल मे यदि लेखक हमेशा से मान्यता प्राप्त शैली की विशेषताओं—सरलता, सुबोधता, स्पष्टता और ओज—तथा विषय-वस्तु के गुणों जैसे, मनुष्य की दशा का सन्तुलित चित्रण, पर ध्यान दें तो इससे उन्हे निश्चित रूप से लाभ हो सकता है।

इस प्रसङ्ग में तीन रचनाओ का हवाला दिया जा सकता है, ये रचनाएँ उत्कृष्ट कोटि की नहीं है फिर भी भावी सम्भावनाओं के सङ्केत इनमें विद्यमान हैं।

परमाणु-युग के बड़े उपन्यासकार सी० पी० स्नो जैसे, भौतिकशास्त्री भी हैं, "स्ट्रेंजर्स एण्ड ब्रदर्स" उपन्यास सिरीज में सात उपन्यास लिखे हैं। इनसे यह पता चलता है कि आधुनिक जटिल समाज (ब्रिटेन के प्रसङ्ग में) का बहुत संयम से, परम्परा को निभाते हुए और साथ ही दिलचस्प और आकर्षक बनाकर उपन्यास में चित्रण किया जा सकता है।

दक्षिण अफ्रीका के एलन पेटन ने "क्राई, दि बिलेवेड कण्ट्री" मे यह दर्शाया है कि मानवजाति की दीर्घकालीन समस्या जातीय सम्बन्धों को, सुबोध भाषा में लिखे गये, क्षमा-भाव और नैतिकता की भावना से पूरित उपन्यास में किस प्रकार प्रकाश में लाया जा सकता है।

हाल ही पुलित्जर पुरस्कार-प्राप्त उपन्यास "ए डेथ इन दि फेमिली" में अमेरिका के स्वर्गीय जेम्स ऐजी ने व्यक्ति का चरित्र-चित्रण किया है। कहानी एक ऐसे बच्चे के परिवार की है जिसका पिता मारा जाता है। पट-कथा-लेखक और फिल्म के आलोचक के रूप में एजी से यह आशा की जा सकती थी कि वह इस क्षेत्र के अपने अनुभवो के आधार पर अपने उपन्यास मे भी सिनेमा की तरकीबों का प्रयोग करेंगे, जैसा कि उनसे पहले के लेखको ने किया, परन्तु ऐसा नही हुआ। उनकी इस अधूरी रचना के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वह इससे आगे गये, उन्होंने कैमरे की ट्रिकों का इस्तेमाल न कर कैमरे से ठीक-ठीक चित्र खीचने तक ही अपने को सीमित रखा। उपन्यास पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि जैसा एजी ने उस परिवार की एक-एक बात का सूक्ष्म निरीक्षण कर उसको उपन्यास में हूबहू उतार दिया।

आने वाले कल के गम्भीर साहित्य के लिए यह भी एक दिशा बन सकती है जिसमें मानवता के लिए अपार श्रद्धा होगी, लेकिन आँख बन्द करके नहीं, आँख खोलकर और यह श्रद्धाभाव बीते हुए कल के दुर्लभ और आश्चर्यजनक प्रयोगों के आधार पर परम्परागत लेखन-कौशल द्वारा व्यक्त किया जायेगा।

ऐसा होने पर, ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें जनता और साहित्यकार दोनों की ही दिलचस्पी होगी।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि भावी जनता के पास किताबें न पढ़ने के लिए आर्थिक अभाव का बहाना नहीं होगा। निःशुल्क सार्वजनिक पुस्तकालयों की बढ़ती सुविधाओं के साथ इस बीसवीं सदी में सस्ते संस्करणों के प्रकाशन से दुनिया के श्रेष्ठ साहित्य की अनेक रचनाएँ जनता को उसी तरह आसानी से उपलब्ध हैं जिस प्रकार टूथपेस्ट और प्रायः उसी कीमत में।

जब काल के विद्वान् आज तक की गयी तकनीकी प्रगति को और आगे बढ़ायेंगे तो वे यह निश्चय कर सकते है कि अन्तरिक्ष में चक्कर लगाने वाले *कृत्रिम उपग्रहों के लिए इस्तेमाल होने वाली सामग्री उस रबरप्लेट प्रेस से* अधिक महत्वपूर्ण नहीं है जो प्रति घण्टे बारह हजार पुस्तकें छाप कर तैयार कर सकता है।

इन प्रेसों का बहुत महत्व है। इनका बहुत दूरगामी प्रभाव पड़ सकता है यदि ये लोगों को घटिया की बजाय श्रेष्ठ पुस्तकें पढ़ाते रहें – यद्यपि इनके उत्पादन में घटिया किस्म की पुस्तकें भी शामिल है—तो उसका प्रभाव बम से भी अधिक शक्तिशाली हो सकता है।

कहा जाता है कि "ओडेसी" का सस्ता संस्करण (पेपरबैक एडीशन) पढ़ने के बाद पाठक ने प्रकाशक को लिखा, "बेशक ये होमर बहुत अच्छा लिखता है। मुझे इसकी दूसरी पुस्तक भेजिये।" यह किस्सा साहित्य-जगत् में बहुत प्रचलित है और कई रूपों में। *उस पाठक के लिए जो यह समझता है कि पुस्तक-*भण्डार और पुस्तकालय विद्वानों के लिए हैं, किसी दवाखाने के सामने समाचार पत्र और सस्ते संस्करण बेंचने की मशीन आकर्षक साबित हो सकती है। वह वहाँ से नये विचार और नयी भावना प्राप्त कर सकता है। दुनिया भर में साक्षरता बढ़ने के साथ-साथ ऐसा प्रतीत होता है कि राकेट द्वारा चाँद की *यात्रा में यदि कोई साथी हो सकता है तो वह है आन्तरिक दुनिया की खोज करने* वाली सस्ती पुस्तकें।

सेक्स और अपराध से सम्बन्धित आकर्षक आवरण वाला भड़काऊ साहित्य अभी दूकानों से गायब नहीं हुआ है। कभी-कभी अच्छी पुस्तकों की साज सज्जा भी इतनी भड़कीली होती है कि वे पाठक भी उन्हें नहीं खरीदते जिन्हें वह बहुत पसन्द आ सकती थीं।

लेकिन ऐसा लगता है कि बेहूदे और अश्लील चित्रों का युग भी खत्म हो गया है। अक्सर पुस्तक-उद्योग की ओर से पश्चात्ताप भरी यह आवाज सुनायी भी देती है कि प्रतियोगिता के कारण ऐसा करना पड़ा और अब सुरुचि और संयम से काम लिया जा रहा है। दूकानों पर प्रदर्शित पुस्तकों पर नजर डालने से उसकी इस बात की पुष्टि हो जाती है।

एक कारण यह है कि सस्ते संस्करण में अच्छी पुस्तकों का अनुपात बढ़ रहा है। यद्यपि इन पुस्तकों को वहाँ नहीं रखा जाता जहाँ आम तौर पर सामान्य सस्ती पुस्तकें बिकती हैं, फिर भी उनकी बिक्री अन्य सामान्य तथा घटिया पुस्तकों के मुकाबले अधिक तेजी से बढ़ रही है।

यही नहीं, अब 'मूल' रचनाएँ भी सीधे सस्ते संस्करण में प्रकाशित की जाने लगी हैं। अब तक महँगी पुस्तकों को ही सर्व-जनसुलभ बनाने के लिए सस्ते संस्करण में भी छाप दिया जाता था और सस्ते संस्करण का प्रकाशन ऐसी ही पुस्तकों का है। इस संस्करण में प्रकाशित होने वाली मूल रचनाओं में अधिकतर हल्के-फुल्के उपन्यास हैं लेकिन अत्यन्त गम्भीर रचनाएँ भी हैं।

कुछ बार तो क्रम ही उलट गया। अब तक महँगे संस्करणों के बाद सस्ते संस्करण प्रकाशित होते रहे हैं लेकिन कुछ ऐसी भी रचनाएँ हैं जो पहले सस्ते संस्करण में प्रकाशित की गयी और बाद में उनके बढ़िया संस्करण प्रकाशित किये गये। इस प्रकार प्रकाशक ऐसे नये या कम प्रसिद्ध लेखकों के लिए, जिनकी रचनाओं में चाहे बिक्री का आकर्षण न हो, लेकिन अपना स्थान बनाने की क्षमता है और जो प्रतिभावान् लगते हैं, सस्ते संस्करण के माध्यम को परीक्षण के रूप में इस्तेमाल कर सकता है।

सस्ते संस्करण की वह पुस्तकें अधिक लोकप्रिय हुई हैं जिनमें किसी काम को करने की विधि बतायी गयी है या जो व्यक्तित्व को निखारने और अपना सुधार करने के विषय में हैं। इनमें वह पुस्तकें भी शामिल हैं जिन्हें प्रसङ्ग के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। उदाहरण के लिए अमेरिका में सस्ते संस्करण में सबसे अधिक बिक्री वाली पुस्तक बेन्जामिन स्पाक की "पाकेट बुक आफ बेबी एण्ड चाइल्ड केयर" है। बिक्री की दृष्टि से इसने मिकी स्पिलैन की रचनाओं को भी पीछे छोड़ दिया।

स्कूल और कालेजों ने पुराने दार्शनिकों, अर्थशास्त्रियों आदि की मूल रचनाओं (टैक्स्ट) को सस्ते संस्करण में छापना शुरू कर दिया है। विश्वविद्यालयों के प्रेसों में ये छप रही हैं। सस्ती पुस्तकों के प्रकाशन के क्षेत्र में जो कुछ हुआ है उसकी इस "कृपालु क्रान्ति" को आरम्भ करने वाले वर्तमान प्रकाशकों या १५०१ में 'क्लासिक्स' को पाकेट सिरीज में प्रकाशित करने वाले विद्वान् एल्डस मैनुतिउस ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी। मैनुतिउस ने ही पाकेट सिरीज के प्रकाशन के साथ इसी प्रक्रिया में "इटालिक टाइप" का आविष्कार किया था।

१६वीं सदी में यूरोप और अमेरिका में सस्ते संस्करण की पुस्तकों का बहुत प्रचार हुआ और यह उद्योग काफी पनपा। उदाहरण के लिए, लिपजिग के तोखनित्ज एडीशन्स ने यूरोप में ब्रिटेन व अमेरिका की पाँच हजार से

अधिक पुस्तकें उनकी मूल भाषा में प्रकाशित कीं। करीब-करीब इसी समय अमेरिका में "बोस्टन सोसाइटी फार दि डिफ्यूजन आफ नालेज" ने सस्ती पुस्तकें प्रकाशित करना शुरू किया।

अमेरिकी सस्ता साहित्य, शताब्दी के उत्तरार्ध में अधिक लोकप्रिय हुआ। तब बढ़िया जिल्दों के मुकाबले सस्ती पुस्तकों की संख्या आज के अनुपात से कहीं अधिक थी। यूरोप में जर्मनी के रिक्लाम्स युनीवर्सल विब्लियोथिक का नाम उल्लेखनीय है। इसके द्वारा प्रकाशित हजारों क्लासिक्स की लाखों प्रतियाँ बिकीं और एक प्रति की कीमत दस सेण्ट थी।

इंग्लैण्ड में तो छपाई आरम्भ होने के साथ ही सस्ती किताबों का प्रकाशन शुरू हो गया। लेकिन इस क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति १९३५ में हुई जब कि पगुइन बुक्स का प्रकाशन आरम्भ किया गया। इन पेंगुइन बुक्स को ही वहाँ आज सस्ता संस्करण या पेपर बैक एडीशन कहते हैं।

इस बीच हैमवर्ग में एल्वाट्रास मार्डन कान्टीनेन्टल लायब्रेरी ने प्रकाशन शुरू कर दिया और तौखनित्ज को भी अपने हाथ में ले लिया। इसके कुछ समय बाद १९३९ में अमेरिका में पाकेट बुक्स प्रकाशित होने लगीं। १९४८ में पेंगुइन की अमेरिका शाखा स्वतन्त्र संस्था बन गयी और उसने 'न्यू अमेरिकन लायब्रेरी आफ वर्ल्ड लिटरेचर' के नाम से प्रकाशन शुरू किया।

अब तो अनेक कम्पनियाँ, अनेक देश, इस क्षेत्र में पदार्पण कर चुके हैं। स्थानीय प्रकाशनों के पूरक के रूप में अब अंग्रेजी भाषा में छपी सस्ते संस्करण की पुस्तकें दुनिया भर में—एशिया, अफ्रीका और पश्चिमी एशिया में—बिकती हैं। १६ देशों का अध्ययन करने के बाद यूनेस्को ने जो रिपोर्ट तैयार की है, उसके अनुसार अमेरिका और कनाडा में नियमित रूप से पुस्तकों का कारोबार करने वाले पुस्तक-भण्डारों का अनुपात कम है, परन्तु सस्ते संस्करण के साहित्य की बिक्री के लिए लाखों केन्द्र हैं।

सोवियत संघ ही एक ऐसा देश है जहाँ साक्षरता का प्रतिशत काफी है लेकिन वहाँ सस्ता-साहित्य-उद्योग नहीं है। वहाँ पक्की जिल्द की पुस्तकें कम मूल्य पर उपलब्ध हो जाती हैं।

यह मानते हुए कि सस्ते साहित्य के अन्तर्गत घटिया साहित्य भी प्रकाशित होता रहा है, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि वह सस्ता संस्करण प्रकाशकों और पाठकों, दोनों के लिए "पुस्तकों की समृद्धि" लाने वाला रहा है। यह उद्योग है इस स्थिति तक पहुँच चुका है कि अमेरिकन असोसियेशन फार दि एडवान्समेण्ट आफ साइंस विज्ञान के पुस्तकालय के लिए पुस्तकों की लम्बी सूची दे सकता है, बोस्टन का शिक्षा कार्यक्रम प्रसारित करने वाला

टेलीविजन स्टेशन सस्ते संस्करण में प्रकाशित पुस्तकों पर अनेक कार्यक्रम प्रसारित कर सकता है, कालेजों की कक्षाओं में प्रयुक्त होने वाली सस्ते संस्करण की १६०० पुस्तकों की ३० पृष्ठों की सूची भी तैयार की जा सकती है।

शिकागो विश्वविद्यालय के प्रेस ने सस्ता साहित्य प्रकाशित करने की घोषणा में कहा, "जो लोग ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं यदि उन्हें सुविधा से वह उपलब्ध नहीं कराया जा सका तो वह ज्ञान व्यर्थ है।"

इसमें सन्देह नहीं कि इस प्रकाशन व्यवस्था से ज्ञान, विज्ञान, कविता, कला, जीवनचरित, नाटक, इतिहास, कौन काम कब और कैसे करें, उपन्यास आदि सभी कुछ सुविधा से उपलब्ध करा दिया गया है। इन सस्ते संस्करणों और इनके पाठकों दोनों का ही भविष्य उज्ज्वल है।

—७—

साहित्य के अलावा अन्य कलाओं की भी लोकप्रियता की दिशा में प्रगति जारी रहने की आशा है। प्रायः सवाल उठाया जाता है कि इस लोकप्रियता में गहराई भी है या नहीं। परन्तु तथ्य यह है कि चाहे कोई व्यक्ति लाभ उठाये या न उठाये, औसत व्यक्ति को कलाकार की अन्तर्दृष्टि से परिचित होने के आज जितने अवसर प्राप्त है उतने पहले कभी नहीं रहे।

गत पचास वर्षों में प्रायः सभी कलाओं के पूर्व प्रतिष्ठित क्षेत्रों में परिवर्तन आये हैं और नये प्रयासों को जो कम महत्वपूर्ण नहीं, समझने वालों तथा उनका आनन्द उठाने वालों की कमी नहीं है। पहले की अपेक्षा बड़ी संख्या में लोग नये प्रयासों की सराहना करते हैं।

कला के क्षेत्र में एक नयी बात हुई है और वह है समारोहों या उत्सवों की संख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि। ये हैं सङ्गीत समारोह, नृत्य समारोह, नाटक समारोह और फिल्म समारोह। ये समारोह वसन्त के आरम्भ में शुरू हो जाते हैं और शरद् तक चलते रहते हैं।

शेक्सपियर के नाटकों को अभिनीत करने वाले अब तीन स्ट्रेटफोर्ड है—मूल स्ट्रेटफोर्ड है इङ्गलैण्ड में, दूसरा है ओन्तारिओ में और तीसरा है कनेक्टीकट में। सङ्गीत समारोहों में श्रोता जाज से सिम्फनी तक—वैसे सिम्फनी से जाज तक होना चाहिए—सबका आनन्द उठा सकते हैं। एक जमाना था जब ग्रीष्म काल के कला के क्षेत्र में सुनसानी छा जाती थी। अब लोगों के शहरों से दूर जाने से नाटक और आपेरा भी उनका अनुसरण करते है और पर्वतीय क्षेत्रों में, समुद्र के किनारे या देहात में, अपने आयोजनों में कलाप्रेमी जनता की भीड़ इकट्ठा कर लेते हैं।

इसके साथ ही प्रचार-प्रसार के साधनों ने कला को घर-घर पहुँचा दिया है। ही-फी और अब एक नये किस्म से रिकार्ड तैयार किये जाने लगे हैं और इन रिकार्डों से शास्त्रीय (क्लासिक) सङ्गीत और विश्व-विख्यात वाद्यवृन्द द्वारा तैयार की गयी नयी से नयी सङ्गीत-रचना या प्रसिद्ध गायक द्वारा गाये गये गीत जनता को आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं। एकान्त कमरे में बैठ कर 'आपेरा' सुना जा सकता है और उसका अध्ययन किया जा सकता है।

मौजूदा रङ्गमञ्चों के सङ्गीत को वे लोग घर बैठे सुन सकते हैं जिन्हें शायद ब्राडवे के नाटकों को देखने का कभी मौका नहीं मिल सकता। हजारों लोग जो अब कभी भी किसी रङ्गमञ्च पर 'माई फेयर लेडी' नहीं सुन पायेंगे, वे रिकार्डों के माध्यम से अपने कमरे में बैठे सुन सकते हैं। नाटक-साहित्य के महान् नाटकों के भी रिकार्ड तैयार कर लिये गये हैं और इनका अभिनय श्रेष्ठ कलाकारों ने किया है।

टेलीविजन का योगदान इससे भी बढ़ कर है। टेलीविजन से फिल्में दिखायी जाती हैं और इनमें कभी-कभी उच्च कोटि की कलात्मक फिल्में होती हैं। रेडियो अपनी भूमिका अदा कर रहा है।

पहले मनोरञ्जन की खोज घर से बाहर की जाती थी, लेकिन अब वह अँगीठी के पास बैठे लोगों तक स्वयं ही पहुँच जाता है। मनोरञ्जन की पहले खोज की जाती थी लेकिन अब मनोरञ्जन के कई साधन हैं, लोगों को उनमें से चुनना पड़ता है। अब समस्या है ठीक चुनाव करने की।

मायङ्कालीन मनोरञ्जन के साधनों सिनेमा, टेलीविजन, ही-फी, रिकार्डप्लेयर—की वजह से रङ्गमञ्च को बहुत कड़ी प्रतियोगिता का सामना करना पड़ रहा है।

१९०८ में अमेरिका में १९०० रङ्गमञ्च थे। येल विश्वविद्यालय द्वारा किये गये सर्वे के अनुसार १९२५ तक उनकी संख्या २३४ रह गयी। तीस वर्ष पहले तक यह सामान्य-सी बात थी कि न्यूयार्क में हर सीजन ढाई सौ नाटकों से शुरू होता था। न्यूयार्क टाइम्स के अनुसार ब्राडवे में १९५७ में ७७ नाटकों से शुरुआत हुई और १९५८-५९ में यह संख्या केवल ६१ रह गयी।

फिल्मों की हालत भी अच्छी नहीं है और टेलीविजन के कार्यक्रम भी अपने इस छोटे से इतिहास में निम्न स्तर तक गिर गये हैं, इसका नतीजा यह हो सकता है कि १९-४० वर्ष के आसपास की उम्र वाले पुनः रङ्गमञ्च की ओर आकर्षित हो सकते हैं। इस वर्ग के लोग हमेशा से रङ्गमञ्च के पक्षपाती समझे गये हैं। इस नये विकास का श्रेय ब्राडवे से पृथक् रङ्गमञ्चों को है।

ब्राडवे से अलग रङ्गमञ्चों का १९५७-५८ के सीजन ने सबसे अधिक व्यस्त

रखा। 'वैराइटी' के मतानुसार, "ब्राडवे से अलग नाटकों पर छह लाख डालर की पूंजी लगायी गयी इस रकम में ब्राडवे के दो सङ्गीत प्रधान कार्यक्रम होते। इससे ५६ नाटक खेले गये। इनमें फीनिक्स थियेटर के नाटक शामिल नहीं हैं।" फीनिक्स बहुत बड़ी नाटक संस्था है जो ब्राडवे से अलग चलने वाले रङ्गमञ्चों से भिन्न है। यह संस्था पिछले पाँच सीजनों से नाटकों के क्षेत्र में असाधारण कार्य कर रही है।

ब्राडवे के बाहर खेले जाने वाले २६ नाटक नये थे। यह एक महत्वपूर्ण बात है। इससे यह पता चलता है कि विशाल कमरों, तहखानों, हालों और कुछ नाटक-भवनों में किस जोर-शोर से काम हो रहा है। यह जरूरी नहीं कि ये सभी नाटक किसी नाटक-भवन में ही हों, जहाँ पर्याप्त स्थान मिल गया वहीं नाटक शुरू कर दिया। इनके अलावा जो और नाटक खेले गये उनमें समकालीन यूरोपीय नाटक और प्रो कैसी, शा तथा शेक्सपियर के नाटक शामिल थे।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है :—

कि अमेरिकी रङ्गमञ्च की गत पचास वर्षों की सबसे बड़ी सफलता यह है कि उसने अपना अस्तित्व कायम रखा है।

कि १६२० और १६३० के आसपास रङ्गमञ्च के शौकीनों ने कला की महान् उपलब्धियों और रङ्गमञ्च के सुनहरे दिनों को देखा और अमेरिका में उस सफलता को अभी तक लाँघा नहीं जा सका है।

कि १६५८ में अमेरिकी मञ्च की सबसे बड़ी विशेषता थी उसके उच्च स्तर का कायम रहना, यह उच्च स्तर कभी-कभी रङ्गमञ्च की कला के चरमोत्कर्ष तक भी पहुँचा।

कि नाटक में कभी-कभी झुकाव केवल अपनी निजी मनःस्थिति के चित्रण या मनोरंजन की ओर रहा लेकिन नाटक का उज्ज्वल पक्ष दृष्टि से ओझल नहीं हुआ या महान् आदर्शों को भुलाया नहीं गया।

कि व्यवसाय के दृष्टिकोण का, जो रङ्गमञ्च पर बुरी तरह हावी रहता है, एक लाभ भी हुआ। उसके लिए यह जरूरी होता है कि कलाकार और कारीगर नाटक को सफल बनाने के लिए अपनी पूरी क्षमता और प्रतिभा का इस्तेमाल करें।

ब्रिटेन में यद्यपि गत अर्धशताब्दी में सैकड़ों रङ्गमञ्च बन्द हो चुके हैं फिर भी, वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि वहाँ रङ्गमञ्च का भविष्य निराशाजनक नहीं है। सिनेमा और नाटकों की प्रतियोगिता १६३० के आसपास अपने चरम-बिन्दु तक पहुँची और तबसे इसमें ह्रास शुरू हुआ। टेलीविजन आ जाने से रङ्गमञ्च को नहीं बल्कि सिनेमा को खतरा पैदा हो गया।

एक दृष्टि से जनता की रुचि काफी परिष्कृत हुई है। अब जहाँ शेक्सपियर के नाटकों का अभिनय होता है वहाँ हाल खाली हो जाने का भय नहीं रहा। अब वह दुनिया में सबसे अधिक लोकप्रिय नाटककार हो गया है। शेक्सपियर के नाटक देखने के लिए जीन एनौइल्ड, टेनेसी विलियम्स या टेरेन्स रेटीगन की अपेक्षा कहीं अधिक लोग आते हैं। इङ्गलैंड में हर साल उसके २० नाटक खेले जाते हैं अर्थात् हर तीन सप्ताह बाद एक नाटक होता है और इस बीच अनेक जोकिया नाटक खेले जाते हैं। स्ट्रेटफोर्ड और ओल्ड विक में केवल शेक्सपियर के नाटक होते हैं और शायद ही कभी दर्शकों की कोई सीट खाली रहती हो।

इसका एक कारण यह भी है कि ब्रिटेन के प्रमुख अभिनेता, जान गिलगुड, सर लारेन्स ओलीवर, माइकेल रेडग्रेव, डोनाल्ड उल्फिट, राल्फ रिचार्डसन, शेक्सपियर के नाटकों में ही अभिनय करना पसन्द करते हैं और इस प्रकार वे अपनी निजी लोकप्रियता से नाटककार की स्थिति का और भी मजबूत बना देते हैं। फिर वे अपने को किसी एक नाटक हेमलेट और लियर तक ही सीमित नहीं रखते। सभी नाटकों में अभिनय करते हैं।

ओलीवर ने यह सिद्ध कर दिया है कि एक दुखान्त प्रसङ्ग भी शानदार हो सकता है। एक ऐसे महान् व्यक्ति की दुखान्त कहानी जिसे विपमता की चरम सीमा तक पहुँचा दिया गया हो, लेकिन तब भी उसमें अपनी जवानी की शान के लक्षण मौजूद हों टाइटस एण्ड्रोनिकस में प्राप्त हो सकती है। इस प्रसङ्ग को अभी तक केवल बर्बरता का अंश ही समझा जाता था। रिचर्डसन ने "टिमान आफ एथेन्स" के अन्तिम चौथाई घण्टे के प्रसङ्ग को अपने अपूर्व अभिनय से आशातीत सौन्दर्य प्रदान कर दिया। पाल स्कैफील्ड ने स्ट्रेटफोर्ड में १६४०-१६५० के अन्तिम चरण में "ट्रायलस एण्ड क्रेसिडा" का जिससे कभी घृणा की जाती थी, अपने अभिनय से एक ऐसा नया जीवन दिया है कि वह अब शेक्सपियर के महान नाटकों में से एक समझा जाता है।

यद्यपि शेक्सपियर ब्रिटिश रङ्गमञ्च की बहुत मजबूत आधारशिला है, फिर भी वही अकेले इस पूरे ढाँचे को नहीं सँभाल सकता। उसके प्रभाव को अक्षुण्ण रखने के लिए नये नाटकों का खेला जाना आवश्यक है। अब रङ्गमञ्च में दिलचस्पी रखने वाले नौजवानों की ओर से यह जोरदार माँग की जाने लगी है कि नाटक केवल मनोरञ्जन का साधन ही न रहें, बल्कि इन्हें समाज के लिए भी कुछ योगदान करना चाहिए।

यह माँग वास्तव में यह कह कर की जाती है कि नाटक ऐसे होने चाहिए जो सामाजिक समस्याओं को हल करने में योगदान दे सकें।

नाटक 'जनमत' द्वारा नहीं लिखे जाते, उन्हें नाटककार ही लिखता है।

अंग्रेजी के मञ्च पर अब जो नये नाटककार आ रहे हैं—जान आस्बोर्न, 'फाउंड फिङ्गर आफ इक्सरसाइज' के लेखक, पाल शाफ़र, जान मार्टीमर, राबर्ट बोल्ट और अन्य अनेक उनकी यदि कोई विचार धारा है भी तो वह किसी खास 'वाद' के साथ जुड़ी हुई नहीं है, बल्कि जीवन के प्रति उनका निजी दृष्टिकोण मात्र है। भविष्य में जहाँ तक देखा जा सकता है, यह कहा जा सकता है कि उनमें ब्रिटिश रङ्गमञ्च को समृद्धि बनाये रखने की क्षमता विद्यमान है, लेकिन यह समृद्धि वैयक्तिक आधार पर ही होगी जो कि अतीत में इसका गौरव रहा है।

फ्रान्स में स्थिति इतनी स्पष्ट नहीं है। युद्धोत्तर काल के रङ्गमञ्च में फ्रेञ्च रङ्गमञ्च ने जीन पाल सार्त्र और एलबर्ट काम्रू के साद्देश्य नाटकों के कारण ही नेतृत्व प्राप्त किया। इस समय ऐसे सोद्देश्य नाटकों की स्थिति अच्छी नहीं है। इस समय फ्रान्स में बोलवार्ड की "कामेडिया" (सुखान्त नाटक) सबसे अधिक लोकप्रिय है। रङ्गमञ्च का बुद्धिवादी नेतृत्व अब यूजीन आईओनेस्को ..." सेमुएल बेकेट के हाथ में चला गया है जिन्हें राजनीति की समस्याओं के बजाय अपने मन की दुनिया में अधिक दिलचस्पी है।

एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य के साथ सम्बन्ध जोड़ने में सभी प्रकार की कलाओं को "निजी दुनिया" और "वास्तविक दुनिया" के बीच सन्तुलन कायम करने की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उभरते श्रेष्ठ सङ्गीत और चित्रकारी का प्रभाव आध्यात्मिक विकास की स्वतन्त्रता में योगदान करता है, वैसे, कभी-कभी परिणाम इसके विपरीत होते हुए भी देखा गया है।

परम्परागत सङ्गीत के आदी व्यक्ति को यदि स्योनबर्ग, स्ट्राविन्स्की और उनके अनुयायियों की सङ्गीत रचनाएँ सुनायी जाएँ तो वह चक्कर में पड़ जायेगा, आखिर समकालीन सङ्गीतकार क्या करना चाहते हैं ?

स्टेनबर्ग ने क्लासिक हारमनी की वेगनेरियन पद्धति के पश्चात् काल का सङ्गीत सीखना शुरू किया और जब वे अभी नौजवान थे उन्होंने महसूस किया कि परम्परागत सङ्गीत जो सदियों से चला आ रहा है, अपनी पूर्णता को पहुँच चुका है और उसमें अब और नयापन नहीं लाया जा सकता। इसलिए उन्होंने इस पद्धति को, जिसे "टोनल हारमोनिक सिस्टम" कहते हैं, छोड़ दिया और इसकी विपरीत दिशा में काम करना शुरू कर दिया। उन्होंने ऐसी पद्धति अपनायी जिसका परम्परागत सङ्गीत शैली से कहीं कोई सम्बन्ध नहीं था।

उन्होंने बारह स्वरों की सहायता से सङ्गीत रचना की पद्धति खोज निकाली। यह पद्धति इतनी जटिल है कि इसे संक्षेप में समझाया नहीं जा सकता। लेकिन तब से सैकड़ों नौजवान सङ्गीतकार उनकी इस नयी शैली को

ओर आकर्षित हुए और उसे अपना लिया। कुछ ने इस शैली के निर्धारित नियमों का कड़ाई से पालन किया और कुछ ने इसमें अपने तरीकों से परिवर्तन किये। इस प्रकार स्कोनबर्ग की खोज ने सङ्गीत की एक बहुत जटिल शैली को जन्म दिया। जो इस शैली को नहीं जानता वह उसका आनन्द नहीं ले सकता है।

स्ट्राविन्स्की ने अपनी युवावस्था में "ला सेक्रेड प्रिन्टेम्स" नामक सङ्गीत रचना की। यह ऐसी रचना है जो बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में सङ्गीत के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण मञ्जिल समझी जायेगी। इस रचना में स्ट्राविन्स्की ने परम्परा के विरुद्ध जिस निर्भीकता से नये प्रयोग किये उससे उन्होंने अन्य सङ्गीतकारों को यह सङ्केत भी दे दिया कि कुछ भी कर सकना सम्भव है। स्ट्राविन्स्की तत्काल नेता बन गये और उनके अनुयायियों की संख्या स्कोनबर्ग के अनुयायियों से अधिक है।

समकालीन सङ्गीत को समझने के लिए निम्नलिखित कुछ बातों पर ध्यान देना आवश्यक है:—

१—कोई सङ्गीत-रचना कितनी अच्छी या कितनी रद्दी है, इस बात का पता परस्पर विरोधी स्वरों के मेल की मात्रा से नहीं लगाया जा सकता। परस्पर विरोधी स्वरों का संयोजन हारमानिक सिस्टम का अभिन्न अङ्ग रहा है। बाख, बिथोवन और वैगनर की रचनाओं में इसका प्रचुर प्रयोग किया गया है।

इसमें कोई शक नहीं कि समकालीन सङ्गीत में यह अपेक्षाकृत अधिक प्रचुरता से पाया जाता है। हमारे कान पुराने सङ्गीतकारों की रचनाओं में इसके एक खास विन्यास को सुनते रहने के अभ्यस्त हो गये हैं। हमें अपने कानों को इस नये प्रयोग का अभ्यस्त बनाने के लिए कुछ समय धैर्य से प्रतीक्षा करनी चाहिए और यह महसूस करने का अभ्यास डालना चाहिए कि नया प्रयोग कर्णकटु नहीं है।

यह याद रखना चाहिए कि परस्पर विरोधी स्वरों के मेल का मतलब कोलाहल की सृष्टि करना नहीं है। कोलाहल सङ्गीतकार की भूल समझी जायेगी, यह ठीक उसी प्रकार का सङ्गीत होगा जैसे कोई बच्चा मनमाने ढङ्ग से स्वरों को बजा दे। विरोधी स्वरों का संयोजन तो जान-बूझ कर और समझदारी के साथ किया जाता है जिसका उद्देश्य किसी भावना को व्यक्त करना या नाटकीय प्रभाव पैदा करना होता है।

कोई सङ्गीत रचना कैसी है, उसका मूल्याङ्कन इस दृष्टि से नहीं किया जाना चाहिए कि वह किस शैली की है और उसमें विरोधी स्वरों का संयोजन कैसा है? यह उस रचना के प्रभाव और प्रेरणादायक शक्ति के आधार पर ही तय

किया जा सकता है। यदि सङ्गीतकार की रचना के पीछे उसकी प्रेरणा का प्रभाव है तो निश्चय ही वह सुनी जायेगी और पसन्द की जायेगी, चाहे वह किसी शैली की क्यों न हो।

२—यदि हम यह मान कर चलें कि समकालीन सङ्गीत उस सङ्गीत से भिन्न होगा जिसे हम पहले से जानते हैं और जिसे हम पसन्द करते हैं, तो हमारा काम बहुत आसान हो जायेगा। सङ्गीत की परिभाषा में कहा गया है कि यह "सुव्यवस्थित ध्वनि" मात्र है और ध्वनि को कई प्रकार से सुव्यवस्थित किया जा सकता है। पूर्व का सङ्गीत भी उतना ही बढ़िया सङ्गीत है जितना पश्चिम का, यद्यपि वह पश्चिमी पद्धति के अनुसार नहीं है। इसी तरह आधुनिक सङ्गीत भी प्राचीन सङ्गीत से किसी माने में कम नहीं है यद्यपि उसकी रचना परम्परागत तरीके से नहीं की गयी है।

३—सङ्गीत भावों की भाषा है। हम बिना भाषा सीखे नये सङ्गीत की कविता का ठीक उसी तरह आनन्द नहीं उठा सकते जिस प्रकार पोलिश या हङ्गेरियन भाषा सीखे बिना उन भाषाओं में लिखी कविता का आनन्द नहीं उठाया जा सकता।

४—यदि किसी कठिन रचना को अनेक बार सुना जाय तो इससे बहुत सहायता मिलती है। बारम्बार सुनते रहने से कान उन अजनबी स्वरों और लयों के अभ्यस्त हो जाते हैं।

५—समझने की इच्छा होनी चाहिए और बार-बार सुनते रहने का धैर्य होना चाहिए। ये गुण नये सङ्गीत की दुनिया में प्रवेश के लिए रास्ता तैयार कर देंगे और एक दिन उस दुनिया का द्वार हमारे लिए खुल जायेगा।

चित्रकारी में भी इस सदी के आरम्भ के कलाकारों ने, जिन्होंने नेतृत्व भी सँभाला, अपने शिक्षकों की ओर पीठ फेर दी, सिद्धान्तों और परम्परा को त्याग दिया। बाधाओं से घबड़ाये बिना उन्होंने स्वतन्त्र, गैरपरम्परावादी निजी अभिव्यक्तियों के लिए नये रास्ते बना लिये।

चारों ओर विद्रोह का वातावरण था। 'इम्प्रेशनिस्टों' ने भी अपने को स्वतन्त्र घोषित कर दिया, वे चित्रकारी के लिए स्टूडियो से बाहर निकल पड़े और रङ्गों का विभाजन कर दिया। उनके अनुयायियों ने चित्रण के विषय (इमैजरी) को बदल दिया, बढ़ा-चढ़ा दिया और विकृत कर दिया। नयी पीढ़ी ने रूपविधान के नियमों को भङ्ग किया, स्वरूप खण्ड-खण्ड कर दिया, उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग अलग कर दिये, डिजाइन का जो स्वरूप अब तक पूर्ण इकाई के रूप में समझा जाता था उसके एक-एक तत्व को अलग कर बिखरा दिया। भौतिक गुणों को खण्ड-खण्ड

करने और सैद्धान्तिक विधियों को नष्ट करने की इस प्रवृति को हमारे समकालीन कलाकारों ने अपनी चरम सीमा तक पहुँचा दिया।

गतिशीलता ही मुख्य नारा है। कलाकार प्रतीकों के द्वारा प्राकृतिक विज्ञान की असाधारण प्रगति की ओर सङ्केत करना चाहता है। इसका एक पहलू मनोवैज्ञानिक अन्वेषण भी है। अनेक समाकालीन कलाकार आज की व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक हालत समझना चाहता है, वह ऐसी रेखा, रङ्ग और रूपविधान की खोज में है जिससे आज की बेचैनी और आज की माँगों को व्यक्त कर सके।

अभिव्यक्ति के लिए बेचैन भावनाओं को चित्रित करने की नयी विधियों का आविष्कार किया गया, उदाहरण के लिए, सचल फोकस, दुहरा प्रतिबिम्ब या दृश्य व्यंग्य (विभ्रम पन)। कलाकार अक्सर यह कल्पना करता है कि उसे विषय-वस्तु को ठोस रूप देने की बजाय उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग को अलग-अलग कर के प्रस्तुत करना चाहिए, निर्माण नहीं बल्कि विध्वंस करना चाहिए।

जैसे-जैसे कलाकार आधुनिक दृष्टिकोण और विचार के अनुसार नये प्रतीकों को आकार-प्रकार देता है वैसे-वैसे वह आदिम युग की ओर बर्बर कला में नयी प्रेरणा के स्रोतों की तलाश करता है। वह बच्चों की स्वतः स्फूर्त कला की नकल कर कला की परम्परागत टेकनीक आदि का एक दम परित्याग कर देता है।

कला की दुनिया में बहुत विचित्र विषमता रहती है। दुनिया तकनीकी दृष्टि से जितनी ही जटिल होती जाती है, सामाजिक समस्याएँ जितनी जटिल होती जाती हैं, अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का एक के बाद दूसरा दबाव पड़ने से जितना ही मन अस्थिर होता जाता है, कलाकार में कल्पना की दुनिया में खोये रहने की प्रवृति उतनी ही बढ़ती जाती है, वह यथार्थ जगत् के अनुभवों से बचना चाहता है और हर मामले के बुनियादी अर्थ की तलाश में लिप्त हो जाता है।

दृश्य जगत् के अपार अनुभव कलाकार पर छा जाते हैं, गगन-मण्डल का असीम विस्तार और शक्तिशाली दूरबीनों और खुर्दबीनों के द्वारा इस जगत् के विभिन्न रहस्यों एवम् स्थितियों की खोजें उसे अभिभूत कर देती हे। विशाल कला-संग्रहालयों में एकत्र और फोटोग्राफी तथा फिल्मों के माध्यम से संग्रहीत अतीत की कलाकृतियाँ उसकी ज्ञानेन्द्रियों को मुग्ध कर देती है। बड़े पैमाने पर उपलब्ध इस सामग्री से लाभ ही होता हो, यह आवश्यक नहीं। कलाकार इन दृश्य तथ्यों की ओर पीठ फेर कर अदृश्य शक्तियों को देखने की कोशिश करता है।

इसी शताब्दी के आरम्भ में फ्रान्स में फाव और उनके अनुयायी थे और जर्मनी में भी एक दल था जिसका नाम था ब्रिज। इन्होंने निजी अभिव्यक्ति पर अधिक बल दिया। जिन कलाकारों ने इसका कट्टरता से पालन किया उन्हें आधुनिक रोमाण्टिक कहा जा सकता है।

इसके विपरीत क्यूबिस्टों की रेखागणित-प्रधान कृतियाँ आधुनिक क्लासिक कही जा सकती है। क्यूबिज्म धीरे-धीरे अमूर्त कल्पना में बदल गया। हर प्रवृत्ति को उसकी चरम सीमा तक पहुँचा दिया गया। कुछ चित्रकारों ने वर्गों, आयतों और गोल घेरों के द्वारा गैरमानवीय चित्रों की रचना की।

यह कहा जा सकता है कि बीसवीं सदी में कला विशुद्ध रेखागणित और एक दम निजी अभिव्यक्तियों के बीच में भटकती रही। ये प्रवृत्तियाँ सकारात्मक रही है।

इनके साथ ही नकारात्मक प्रवृत्तियाँ भी है। 'सररियलिस्टिक' युग घोर निराशावाद, विश्व के मामलों के सम्बन्ध में असमर्थता का भाव और अमानवीयता की बर्बर अभिव्यक्ति का युग था। निष्क्रियता की यह शैली वास्तव में प्रतिक्रिया मात्र है, इसमें मौलिकता नहीं, क्योंकि परिभाषा के अनुसार भी कला सोद्देश्य होती है, वह अधिकाधिक मानवीय अनुभवों को स्वीकार करने से इनकार नहीं करती बल्कि साथ ले कर चलती है।

समकालीन कला निरर्थक और तर्कहीन प्रतीत होती है। पराकाष्ठाओं की खोज में, असुन्दर के बदले सुन्दर का विनिमय कर और व्यवस्था के बदले अराजकता की पसन्द को देख कर ऐसा लगता है कि शाश्वत मान्यताओं को एक दम उलट दिया गया है या उनका पूर्ण परित्याग कर दिया गया है। आधुनिक कलाकार का कहना है कि उसका उद्देश्य मनोरञ्जन करना नहीं है, उसकी उत्कण्ठा स्वयं को व्यक्त करने की है और वह अपने को इस प्रकार व्यक्त करना चाहता है जिसमें बुनियादी तत्व के दर्शन हों और जिसका गम्भीर अर्थ हो।

इस समय यह स्पष्ट है कि कलाकार सन्तुलन कायम करने के लिए संघर्ष कर रहा है। अनेक प्रतिभाशाली उन खोये क्षितिजों को फिर प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं। वे इन क्षितिजों की सीमा के अन्दर सामाजिक चेतना को पुनः प्रतिष्ठित करना चाहते हैं और कृतियों में पुनः मानवीय विशेषताओं को स्थान देना चाहते है।

बीसवीं सदी के तकनीकी विद्रोह ने अनावश्यक अराजकता पैदा कर दी, यहाँ तक कि कला के क्षेत्र में गलत और अनुचित कदम उठाये गये। लेकिन सच्चे अर्थ में जिम्मेदार कलाकार को 'पाठ्यपुस्तकों के सिद्धान्तों' की सीमाएँ तोड़े जाने से काफी लाभ हुआ। क्यूबिज्म और अमूर्त चित्रण की विधियों से सम्भावनाएँ बढ़ी और कलाकार को चित्रों के माध्यम से अपनी बात कहने के लिए अधिक साधन मिल गया।

यह समझना गलत होगा कि मानवीय तत्वों के प्रतिष्ठित किये जाने से कला मध्यमार्ग पर आ जायेगी। कला में कभी भी पूर्ण स्थायित्व नहीं आयेगा, न ऐसा कभी हुआ है। कला के साथ स्थायित्व कभी नहीं रह सकता है।

उत्तरोत्तर तकनीकी प्रगति, नैतिक सङ्कट और साथ ही आध्यात्मिक विकास की कलाकार पर अवश्य प्रतिक्रिया होती रहेगी। यदि ऐसा लगता है कि वह सामाजिक कार्य-क्षेत्र से पीछे हट रहा है, मानव-जाति की उपेक्षा कर रहा है, तो यह उसके जीवन का एक अस्थायी पहलू है और इसमें कोई सन्देह नहीं कि अन्त में मानव-मूल्यों और समाज की गति-विधियों का उस पर प्रभाव अवश्य पड़ेगा, वे उसे अपनी ओर खींचेंगे और इससे वह फिर अपने लोगों के बीच आ जायेगा।

—८—

स्कूल, चर्च, साहित्य और कला के बाद अब हम इस विशाल जगत् में पदार्पण कर मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों पर दृष्टिपात करेंगे। इस दुनिया पर नजर डालना और करोड़ों मनुष्यों को गरीबी तथा गुलामी और विभिन्न सामाजिक बन्धनों में जकड़े हुए देखना और फिर इससे दुखी होना कितना आसान है। या फिर हिरोशिमा और बुचेनवाल्ड के महाविनाश की याद ताजा होने पर यह पूछना कितना आसान है कि इतने सालों के मानव-इतिहास के बाद भी क्या मानव-जाति अभी जङ्गली जीवन की बर्बरता से अधिक दूर नहीं जा सकी है?

फिर भी क्या हम ईसा की उस बात को नहीं दुहरा सकते जो उन्होंने जल-प्रलयों और विश्वासघात से ग्रस्त भविष्य पर दृष्टि डाल कर कही थी, "और जब ये सब होने लगे तो ऊपर की ओर देखो, अपना सिर ऊँचा उठाओ क्योंकि तुम्हारी मुक्ति का दिन निकट आ गया है।" जब हम मानव मात्र के सम्बन्ध में इन डरावनी बातों की ओर से दृष्टि फेर लेते हैं और यह सवाल करते हैं कि क्या मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्धों की दिशा में कोई प्रगति हुई है, क्या मानव-जाति की नैतिक भावना में वहार आयी है, तो फिर एक बार चित्त प्रसन्न हो जाता है और हिम्मत बढ़ती है।

यह कितनी महत्वपूर्ण बात है कि जब पश्चिम में जातीय भेदभाव की कोई घटना होती है तो सारे विश्व में तहलका मच जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि गत पचास वर्षों में मनुष्य की नैतिक भावना का जितना विकास हुआ और उसकी संवेदनशीलता जितनी बढ़ी, उसकी मिसाल इतिहास में मिलना मुश्किल है।

पश्चिमी समाज ने यह दिखा दिया है कि मनुष्य खुशहाली और सफलताओं से भरा जीवन बिताने के लिए स्वतन्त्र है और उसे प्रति दिन रोटी के एक टुकड़े के लिए बर्बरतापूर्ण सङ्घर्ष करने की आवश्यकता नहीं रह सकती। वह इस सङ्घर्ष को पीछे छोड़ काफी आगे बढ़ सकता है। दुनिया इसी की प्रतीक्षा करती रही है, वह चाहती भी यही है। इस सफलता के पीछे पश्चिम की ईमानदारी के साथ

की गयी यह घोषणा है कि सारे मनुष्य समान है। वास्तव में अमेरिका में लिटिल राक की घटनाएँ उस जबरदस्त सङ्घर्ष की प्रतिक्रिया मात्र है जो राष्ट्र ने मनुष्य की समानता की अपनी मान्यता को ठोस रूप देने के लिए किया। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए राष्ट्र की नैतिक भावना ने बार-बार उबाल खाया है। सारी मानव-जाति बाहें पसार कर भेदभाव से मुक्ति की माँग कर रही है, वह अभावों से मुक्ति चाहती है जो कि पश्चिम प्राप्त कर चुका है।

आज की दुनिया में नैतिक संवेदनशीलता की कैसी स्थिति है, यही बात वास्तव में वह बुनियाद है जिसके आधार पर ही यह तय होगा कि सर्वत्र मनुष्य अपनी इन माँगों को पूरा कर सकने में सफल होंगे या नहीं। बिना किसी सन्देह के यह कहा जा सकता है कि इस समय मानव मात्र के कल्याण की जितनी चिन्ता है उतनी इतिहास में कभी नहीं रही। न्याय, दया, उदारता और सहिष्णुता की भावना जितनी आज है, उतनी पहले नहीं थी। अब सामाजिक न्याय की जोरदार माँग की जाने लगी है।

खतरा इस बात का है कि राज्य सामाजिक न्याय के लिए जनता को नैतिक साधन उपलब्ध कराने के प्रयत्न में मानव के समस्त आध्यात्मिक और नैतिक मूल्यों का बलिदान कर देगा। प्रशासन-व्यवस्था, व्यक्ति की स्वतन्त्रता और उसकी आगे बढ़ने या कुछ कर दिखाने की भावना को कुचल देगा। मनुष्य की प्रवृत्ति इस तरह की है कि वह बड़ी चीज प्राप्त करने के प्रयत्न में हाथ में आयी छोटी चीज से ही सन्तोष कर लेने में नहीं हिचकता। सी० एस० लीविस ने इस द्विविधा का इस प्रकार व्यक्त किया है, "क्या यह सम्भव है कि श्रेष्ठ कल्याणकारी राज्य का लाभ भी प्राप्त हो जाय और उसकी हानियों का भी सामना न करना पड़े ?"

इस बात के सबूत है कि ऐसा सम्भव नहीं है। अमेरिका में इस बात पर चिन्ता व्यक्त की जा रही है कि नौजवान वर्ग पुरस्कार की बजाय सुरक्षा अधिक पसन्द करता है। स्वेडन में उदासी बढ़ती जा रही है। ब्रिटेन में अनेक लोगों की शिकायत है कि लोगों में पहलकदमी करने की भावना कम होती जा रही है, निष्क्रमण-कार्यालय के सामने युवकों की कतार खड़ी रहती है, विशेषकर स्वेज की घटना के समय यह बात देखी गयी। इससे पता चलता है कि वहाँ के समाजवादी वातावरण से लोगों को कुछ निराशा होने लगी है।

और चाहे कुछ हो, इतना स्पष्ट है कि गत पचास वर्षों में विश्वव्यापी पैमाने पर नैतिकता के स्तर पर जो हलचल पैदा हुई है, उससे प्रत्येक नागरिक और उसकी आवश्यकताओं पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है। चिन्ता का केन्द्र व्यक्ति बन गया है। महिलाओं का दर्जा भी बढ़ा है और अनेक राष्ट्रों में

उनके और पुरुषों के अधिकारों में काफी समानता कायम हो चुकी है। सभी लोगों का नियमित करने का कार्यक्रम भी आगे बढ़ा है और इस दिशा में प्रगति हुई है। कानून बर्बर नहीं रहे, अपराधियों के साथ दया का बर्ताव किया जाने लगा है। गुलामों का व्यापार अब दुनिया के कुछ अत्यल्प इलाकों तक ही सीमित रह गया है। नशीली वस्तुओं के चोरी-छिपे व्यापार और प्रयोग पर पुलिस की कड़ी नजर रहती है। यह कहा जा सकता है कि उपनिवेशों का विस्तार भी सङ्कुचित हुआ है। यदि सभी मनुष्यों की समानता का विचार विश्वव्यापी पैमाने पर एक ऐसा शक्तिशाली आन्दोलन न बन जाता जिसका विरोध असम्भव हो गया तो उपनिवेशों की उस तरह मुक्ति सम्भव नहीं थी।

संयुक्त राष्ट्रसङ्घ और इससे पूर्व लीग ग्राफ नेशन्स का अस्तित्व ही इसी विश्वव्यापी चेतना के कारण सम्भव हो सका। नैतिकता की भावना १९५६ के स्वेज-सङ्कट के समय जितनी तीव्र हो गयी उतनी इससे पूर्व कभी नहीं हुई थी। उस सङ्कट को पैदा करने के उद्देश्यों के सम्बन्ध में राष्ट्रसङ्घ में इस भावना को अभिव्यक्ति मिली। संयुक्त राष्ट्रसङ्घ ने इधर कुछ वर्षों से निःशस्त्रीकरण, लबनान और जोर्डन में सेना उतारने की विषम समस्याओं, पश्चिमी एशिया की समस्याओं, हङ्गरी में दमन, परमाणु शक्ति का शान्तिकालीन अथवा जनकल्याणकारी प्रयोग, अल्जीरिया, साइप्रस, डच न्यू गिनी और दक्षिणी अफ्रीका की समस्याओं को हल करने में गहरी दिलचस्पी ली है। दक्षिणी कोरिया पर आक्रमण के समय आक्रमण के विरोध में जो नैतिक तूफान उठ खड़ा हुआ, वह एक ऐतिहासिक घटना है, संयुक्त राष्ट्रसङ्घ में इस उग्र भावना को अभिव्यक्ति मिली और आक्रमण की निन्दा की गयी। यही नहीं, इसके साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय सेना का जन्म हुआ।

संयुक्त राष्ट्रसङ्घ ने अपने सामाजिक और आर्थिक कार्यक्रमों का विस्तार किया है। यूरोप, एशिया और लैटिन अमेरिका के लिए नियुक्त आर्थिक आयोग निरन्तर कार्य कर रहे हैं, साथ ही गरीबी से ग्रस्त जनता की उन्नति के लिए वित्तीय सहायता कर रहे हैं।

संयुक्त राष्ट्रसङ्घ के द्वारा विश्वव्यापी पैमाने पर मजदूरों के स्तर को ऊँचा उठाने की कोशिश की गयी, इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सङ्गठन की सहायता ली गयी। यह सङ्गठन १९१९ में ही कायम हो चुका था। केवल यही नहीं, राष्ट्रसङ्घ के विश्व-स्वास्थ्य-सङ्गठन, खाद्य और कृषि-सङ्गठन, और शिक्षा, विज्ञान एवम् सांस्कृतिक सङ्गठन कार्य कर रहे हैं।

अर्नोल्ड टायनबी का यह कथन विशेष दिलचस्प है:—

"मेरा अपना अनुमान है कि हमारा युग न तो अपने भयानक अपराधों के

लिए याद किया जायेगा और न आत्मध्वंसक आविष्कारों के लिए, बल्कि पाँच छः हजार वर्ष पूर्व सभ्यता के उदय के बाद से ऐसा प्रथम युग होने के लिए याद किया जायगा जिसमें लोगों ने सभ्यता के लाभों से सारी मानव-जाति को लाभान्वित करने का कार्य पूर्णतया व्यावहारिक समझने का साहस किया।"

मानव-जाति ऐसे उच्च आदर्शों को उनकी पूर्णता तक पहुँचाने के लिए प्रयत्न कर रही है जिनकी बुनियाद में पारस्परिक विश्वास निहित है और यही विश्वास समाज का निर्माण करता है। औद्योगीकरण, जनसंख्या के दबाव, उद्धत दम्भ और तानाशाह बनने की घातक महत्त्वाकांक्षा के सामने अक्सर यह बुनियादी नैतिक भावना दब सी जाती है और भुला दी जाती है। लेकिन इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि यह भावना बराबर विद्यमान रही है क्योंकि मनुष्य कायम है।

— ० —

राष्ट्रों का सहयोग

शान्ति की सम्भावना

राष्ट्र व्यक्तियों के समूह का ही दूसरा नाम है। जैसे मनुष्य अपने आध्यात्मिक विकास के लिए आजादी चाहता है, उसी प्रकार राष्ट्र भी युद्ध से छुटकारा चाहता है। भविष्य में युद्ध का बहुत खतरा है, लेकिन शान्ति की सम्भावनाएँ उनसे कहीं अधिक हैं।

जबरदस्त तनाव होने के बावजूद आज ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जो यह बताते हैं कि और अधिक भीड़-भाड़ वाली भावी दुनिया में राष्ट्र किस प्रकार आपस में मिल कर रह सकते हैं। पहले हम समस्याओं और खतरों का विश्लेषण करेंगे। इस प्रसङ्ग में उक्त बात स्मरण रखनी चाहिए। अक्सर यह देखा गया है कि अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों के मुकाबले स्पूतनिकों की अच्छा साबित करने के जोश में भद्रता और कानून-पालन की प्रवृत्तियों को नजर-अन्दाज कर दिया जाता है और एक मात्र तकनीकी प्रगति के आधार पर मानव-जाति के भविष्य के सम्बन्ध में निर्णय सुना दिया जाता है।

ऐसी रक्षा-व्यवस्था आवश्यक है जिससे आक्रामक सहसा आक्रमण करने का साहस न कर सके। लेकिन यदि एक बार आक्रमण होने से बचा भी लिया गया तो इतना ही पर्याप्त नहीं। आक्रमण के मार्ग में अवरोधों के रूप में सामरिक दृष्टि से तैयार वायुसेना और शक्तिशाली अमेरिकी थल सेना हमें केवल कुछ समय का लाभ देती है। लेकिन समय का लाभ किस लिए? वास्तविक शान्ति कायम

करने के लिए, बन्धुत्व की भावना में आस्वस्त करने के लिए, मनुष्य की आजादी, न्याय, शिक्षा और सम्मान के साथ रहने की इच्छाओं की पूर्ति के लिए।

यदि व्यक्तियों में परस्पर विश्वास न रहे, पारस्परिक सहानुभूति न रहे, और सद्भावना न रहे तो इस दुनिया में कोई भी समाज कायम नहीं रह सकता। इन सब बातों से समाज की नींव को पक्का करने में मदद मिलती है। लोग अपने बिल पदा करते है, लाल रोशनी होने पर रुक जाते हैं, और डूबते बच्चे को बचाने के लिए पानी में कूद पड़ते हैं और ये सारे काम वे पहले से सोच समझ कर नहीं बल्कि सामान्य रूप से करते हैं। जब हम इस दुनिया में शान्ति और भाई-चारे की भावना पैदा करने की कोशिश करते है तो, हम वास्तव में मनुष्य की इन्हीं सामान्य और स्वाभाविक प्रवृत्तियों के आधार पर ही यह कोशिश करते है। सिर से पैर तक शस्त्रास्त्रों से लैस होने से जो समय मिल रहा है उसमें मानवजाति को समाज की नींव और अधिक मजबूत बनाने में लगाना चाहिए।

शस्त्रीकरण की होड़ से नयी समस्याएँ पैदा होती है और नये खतरे जन्म लेते है। अमेरिका और सोवियत सङ्घ, दोनों के पास बड़ी संख्या में परमाणु और उद्जन बमों का स्टाक जमा है। आमतौर पर माने गये अनुमानों के अनुसार दोनों में से प्रत्येक के पास ऐसे पर्याप्त शस्त्रास्त्र है जिनसे वे एक-दूसरे के प्रायः सभी सम्भव फौजी केन्द्रों का सफाया कर सकते हैं, प्रत्येक शहर को एकदम बरबाद कर सकते है और उनके निवासियों को नष्ट कर सकते हैं, सारी दुनिया के वायुमण्डल को आने वाली अनेक सदियों तक के लिए प्राणघातक विकीरणों से विषाक्त कर सकते है और यदि पहले ही हमले में दुश्मन के रक्षा-मोर्चों का सफाया कर दिया गया तो बचे हुए बमों को भविष्य के लिए रख सकते हैं।

इन सम्भावनाओं को देखते हुए, एक परमाणु वैज्ञानिक के मतानुसार दुनिया के ये दो बड़े राष्ट्र एक बोतल में बन्द दो बिच्छुओं की तरह है जिनमें से कोई एक-दूसरे को डङ्क मार कर उसके प्राण ले सकता है लेकिन इस सङ्घर्ष में वह स्वयं भी दूसरे के प्राणघातक डङ्क से नहीं बच सकता। इसी को कहते हैं "परमाणु गतिरोध"।

मनुष्य युद्ध करने से शायद ही कभी रुका है, इसका कारण यह रहा है कि लड़ाई के हथियार आदिम काल के रहे। लेकिन ऐसी भी लड़ाइयाँ है जिनसे राष्ट्र पीछे हटते रहे हैं क्योंकि इनके परिणाम केवल दुश्मन के लिए ही नहीं, उन लोगों के लिए भी जो तटस्थ है और असम्भव नहीं कि स्वयं के लिए भी इतने घातक हो सकते है कि उनका सहज ही अनुमान नहीं लगाया जा सकता या फिर इसलिए कि लड़ाई से होनेवाले लाभ के मुकाबले क्षति कहीं अधिक होने की आशङ्का रहती है। उदाहरण के लिए रासायनिक या कीटाणु युद्ध हो सकता है

कि राष्ट्रों के प्रधान शान्ति से विचार कर परमाणु-युद्ध को भी इसी कोटि में रख दें।

मिसाइल या प्रक्षेपास्त्र के विकास से या किसी नयी तरकीब के निकल आने से सन्तुलन बदल सकता है परन्तु शस्त्रीकरण की वर्तमान रफ्तार को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि यह गतिरोध की स्थिति यदि अनिश्चित काल तक नहीं तो अभी कई साल तक तो कायम रह सकती है।

सोवियत सङ्घ के पास कितने शक्तिशाली प्रक्षेपास्त्र हैं, इस सम्बन्ध में कोई निश्चित बात मालूम नहीं है, लेकिन उपलब्ध जानकारी के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि सोवियत सङ्घ के पास १९५७ से ऐसे प्रक्षेपास्त्र है जो डेढ़ हजार मील तक मार कर सकते हैं और वह दिन दूर नहीं जबकि उसके पास पाँच हजार मील तक मार करने वाले प्रक्षेपास्त्र हो जायेंगे।

लेकिन, इसके विपरीत अमेरिका के पाँच हजार मील दूर मार करने वाले ऐसे एटलस प्रक्षेपास्त्र, जिनको अमेरिका से छोड़ा जा सके १९६० या उसके बाद तक हो सकने की आशा नहीं है।

इसलिए यह मानते हुए कि मौजूदा अनुमान सही है, सोवियत सङ्घ इस समय ऐसी स्थिति में है कि वह यूरोप, दक्षिणी एशिया और उत्तरी अफ्रीका को अपने प्रक्षेपास्त्रों का आसानी से निशाना बना सकता है और यदि वह अभी समर्थ नहीं हो सका है तो शीघ्र ही अमेरिका महाद्वीप पर भी प्रक्षेपास्त्रों की बौछार करने में समर्थ हो जायेगा।

फौजी विशेषज्ञों के मतानुसार स्वतन्त्र विश्व को इससे इतना गम्भीर खतरा नहीं है जितना सतही तौर पर प्रतीत होता है।

अमेरिका के पास आवश्यकता से अधिक बम-वर्षक विमान हैं और वह सोवियत अड्डों पर इस बीच कई बार परमाणु बम गिरा कर उन्हें तहस-नहस कर सकते हैं।

शायद यह कहना पर्याप्त होगा कि यदि दोनों देश अपने प्रक्षेपास्त्रों को और शक्तिशाली बनाने की मौजूदा रफ्तार कायम रखें तो लम्बे समय तक दोनों में से कोई भी दूसरे से बहुत आगे नहीं बढ़ सकता है।

इस बात का हमेशा खतरा बना हुआ है कि जरा सी गलती से अन्तर्महाद्वीपीय युद्ध छिड़ सकता है परन्तु अमेरिका ने "दो बार जाँच" का तरीका निकाला है जिसके अनुसार विमान-चालक अपनी ओर से इस प्रकार की भूल न होने देने के लिए पक्की व्यवस्था कर लेते हैं।

आज राष्ट्रों के सामने मुख्य प्रश्न यह नहीं है कि राष्ट्रीय या सैद्धान्तिक (आइडियालाजीकल) उद्देश्यों को पूरा करने के लिए कूटनीति के बजाय युद्ध को

साधन बनाया जा सकता है। इसके बजाय प्रश्न यह हो सकता है कि राष्ट्रीय या अन्य उद्देश्यों की पूर्ति के लिए युद्ध के बजाय कम से कम विश्व युद्ध न छेड़कर किस तरह कूटनीतिक तरीकों और नीति-कौशल का तरीका अपनाया जाय।

लेकिन इसे "युद्ध का नैतिक पर्याय" नहीं कहा जा सकता। वैसे विलियम जेम्स का विश्वास है कि ऐसा पर्याय खोजा जा सकता है यद्यपि उसका झुकाव भी युद्ध की ओर ही होगा। इससे स्पष्ट है कि युद्ध न छेड़कर उसके बदले जो अन्य तरीका अपनाया जायेगा वह "धीरे-धीरे नोचने" की प्रक्रिया की तरह होगा, छोटी मोटी-लड़ाई लड़ने का तरीका होगा और लुक छिप कर और विभिन्न रूपों से दूसरे देश की सेना, प्रशासन आदि में अपने लोगों को स्थापित करने का तरीका होगा जिससे उनका पञ्चमाङ्गियों की तरह इस्तेमाल किया जा सके। इस कला में कम्युनिस्ट बहुत दक्ष हैं और चेकोस्लोवाकिया से लेकर कोरिया और सीरिया तक उन्होंने इस कला में अपनी निपुणता का परिचय दिया है। यह व्यापार, ऋण और आर्थिक सहायता का रूप भी ले रहा है।

इसमें सन्देह नहीं कि काफी कठिन होने के बावजूद अमेरिका प्रतियोगिता के लिए आर्थिक क्षेत्र चुनेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं है जैसा कि राष्ट्रपति आइजनहावर ने कहा है कि "शान्ति के लिए इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है।" लेकिन वे उनकी इस बात से भी सहमत होंगे जो उन्होंने किसी और समय कही थी कि "यदि और कोई रास्ता नहीं रहा तो फिर 'सैनिक कीकिट' (साज-सामान का बण्डल) का वजन तो गुलामी की जञ्जीर से हल्का ही होता है।"

इस बात की बहुत धुंधली-सी आशा है कि अन्ततः राष्ट्रों में परमाणु और अन्य प्रकार के शस्त्रास्त्रों को सीमित करने या उन पर नियन्त्रण कायम करने के लिए कोई समझौता हो जायेगा। बहुत लम्बे समय से लोग यह उम्मीद लगाये हुए हैं और यह बढ़ती भी जा रही है। परन्तु अन्तरिक्ष तक पहुँच हो जाने से, जो कि युद्ध का एक और साधन बन गया है, युद्ध के शस्त्रास्त्रों पर नियन्त्रण रखने की समस्या में एक और नयी जटिलता पैदा हो गयी है।

नियन्त्रण-योजना जहाँ से शुरु होती है, वह साधारण सा लेकिन तर्कसङ्गत सा प्रस्ताव है। यह प्रस्ताव है कि अन्तरिक्ष का केवल शान्तिपूर्ण कार्यों के लिए इस्तेमाल किया जाना चाहिए और एक बार यह निर्णय कर इसे प्रभावशाली ढङ्ग से लागू करने चाहिए।

इस समस्या के विद्यार्थियों का मत है कि इस प्रकार नियन्त्रण उन साधनों पर तो आसानी से लागू किया जा सकता है जो पृथ्वी की कक्षा में चक्कर लगाने वाले होंगे, लेकिन जो साधन सीधे मार करते हों उन पर यह निषेधाज्ञा

लागू कर सकना कठिन होगा। पृथ्वी की कक्षा में घूमने वाले साधन कई वर्षों तक न सही कुछ महीने तो अन्तरिक्ष में सुरक्षित रह सकते हैं, लेकिन सीधी मार करने वाले साधन तो चन्द मिनटों में ही अपना काम कर लेते हैं।

निःशस्त्रीकरण के विशेषज्ञों का मत है कि पृथ्वी का चक्कर लगाने वाले साधनों पर नियन्त्रण रखना तकनीकी दृष्टि से भी सम्भव है, लेकिन क्या यह राजनीतिक दृष्टि से भी सम्भव हो सकता है?

इस प्रश्न का उत्तर इस सवाल के उत्तर पर निर्भर करता है जो हर निःशस्त्रीकरण समझौताकर्ता की पृष्ठभूमि में बना रहता है—इस नियन्त्रण से किसको लाभ पहुँचेगा? कूटनीतिज्ञ कहते हैं, एक आदर्शवादी के लिए यह समझना बिलकुल ठीक है कि नियन्त्रण से सबको लाभ पहुँचेगा। लेकिन सरकारें आमतौर पर ऐसे विश्वासों को अपनी नीतियों का आधार नहीं बनाती, ऐसा तभी सम्भव हो सकता है जबकि जनमत का बहुत दबाव पड़े और सरकार मजबूर हो जाय। जिम्मेदार सरकारें अपने फौजी अधिकारियों से परामर्श करती हैं, अपनी राज्य सरकारों, सूचना एजेन्सियों और विज्ञान सलाहकार बोर्डों से विचार-विमर्श करती हैं और तब यह निर्णय करती हैं कि हथियारों पर नियन्त्रण के किसी प्रस्ताव का दुनिया में उनके राष्ट्र की फौजी और राजनैतिक स्थिति पर क्या प्रभाव पड़ेगा।

पृथ्वी की कक्षा में चक्कर लगाने वाले अन्तरिक्ष-यानों के सम्बन्ध में कम से कम वाशिङ्गटन में गम्भीर सन्देह है। वाशिङ्गटन का ख्याल है कि यदि इनकी उड़ान पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया तो इससे सोवियत सङ्घ को लाभ होगा, इसलिए अमेरिका को इस प्रकार का नियन्त्रण टालने की कोशिश करनी चाहिए, ऐसी नीति अपनानी चाहिए जिससे नियन्त्रण का निर्णय करने में विलम्ब हो जाय। परन्तु ऐसा करते समय इस बात पर ध्यान रखा जाय कि विश्वव्यापी पैमाने पर अधिकाधिक जनता का समर्थन प्राप्त करने और उनके विचारों को अपने अनुरूप ढालने के सङ्घर्ष में अमेरिका को जहाँ तक सम्भव हो सके कम से कम क्षति उठानी पड़े।

लेकिन इस नियन्त्रण से अमेरिका को नुकसान क्यों होगा? उपग्रहों या अन्तरिक्ष-यानों को फौजी उद्देश्य से इस्तेमाल करने पर प्रतिबन्ध लग जाने से टोह लेने वाले उपग्रह नहीं भेजे जा सकेंगे। इससे सोवियत सङ्घ को अधिक नुकसान नहीं होगा, क्योंकि अधिकांश पश्चिम खुली किताब की तरह है, वहाँ की बहुत कम बातें ऐसी हैं जो गोपनीय रह सकी हैं। परन्तु पश्चिम को इससे बहुत नुकसान होगा और सोवियत सङ्घ ने लौह-आवरण के द्वारा जासूसी के लिए जो

जबरदस्त रुकावटें पैदा कर रही हैं, वे अन्तरिक्ष का इस्तेमाल करके उन रुकावटों को भेद कर उसके रहस्यों का पता नहीं लगा सकेंगे।

अन्तरिक्ष के इस्तेमाल का एक तरीका और है और वह है प्रक्षेपास्त्रों या मिसाइलों का तरीका। लेकिन इसे भिन्न दृष्टि से देखा जाता है।

यह कहा जाता है कि ये प्रक्षेपास्त्र चाहे अन्तर्महाद्वीपीय मार करने वाले हों या उससे कम दूरी तक मार करने वाले (इन्टरमीडिएट) हों, ये वास्तव में और कुछ नहीं केवल सुधरी हुई तोपें ही हैं। यह कहा जा सकता है कि ये असाधारण लम्बी दूरी तक मार करने वाली तोपें हैं। यह बात जरूर है कि कुछ प्रक्षेपास्त्रों से आसमान से धरती पर मार की जा सकती है और कुछ ऐसे भी हैं जिन्हें समुद्र की सतह से चलाया जा सकता है। विशेषज्ञों के अनुसार इन गुणों के कारण से नये किस्म की तोपें जरूर बन गयी परन्तु बुनियादी रूप में कोई परिवर्तन नहीं आया।

चूंकि ये प्रक्षेपास्त्र अद्भुत किस्म के हैं—कुछ ही मिनटों में हजारों मील की दूरी तय कर लेते हैं—इसलिए लोगों की नजरें इन पर लगी हैं। जब औसत व्यक्ति अन्तरिक्ष के हथियारों पर नियन्त्रण लगाने की बात कहता है तो उसका तात्पर्य वास्तव में इन प्रक्षेपास्त्रों के खतरे को खत्म करने से ही होता है।

जहाँ तक सैनिक का सम्बन्ध है, इस प्रकार के अस्त्रों को खत्म कर देने से अचानक हमले से रक्षा की व्यवस्था में उल्लेखनीय सुधार हो सकेगा, विमान और अन्य हथियारों की गति अपेक्षाकृत काफी मन्द है इसलिए उनको बीच में ही नष्ट करना अधिक आसान हो जायेगा।

सोवियत सङ्घ ने प्रस्ताव रखा है कि अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्रों पर रोक लगा दी जाय। उसने यह प्रस्ताव इस रूप में रखा है कि सोवियत सङ्घ अपने लाभ की स्थिति का परित्याग करने को तैयार है, इसके बदले उसने माँग की है कि अमेरिका सोवियत साम्राज्य की सीमाओं के समीप से अपने विमानों और इन्टरमीडिएट प्रक्षेपास्त्रों के अड्डे हटा ले।

मास्को ने यह तर्क दिया है कि अन्तर्महाद्वीपीय प्रक्षेपास्त्र तो अमेरिकी बम-वर्षकों को और इन्टरमीडिएट प्रक्षेपास्त्रों का मुकाबला करने के लिए ही बनाये गये हैं। यदि इनमें से एक को खत्म किया जाता है तो यह भी जरूरी है कि दूसरे को भी खत्म किया जाय। वास्तव में सोवियत सङ्घ प्रक्षेपास्त्र-तकनीक में अपनी प्रगति के बल पर सौदेबाजी करना चाहता है और उसके द्वारा अमेरिका के फौजी गठबन्धन का विघटन करना चाहता है।

अमेरिका को ऐसी सौदेबाजी बिलकुल ही मन्जूर नहीं। इसका एक कारण यह है कि सोवियत सङ्घ ने प्रक्षेपास्त्रों के मामले में जो प्रगति की है, यदि

शस्त्रीकरण की होड़ कायम रही तो उसकी इस प्रगति को बांधा जा सकता है। दूसरा कारण यह है कि इस बात में सन्देह बना हुआ है कि प्रक्षेपास्त्रों पर प्रतिबन्ध कड़ाई से लागू किया जा सकेगा। छिपा कर रखे हुए प्रक्षेप-मस्त्रों का पता लगाना वैसे ही काफी कठिन है, फिर शान्तिकालीन प्रयोगों के प्रक्षेप-मस्त्रों ने इस समस्या को और भी जटिल बना दिया है। शान्तिकालीन प्रयोगों के लिए बने इन प्रक्षेप-अस्त्रों को युद्ध छिड़ने पर मिसाइल छोड़ने लायक बनाया जा सकता है। इस रद्दोबदल में अधिक कठिनाई नहीं होगी, जरूरत इस बात ही की होगी कि मिसाइल छिपा कर रखे हुए हों।

बताया गया है कि अचानक आक्रमण के खतरे को कम करने के लिए भी उपाय किये जा सकते हैं, चाहे वह हमला विमानों से किया जाय या मिसाइलों से। निकट भविष्य में इसी बात पर अनुसन्धान किया जायेगा कि अचानक हमले की कोई सम्भावना ही न रहे या हमला अचानक किया ही न जा सके।

इससे फौजी समझौते में शामिल राष्ट्रों को सबसे अधिक लाभ होगा क्योंकि अचानक आक्रमण का शिकार उनके ही बनने की अधिक सम्भावना है। इसलिए इस प्रकार के प्रस्तावों को सोवियत सङ्घ द्वारा पश्चिम को रियायत समझा जाता है और पश्चिम इस रियायत को मास्को को अपनी ओर से रियायतें देकर ही स्वीकार कर सकता है।

—२—

शस्त्रास्त्रों पर नियन्त्रण की सभी सम्भावनाओं के लिए ईमानदारी और सद्भावना की आवश्यकता है और सोवियत सङ्घ के नेताओं ने अभी तक इसका प्रदर्शन नहीं किया है। इसमें कोई सन्देह नहीं प्रतीत होता कि जहाँ तक सोवियत जनता का सवाल है, वह पूरी तरह शान्ति के पक्ष में है। उनके देश को द्वितीय विश्वयुद्ध में जो क्षति उठानी पड़ी और जिसकी कि अब पूरी जानकारी हो सकी है, किसी अन्य बड़े राष्ट्र को क्षति से कहीं अधिक है। अमेरिकी गृह-युद्ध के समय दोनों पक्षों को जितनी क्षति हुई उससे कहीं अधिक सोवियत सङ्घ को इस द्वितीय विश्वयुद्ध में सहनी पड़ी। इन परिस्थितियों में शान्ति की बात कहना सोवियत नेताओं के लिए स्वाभाविक है।

स्तालिन ने अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति आन्दोलन का कम्युनिस्ट जगत् के लाभ के लिए इस्तेमाल किया और सर्वत्र विश्वशान्ति रैलियों, शान्ति परिषदों और शान्ति कर्मचारियों की मदद से उसे आगे बढ़ाया। लेकिन ऐसा करने में स्तालिन का उद्देश्य अच्छा नहीं था। यह उन्होंने किसी और मतलब से किया। अपने अन्तिम

भाषण में उन्होंने शान्ति-आन्दोलन के प्रसङ्ग में कहा था कि यह कम्युनिस्ट पार्टी का अभिन्न अङ्ग है और बिना पार्टी के यह जीवित नहीं रह सकता।

जनता को उन्होंने इतना अधिक प्रभावित कर रखा था कि वे जनता के नाम पर सोवियत सङ्घ को युद्ध में झोंक सकते थे।

उनके उत्तराधिकारियों को चाहे वे निकिता एस० ख्रुश्चेव हों या वे, जो उनके तत्काल बाद सत्तारूढ़ हुए, ऐसे युद्ध के लिए जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त करने के लिए बहुत सावधानी से कोशिशें करनी पड़ेंगी जिसमें आक्रमण होने की जरा भी गन्ध आती हो।

सोवियत सङ्घ को अच्छी तरह जानने वाले यूरोपीय पर्यवेक्षकों को इस बात में गहरा सन्देह है कि सोवियत नेता युद्ध की योजना बना रहे हैं। ऐसे देश में जहाँ जनशक्ति की कमी हो, लामबन्दी से सारे उद्योगों की रफ्तार या तो मन्द पड़ जायेगी या फिर वे एकदम ठप पड़ जायेंगे।

यही नहीं, शस्त्रीकरण का व्यय भी सोवियत अर्थ-व्यवस्था पर बहुत बड़ा बोझ बना हुआ है जब कि अमेरिकी अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता, वह उस पर इतना बड़ा बोझ नहीं है। युद्ध से आर्थिक विकास रुक जायेगा और जो कुछ असाधारण त्याग करके बनाया जा सका है, उसका सफाया हो जायेगा।

इसके साथ ही राजनीतिक कारण भी हैं। युद्ध से सोवियत सङ्घ के नेताओं और वहाँ की नौकरशाही व्यवस्था पर बहुत दबाव पड़ेगा जबकि वर्तमान समय में वहाँ इन दोनों ही क्षेत्रों में एक नया परिवर्तन आ रहा है और संयुक्त-नियन्त्रण की एक जटिल व्यवस्था का विकास हो रहा है। नई व्यवस्था के अन्तर्गत हजारों प्रतिभाशाली लोगों को अपने-अपने क्षेत्रों में पहल करने के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। अभी उन्हें एक टीम की तरह मिल-जुल कर काम करने के अभ्यस्त होने में अनेक वर्ष लगेंगे।

औद्योगिक प्रबन्ध के विकेन्द्रीकरण से, जिससे प्रान्तीय एजेन्सियों को बहुत अधिक अधिकार दे दिये गये हैं, एक ही केन्द्र में केन्द्रित रहने के बजाय उस केन्द्र के चारों ओर विकसित होने की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है। कम्युनिस्ट-खेमे के अन्दर एकरूपता न रहने और भेद पैदा हो जाने से, मास्को और पेकिङ्ग के बीच स्वार्थों की टक्कर और मतभेद की सम्भावना से, और समाजवादी देशों में, फिलहाल श्रम के विभाजन की जो नयी और जटिल व्यवस्था विकसित हो रही है उससे युद्ध होने पर सोवियत सङ्घ के लिए खतरा पैदा हो सकता है।

अक्सर यह कहा जाता है—अकेले अमेरिका में ही नहीं—कि अपने घरेलू कारणों से किसी दिन सोवियत सङ्घ अपने को युद्ध में झोंक देगा। प्रेसीडियम

के सदस्यों में (जो पहले पोलित्ब्यूरो था) सत्ता प्राप्त करने की प्रतिद्वन्द्विता होने या शासन के विरुद्ध विद्रोह की आशङ्का से ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो सकती हैं कि सोवियत सङ्घ युद्ध में पड़ जाय।

यद्यपि इनमें से किसी भी कारण को असम्भव नहीं कहा जा सकता, फिर भी ऐसी कोई सम्भावना दिखाई नहीं देती।

प्रेसीडियम के सदस्यों में प्रतिद्वन्द्विता है और जब से लेनिन की मृत्यु हुई, तब से है। वैसे तो लेनिन के अस्वस्थ हो जाने के बाद से ही यह प्रतिद्वन्द्विता चली आ रही है। लेकिन इसका इतिहास यह सिद्ध करता है कि शीर्ष-स्थान करने के लिए इन सङ्घर्षों में काफी क्रूरता रही लेकिन ये चहारदीवारी के भीतर ही सीमित रहे।

१९२५ से १९३४ तक के दस वर्षों में स्तालिन ने अपने करीब एक दर्जन प्रतिद्वन्द्वियों का सफाया कर दिया। उनके उत्तराधिकारियों ने१९५३ में लावरन्ती बेरिया को खत्म कर दिया। निकिता ख्रुश्चेव ने १९५५ से जून १९५७ तक अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियों को हटा दिया। लेकिन यह सब सोवियत सङ्घ की परराष्ट्र नीति पर तनिक भी प्रभाव डाले बिना ही सम्पन्न हो गया।

इस बात के भी कोई ठोस सबूत नहीं है कि सोवियत जनता इस शासन से इतनी असन्तुष्ट हो चुकी है कि वह कभी भी उसके विरुद्ध विद्रोह कर सकती है। जो कुछ भी सबूत मिले हैं वे इसकी विपरीत दिशा की ओर सङ्केत करते हैं, अर्थात् सोवियत जनता अपने रहन-सहन में सुधार सीमित पैमाने पर ही सही कानून-व्यवस्था की पुनः प्रतिष्ठा और कुछ अन्य छोटे-मोटे फायदों के लिए जो छोटे तो हैं फिर भी उनको मापा जा सका है, अपनी इस सरकार को ही श्रेय देती है।

हाल ही सोवियत सङ्घ की यात्रा करने वाले विदेशी प्रतिनिधियों ने भी प्रायः एक स्वर से इस बात पर सहमति प्रकट की है कि गत चार दशाब्दियों से निरन्तर *जो प्रोपेगेण्डा होता रहा है और जनता को अपनी विचारधारा में दीक्षित करने* की कोशिश होती रही है, उसका सोवियत जनता पर असर पड़ा है।

उनके मन में स्वतन्त्र विश्व की बहुत विकृत तस्वीर बनी हुई है। गैर-कम्युनिस्ट विश्व के सम्बन्ध में निष्पक्ष जानकारी प्राप्त करने के लिए वहाँ की जनता के पास कोई साधन नहीं हैं। जिन कुछ लोगों को विदेश जाने की अनुमति दी भी जाती है वे न केवल अच्छी तरह परखे हुए पार्टी सदस्य ही होते हैं बल्कि वे लोग होते हैं जिनका सोवियत शासन में कहीं न कहीं कुछ स्वार्थ होता है।

सोवियत जनता और सरकार चाहे क्रेमलिन की बातों में कितना ही आक्रामक स्वर क्यों न हो, युद्ध छेड़ना नहीं चाहती।

१९५२ में सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी की १९ वीं कांग्रेस में जिसमें स्तालिन मौजूद थे और यह उनके जीवनकाल की अन्तिम पार्टी कांग्रेस थी, सोवियत सङ्घ का सामयिक मामलों का "मास्टर प्लान" प्रस्तुत किया गया जिससे सब उसे जान सकें।

इस "मास्टर प्लान" में यह बात स्पष्ट रूप से कही गयी है कि सोवियत सङ्घ युद्ध में उलझना नहीं चाहता लेकिन वह पश्चिमी खेमे के बढ़ते आन्तरिक मतभेदों और अन्ततः उसके विघटन से निश्चय ही विजयी के रूप में उभरेगा।

१९५३ में स्तालिन और जार्जी मालेन्कोव ने जो भविष्यवाणियाँ की उनमें से अधिकांश वास्तविक स्थिति से बहुत दूर केवल कल्पनालोक की बातें थीं। उनसे यह भी पता चला कि सोवियत नेताओं का उन शक्तियों के सम्बन्ध में कोई साक्षात्कार नहीं जो पश्चिमी जगत् को एकसूत्र में बांधे हुए हैं और उन नियमों को वे नहीं जानते जिनके अनुसार यह पश्चिमी जगत् चलता है।

लेकिन जब तक स्वतन्त्र-जगत् के विघटन और उसके मास्को की गोद में आ पड़ने की प्रतीक्षा करते रहने का यह निष्क्रियतामूलक कार्यक्रम पूरा हो, सोवियत सङ्घ ने अन्तरिम काल के लिये इसके पूरक के रूप में एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरिका के देशों की अर्थव्यवस्था में अपना असर जमाने का सक्रिय आर्थिक कार्यक्रम भी बनाया।

जार के जमाने की तरह ही फिर रूस सक्रिय हो उठा है और जब से सोवियत सङ्घ ने अपना आर्थिक-अभियान छोड़ा उसके कुछ साल बाद ही क्रेमलिन को जो लाभ हुआ है, उसको कम करके आँकना गलत होगा।

क्या सोवियत अर्थ-व्यवस्था इतनी मजबूत है कि वह अनिश्चितकाल तक इस व्यापक अभियान को चला सकती है, यह विचारणीय प्रश्न है। लेकिन अधिकतर राजनैतिक पर्यवेक्षक इस बात से सहमत है कि पश्चिम को विदेशी सहायता के क्षेत्र में मास्को की चुनौती का मुकाबला करने के लिए यथासम्भव प्रयत्न करना चाहिए, और काफी बुद्धिमानी तथा निर्णायक तरीके से मुकाबला करना चाहिए।

गत चालीस वर्ष के इतिहास ने दुनियाँ को एक यह सबक सिखाया है कि जहाँ रहन-सहन का स्तर ऊँचा उठता है वहाँ कम्युनिज्म की सम्भावना खत्म हो जाती है। आगे चलकर यह बात स्वयं सोवियत सङ्घ पर भी लागू हो सकती है।

—३—

इस बीच पश्चिम सामूहिक सुरक्षा-व्यवस्था और विदेशी आर्थिक सहायता के द्वारा शान्तिपूर्ण सन्तुलन बनाये हुए है और इसे भविष्य के लिए सुरक्षित रखना चाहता है। यदि आप नक्शे में अमेरिका से उस राष्ट्र तक एक रेखा खींचते चले जायें जिसके साथ १९५८ में अमेरिका के विशेष सन्धि-सम्बन्ध हैं तो आपको पता चलेगा कि ऐसी ४४ बड़ी काली रेखाएँ खिंच गयी हैं।

तब आप इस निर्णय पर पहुँचेंगे कि और यह सही निर्णय होगा, कि अमेरिका अपने संस्थापकों की किसी सन्धि या समझौते में शामिल न होने की चेतावनी से इस युद्धोत्तर काल में काफी आगे बढ़ चुका है।

ये उभयपक्षी या बहुपक्षीय समझौते और वायदे अमेरिका द्वारा पहल करने से नहीं हुए। वे वास्तव में कम्युनिस्टों की अनेक कार्रवाइयों, जैसे, ईरान पर दबाव, यूनान में छापामार कार्रवाई और गृह-युद्ध, बल्कान-राष्ट्रों पर कब्जा, चेकास्लोवाकिया में फौज क्रान्ति, मार्शल-योजना को अस्वीकार किया जाना, अन्तर्राष्ट्रीय कम्युनिस्ट सङ्गठन 'कामिनफार्म' की स्थापना, पोर्टसडम समझौते का उल्लंघन, बर्लिन की नाकेबन्दी, विशाल और खतरनाक किस्म की सोवियत सेना का कायम करना, पिछलगू राष्ट्रों को जुटाना और संयुक्त राष्ट्रसङ्घ में अपने निषेधाधिकार (वीटो) का दुरुपयोग आदि की प्रतिक्रिया के रूप में सम्भव हो हो सके हैं।

पश्चिमी सामूहिक सुरक्षा की दिशा में पहला कदम १९४९ में उठाया गया जो अब उत्तरी अन्तलान्तकसन्धि सङ्गठन या नाटो के नाम से प्रसिद्ध है। १९५२ तक यह सङ्गठन यूरोप के उत्तरी सिरे से आइसलैंड और नार्वे से दक्षिण में यूनान और तुर्की तक फैल गया। इसमें सन्देह नहीं कि इतिहास में शान्तिकाल का यह सबसे मजबूत सङ्गठन है।

इसके अलावा दक्षिणपूर्वी एशिया सन्धिसङ्गठन "सिएटो", बगदाद समझौता और १९४७ की रिओ-सन्धि कुछ अन्य महत्वपूर्ण प्रतिरक्षात्मक फौजी सङ्गठन हैं। लेकिन ऐसा प्रतीत होता है कि "नाटो" सङ्गठन का जो ढाँचा है, भविष्य के लिए उसका विशेष महत्व है।

जिस कारण से स्वतन्त्र विश्व ने इस बड़े पैमाने पर सङ्गठन होने की आवश्यकता महसूस की वह है सुरक्षा। लेकिन इस सङ्गठन में शामिल जनता की नैतिक प्रवृत्तियों और जिन राजनीतिक तथा आर्थिक परिस्थियों में वह महान् प्रयत्न किया गया, इन दोनों ही बातों ने यह निश्चित कर दिया कि "नाटो" का केवल विशुद्ध फौजी उद्देश्य रह नहीं सकता।

जिस पृष्ठभूमि में यह सङ्गठन बना है वह फौजी नहीं रहा, जैसे, यूनान और तुर्की की सहायता के लिए १९४७ की ट्रूमन योजना; मार्शल-प्लान, यूरोपीय आर्थिक सहयोग सङ्गठन, यूरोपियन पेमेन्ट्स यूनियन, यूरोपीय परिषद, यूरोपीय कोयला और इस्पात समुदाय के लिए शूमन-योजना।

नाटो के एक सुसङ्गठित और मजबूत सङ्गठन के रूप में सामने आने तक जिसके पीछे अतलान्तक राष्ट्रों की रक्षा के लिए किये गये कभी न बदल सकने वाले वायदों की ताकत है, ये योजनाएँ और आन्दोलन अमेरिका और यूरोपीय देशों की सुरक्षा बनाये रहे।

संयुक्त सेनाओं का सञ्चालन और सामूहिक सुरक्षा के लिए आवश्यक अन्य पहलुओं का विकास करने का काम साधारण नहीं है, नाटो यह अभूतपूर्व कार्य कर रहा है, फिर शान्तिकाल में यह काम करना और ऐसे समय में करना जबकि रक्षा के लिए न केवल फौजी बल्कि, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था भी आवश्यक है। सामान्य काम नहीं और इसके लिए स्वयं नाटो को फौजी सङ्गठन के अलावा कुछ और भी होना जरूरी है।

उसे एक प्रकार की गैर फौजी "सरकार" का विकास करना है जो सभी राष्ट्रों की सरकारों के दृष्टिकोणों का प्रतिनिधित्व कर सके। उसे उन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के नये तरीके खोजने हैं जो राष्ट्रीय सुरक्षा के मार्ग में राष्ट्र की प्रभुसत्ता का प्रश्न प्रस्तुत कर देती हैं। उसे अमेरिका से लेकर आइसलैंड और लक्जमबर्ग तक सभी सदस्य राष्ट्रों की प्रभुसत्ता को बिलकुल अक्षुण्ण रखना है।

इसके साथ ही उसे सदस्य राष्ट्रों के आन्तरिक मामलों में भी अपनी पहुँच बनानी है, लेकिन यह इस प्रकार करना है जैसा इससे पहले शान्तिकाल में या युद्धकाल में कभी भी किसी अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन को नहीं करने दिया गया। उत्तरी अतलान्तक सन्धि की दूसरी धारा में उसे इस नये समुदाय में वाञ्छित आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक स्थितियों का विकास करने का अधिकार दिया गया है।

आज इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अधिकांश पश्चिमी देशों की संसदों के सदस्यों की नियमित रूप से संयुक्त बैठकें होती हैं। वे पश्चिमी जगत् के देशों में विद्वानों, पत्रकारों, लेखकों, कलाकारों, शिक्षकों और छात्रों को भेजते रहते हैं। ये एक-दूसरे के देशों में आते जाते रहते हैं लेकिन विदेशियों के रूप में नहीं, बल्कि एक नये विश्व समुदाय के साथी सदस्यों के रूप में।

रक्षा-व्यवस्था का यह विशाल जाल, और नाटो की निरन्तर बढ़ती सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक जिम्मेदारियाँ वास्तव में इस अतलान्तक

समुदाय की कहानी का एक अंशमात्र है। आक्रमण के विरुद्ध इस सङ्गठन ने अपने सदस्यों के लिए जो एक विशाल ढाल सी खड़ी कर दी है, उसके पीछे पश्चिमी जगत् की एकता के लिए अनेक नये और महत्वपूर्ण प्रयत्न हो रहे हैं। यूरोपीय साझा बाजार इनमें से एक है। यूरेटम, यूरोपीय परमाणु शक्ति सङ्गठन, ऐसा ही दूसरा प्रयत्न है।

दिन-प्रतिदिन की आवश्यकताओं और इस संयुक्त सङ्गठन के सदस्यों के परस्पर सम्पर्क से समुदाय की भावना विकसित होती है। यद्यपि अभी 'लाखों' लोग इससे प्रभावित नहीं है, लेकिन इसमें दो राय नहीं कि इन बातों ने 'हजारों' की संख्या को तो प्रभावित किया ही है।

यह सम्पर्क फौजी स्तर पर ही होता हो, ऐसी बात नहीं। जो सम्पर्क फौजी कर्तव्य का पालन करने के दौरान होता है उससे भी निजी दोस्ती बढ़ने में मदद मिलती है और यह ऐसी दोस्ती है जो हमेशा कायम रहेगी। चाहे इन संयुक्त सेनाओं के सिपाही भविष्य में किन्हीं परिस्थितियों में या किसी पेशे में आपस में मिलें, यह दोस्ती तब भी रहेगी। यूरोपीय मित्र राष्ट्रों की सेनाओं के सर्वोच्च सदरमुकाम (सुप्रीम हेड क्वार्टर्स, अलाइड पावर्स, यूरोप या "शेप") में काम करने वाले अफसरों का कहना है कि जब वे यहाँ आये उनका दृष्टिकोण राष्ट्रीय सीमाओं से सीमित था लेकिन इस नयी जिम्मेदारी को सँभालने के बाद उनका दृष्टिकोण बहुत व्यापक हो गया है, वह राष्ट्रीय सीमाओं को लाँघ चुका है, उनको नयी दृष्टि मिली है।

मित्र राष्ट्र सङ्गठनों के कर्मचारियों के बच्चे साथ-साथ स्कूल जाते हैं, यद्यपि उनकी राष्ट्रीयता भिन्न-भिन्न हैं। लक्जमबर्ग में छह यूरोपीय राष्ट्रों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था, यूरोपीय कोयला और इस्पात समुदाय के अधिकारियों और कर्मचारियों के बच्चों के लिए एक हाई स्कूल है। इस स्कूल में अन्तर्राष्ट्रीय पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा दी जाती है। वैसे इस बात का ध्यान रखा गया है कि छहों यूरोपीय देशों के विश्वविद्यालयों में प्रवेश के लिए जिन योग्यताओं की आवश्यकता है, उनको इस पाठ्यक्रम द्वारा पूरा किया जाय। परन्तु मालूम हुआ है कि स्वयं विश्वविद्यालय प्रवेश के लिए निर्धारित योग्यता में इस प्रकार का संशोधन कर रहे है जिससे अन्तर्राष्ट्रीय स्कूल की आवश्यकता पूरी हो सके। इस प्रकार समुदाय का भाव जहाँ विस्तृत होता जाता है वहाँ उसमें गहरायी भी आती जाती है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से यूरोपीय जनता को एकताबद्ध करने के लिए ये इतना कुछ किया जा चुका है कि उनका गिनाने से एक ऐसे आत्म-सन्तोष की भावना पैदा हो जायेगी जो उचित नहीं कही जा सकती।

एकता की इस प्रवृत्ति ने पश्चिमी यूरोप का स्वरूप ही सहसा बदल दिया है। आज वही यूरोप नहीं, जो पहले १६४८ में था। उसकी सम्पत्ति दुगुनी हो गयी है, उसके लोगों के पास काम है, वह खुशहाल है और उसमें आत्मविश्वास भरा हुआ है। फिर भी आज १९५८ में पश्चिमी यूरोप के राजनीतिज्ञ और वहाँ की आम-जनता भविष्य के सम्बन्ध में गम्भीर वहम में उलझे हुए हैं।

क्या वे हमेशा साथ-साथ रह सकते हैं? क्या उन्हें अलग-अलग नहीं होना चाहिए?

आधे यूरोप का यह मत है कि उसे पूर्ण एकता के लिए दृढ़ता से कोशिश करनी चाहिए, इसके लिए रास्ता बनाना चाहिए और तब तक इसके लिए दबाव डालते रहना चाहिए, जब तक कि यह पूर्ण एकता कायम नहीं हो जाती। दूसरा आधा भाग यह समझता है कि हमें एकता की आशा के साथ काम करते रहना चाहिए, मंजिल पर पहुँचने के बजाय उसकी ओर आशा के साथ चलते रहना ज्यादा उचित है—क्योंकि मंजिल का तात्पर्य यह भी हो सकता है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता ही लुप्त हो जाय।

इसलिये यह निश्चित-सा है कि जब पूर्ण एकता का लक्ष्य निकट आ जायेगा और अब वह निकट आ चुका है, तब ये दोनों आधे-आधे भाग एक दूसरे से अलग हो जायेंगे। परन्तु क्या वे पृथक् होने का साहस कर सकते हैं?

आज पश्चिमी यूरोप के सामने यही चुनौती है। बहसें इस बात पर नहीं हो रही हैं कि साझा बाजार और उन्मुक्त व्यापार क्षेत्र के गुण-दोष क्या हैं, बल्कि इन बहसों में वहसें वास्तव में इसी चुनौती के सम्बन्ध में ही हो रही हैं।

ब्रिटेन उन्मुक्त व्यापार-क्षेत्र के माध्यम से यूरोपीय यूनियन की दिशा में आगे बढ़ना चाहता है लेकिन वह इतनी दूर तक नहीं जाना चाहता कि मंजिल आ जाय। उसे शेष यूरोप की भी उतनी ही आवश्यकता है जितना वह अपनी आजादी को पसन्द करता है।

फ्रान्स, बेल्जियम, नेदरलैण्ड, लक्जमबर्ग, इटली और पश्चिमी जर्मनी 'छह सदस्यों का यूरोप', साझा बाजार की सन्धि से आपस में मिल गया है, उनका लक्ष्य यूनियन बनाना है और यह लक्ष्य भी निकट आता दिखाई दे रहा है।

लेकिन छह सदस्यों की यह यूनियन, स्वयं उनके लिए काफी नहीं होगी। ब्रिटेन का होना उनके लिए जरूरी है, अपने हित को देखते हुए वे चाहते हैं कि यदि वह यूरोप के अन्दर शामिल नहीं होना चाहता तो न सही, यूरोप की सीमा से सटा हुआ तो रह सकता है।

यदि साझा बाजार यूरोप को दो भागों में विभक्त कर देता है तो वह गत दस वर्षों में पश्चिमी यूरोप द्वारा की गयी प्रगति का अधिकांश व्यर्थ कर देगा और इससे बहुत क्षति होगी। दस वर्षों में जो प्रगति हुई है उसमें केवल छः का ही नहीं, बल्कि सत्रह राष्ट्रों का योगदान शामिल है।

इसकी शुरुआत पाँच जून १९४७ को हारवर्ड में जनरल जार्ज सी० मार्शल के भाषण से हुई। उस भाषण में उन्होंने कहा था कि यदि यूरोपीय देश अपनी सहायता करने के लिए एक साथ मिलें तो उनको और भी मदद दी जा सकती है।

१९४८ में यूरोपीय आर्थिक सहयोग सङ्गठन कायम किया गया। राष्ट्रीय *निर्माण कार्यक्रमों को परस्पर सम्बद्ध किया गया और अमेरिका द्वारा दी गयी* सहायता आवश्यकतानुसार बाँट दी गयी।

सबसे पहले कोटा-व्यवस्था पर आघात किया गया। यह तय किया गया कि सदस्य राष्ट्र आयात किये गये कोटे में से प्रथम पचास प्रतिशत छोड़ दें और अन्त में निजी तौर पर आयात किये गये माल का ९० प्रतिशत छोड़ने को कहा गया।

१९५० में यूरोपीय पेमेन्ट यूनियन कायम की गयी। १९५१ में व्यापार-क्षेत्र में उदारता और अदृश्य भुगतानों के सम्बन्ध में एक संहिता स्वीकार की गयी। यूरोप भर में तकनीकी सूचना-केन्द्र कायम कर दिये गये। प्रगति की रफ्तार तेज हो गयी और कारोबार तरक्की की चरम सीमा पर पहुँच गया।

छह वर्ष के अन्दर ही स्वयं यूरोपीय आर्थिक सहयोग सङ्गठन के शब्दों में, *"व्यापार में उदारता का जो मौजूदा स्वरूप है वह अपनी सभी सम्भावनाओं की चरम सीमा छू चुका है।"*

अब केवल सामान्य सहयोग काफी नहीं रहा। प्रगति की इस रफ्तार को कायम रखने के लिए यूरोप का सहयोग तो करना ही पड़ेगा। लेकिन कुछ ऐसी व्यावहारिक समस्याएँ भी पैदा हो गयी हैं जिनको हल करने के लिए हमें इस मात्र-सहयोग से और आगे बढ़ना होगा।

आधुनिक विश्व में यह बहुत सम्भव है कि यदि राजनीतिक इकाई कायम न हो तो आर्थिक इकाई चल नहीं सकती। वास्तव में यूरोपीय आर्थिक सहयोग सङ्गठन ने भी यही बात कही। परन्तु यदि सम्भव हो सकता है तो आर्थिक इकाई को ही चलाना पड़ेगा। यूरोप की २६ करोड़ जनता के लिए उनकी आशाओं और तरक्की की व्यापक सम्भावनाओं के लिए आजादी के विकास, अच्छे रहन-सहन और अपना प्रभाव कायम रखने के लिए, यह बहुत महत्त्वपूर्ण और अत्यन्त आवश्यक है।

—४—

इस बीच दुनिया के विदेश जिनको अधिक सुविधाएं प्राप्त नहीं हैं, या जो साधनों के अभाव व अन्य कारणों से अल्पविकसित अवस्था में ही हैं, अधिक उन्नत और साधन सम्पन्न देशों से सहायता प्राप्त कर रहे हैं। इनमें से कुछ सोवियत संघ और उसकी बढ़ती आर्थिक गतिविधियों से सहायता की अपेक्षा करते हैं। लेकिन अधिकांश ऐसे हैं जो पश्चिम की ओर देखते हैं।

तनिक ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल पर—उस विशाल साम्राज्य पर—गौर कीजिए। यह दुनियां के एक चौथाई भाग में फैला हुआ है और दुनिया की कुल जनसंख्या का चौथाई भाग इस हिस्से में निवास करता है। इस विस्तृत भू-भाग का अधिकांश अल्प विकसित स्थिति में पड़ा है। ६५ करोड़ में से अधिकांश को अभी तक भर पेट भोजन नहीं मिल पाता। परन्तु दुनिया में बहुमूल्य धातुओं का कुल जितना उत्पादन होता है उसका आधा अकेले इसी भू-भाग में होता है। दुनिया के एक तिहाई बहुमूल्य रत्न, करीब आधा चावल, आधा ऊन और एक चौथाई गेहूं तथा चीनी, इसी भाग में होती है।

इस भू-भाग को पूंजी चाहिए, लोगों को रोजगार चाहिए और रोजगार के लिए उद्योग चाहिए। इन आवश्यकताओं की विभिन्न मात्रा में पूर्ति करने वाली मुख्य एजेन्सियां इस प्रकार हैं :—

१—कोलम्बो-योजना, २—सहारा के दक्षिण में अफ्रीकी जगत् के लिए पारस्परिक सहायता संस्थान, ३—अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास बैंक, ४—अन्तर्राष्ट्रीय और स्थानीय विकास वित्त निगम, ५—उपनिवेश विकास निगम, ६—वाणिज्य-कम्पनियां और ७—लन्दन के पूंजी बाजार के निजी विनियोजनकर्ता।

अकेले ब्रिटेन से राष्ट्रमण्डल को जो पहले ब्रिटिश राष्ट्रमण्डल था, १९५८ तक के पांच वर्षों में एक अरब पौण्ड (दो अरब ८० करोड़ डालर) की सहायता प्राप्त हुई।

१९८७ में राष्ट्रमण्डल के पौण्ड क्षेत्र में जो नयी पूंजी लगायी गयी उसका ७५ प्रतिशत ब्रिटेन से आयी, १५ प्रतिशत अमेरिका से, १० प्रतिशत अन्तर्राष्ट्रीय बैंक से और पांच प्रतिशत अन्य स्रोतों से। (कनाडा राष्ट्रमण्डल का सदस्य है लेकिन डालर क्षेत्र होने के कारण राष्ट्रमण्डल के पौण्ड-क्षेत्र में शामिल नहीं किया जाता।)

कम्पनियों की ओर व्यक्तिगत रूप से लगायी गयी नयी पूंजी कुल पूंजी के आधे से अधिक है।

परमाणु शक्ति का जनकल्याणकारी कार्यों में उपयोग करने की दिशा में जो विकास हो रहा है, उसमें सहयोग का बहुत महत्त्वपूर्ण और बिलकुल नया क्षेत्र पैदा हो गया है। इस समय ब्रिटेन और कैनेडा इस क्षेत्र में प्रमुख साझेदार हैं। भारत और ब्रिटेन ने हाल ही पारस्परिक सहायता समझौता पर हस्ताक्षर किये और राष्ट्रमण्डलीय देशों में इस सम्बन्ध में नियमित रूप से सम्पर्क बना हुआ है।

लेकिन अब यह बात स्पष्ट होती जा रही है कि जिस तरह केवल आजादी ही काफी नहीं है उसी प्रकार अकेले सहायता भी काफी नहीं है। यहाँ तक कि अकेले पारस्परिक सहायता भी काफी नहीं कही जा सकती।

आर्थिक प्रगति का स्रोत वास्तव में उत्पादन और व्यापार है। पूरे पश्चिमी जगत् में वर्तमान समय में विदेशी सहायता के सम्बन्ध में नया रुख अपनाया जा रहा है। यह सहायता भेंट या अनुदान के रूप में न देकर ऋण और उधार की शक्ल में दी जा रही है। केवल एक देश द्वारा नहीं बल्कि अनेक राष्ट्रों द्वारा मिलकर सहायता देने की प्रवृत्ति का विकास हुआ है। (इसमें पूरे स्वतन्त्र विश्व के साधनों का इस्तेमाल किया जा सकता है)। यह औद्योगिक सङ्गठनों के कार्य क्षेत्र का विस्तार हुआ है, जैसे विश्व बैंक और अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष।

अमेरिकी कांग्रेस ने १६५८ में विदेशी सहायता की इन प्रवृत्तियों का समर्थन किया। उसने आपसी व्यापार कार्यक्रम की अवधि चार वर्ष और बढ़ाने का प्रस्ताव स्वीकार कर इन नयी प्रवृत्तियों के प्रति अपनी सहमति प्रकट की।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि अमेरिकी विदेशी सहायता कार्यक्रम द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद शान्ति के लिए सबसे अधिक प्रभावशाली साधन रहा है। उसने नये और अनुभवहीन स्वतन्त्र राष्ट्रों की आजादी का मजबूत आधार प्रदान किया और सोवियत राष्ट्र गुट के आर्थिक-अभियान का मुकाबला किया।

यह भी सही है कि अपने आरम्भिक दिनों में विदेशी सहायता का जिस प्रकार सञ्चालन किया गया, वह प्रभावशाली तरीका सिद्ध नहीं हुआ। अनेक परियोजनाएँ अव्यावहारिक थीं, ऐसी बिखरी-बिखरी योजनाएँ थीं जिनसे देश की स्थिति में कोई वास्तविक सुधार नहीं हो सका, जिन प्रशासकों को यह कार्य सौंपा गया वे अनुभवी और कुशल नहीं थे।

फौजी सहायता कार्यक्रम आमतौर पर प्रभावोत्पादक रहा। इससे तुर्की का आर्थिक ढाँचा विशाल सेना के खर्च के भार से टूटने से बच गया। तुर्की के लिए विशाल सेना कायम रखना एक अनिवार्य आवश्यकता बन गया है। इस कार्यक्रम से दक्षिणी कोरिया की सेना को शक्तिशाली सेना बनाया जा सका है और उत्तरी कोरिया को उसकी ताकत को स्वीकार करना

पड़ा। जनरल च्याङ्ग-काई-शेक की राष्ट्रवादी सेना का निरन्तर अधिकाधिक सहायता देते रहने से फारमोसा का नैतिक बल कायम रखा जा सका।

चीन की राष्ट्रवादी सरकार १९४९ में चीन की भूमि से भागकर फारमोसा पहुँची। तब से फौजी और आर्थिक सहायता के रूप में अमेरिका राष्ट्रवादी चीन को एक अरब डालर से अधिक दे चुका है।

आमतौर पर, महत्वपूर्ण मित्र राष्ट्रों को, जैसे, राष्ट्रवादी चीन, दक्षिणी कोरिया, दक्षिणी वियतनाम और तुर्की को, विशाल सेनाएं रखकर रक्षा-क्षमता को मजबूत बनाने के लिए, जो मदद दी गयी है वह इधर कुछ वर्षों में, जब से आर्थिक सहायता की मार्शल-योजना खत्म हुई है, कुल विदेशी सहायता का ७० प्रतिशत है।

विदेशी सहायता की भी कई श्रेणियां हैं। अतिरिक्त उपज की खपत के कार्यक्रम के अनुसार गेहूं, रुई और अन्य कृषि पैदावारों के अतिरिक्त भाग को विदेशों को भेजा जाता है और ये देश स्थानीय मुद्रा में उनका भुगतान करते हैं। कांग्रेस ने १९५८ में इस कार्यक्रम के लिए दो अरब २५ करोड़ डालर की राशि और स्वीकार कर ली।

श्री आइजनहावर के 'परमाणु शक्ति शान्ति के लिए' कोष (५५ लाख डालर) से मित्र देशों में अनुसन्धान कार्य के लिए लगायी गयी परमाणु भट्टियों का आधा खर्च दिया जाता है। इसके अलावा अमेरिका शरणार्थियों की सहायता के लिए, राष्ट्रसङ्घ बाल-कोष और राष्ट्रसङ्घीय विदेशी सहायता कार्यक्रम के लिए कई लाख डालर और देता है।

निर्यात आयात बैङ्क दुनिया भर में अनेक देशों को ऋण देने में व्यस्त है जिससे वे अपनी आवश्यकता पूरी करने को अमेरिकी निर्यात का खरीद सकें। इसका एक उद्देश्य अमेरिका से निर्यात किये गये माल की खरीद को प्रोत्साहन देना भी है। इस बैङ्क को पांच अरब डालर तक ऋण देने का अधिकार प्राप्त है। अमेरिकी कांग्रेस ने इसमें दो अरब डालर की और वृद्धि कर दी।

अमेरिका विश्व बैङ्क का सबसे बड़ा साझेदार है, बैङ्क की कुल पूंजी नौ-अरब डालर है। ६५ स्वतन्त्र राष्ट्र इस बैङ्क के सदस्य हैं। यह बैङ्क विकास-परियोजनाओं के लिए ऋण देता है। इनमें इथियोपिया के राजमार्गों और नाइजीरिया की रेल-व्यवस्था के आधुनिकीकरण से लेकर मलय के जलविद्युत् यन्त्रों तक अनेक परियोजनाएँ शामिल हैं।

विदेशों को दीर्घकालीन ऋण देने वाले ७० करोड़ डालर के अमेरिकी विकास ऋण कोष के पास १९५९ के मध्य तक करीब दो अरब डालर के आवेदन-पत्र पहुँच जाने की आशा है।

राष्ट्रसङ्घ के सूत्रों का कहना है कि अमेरिका प्रतिवर्ष अल्पविकसित देशों की मदद के लिए उभयपक्षीय और बहुपक्षीय सहायता समझौतों के रूप में करीब पाँच अरब डालर खर्च कर रहा है और ऐसा वह कई वर्षों से कर रहा है। इसके मुकाबले राष्ट्रसङ्घ के अनुसार सोवियत सङ्घ डेढ़ अरब डालर खर्च कर रहा है।

१९५६ तक के आठ वर्षों में अमेरिका ने स्वतन्त्र विश्व के अपने मित्र राष्ट्रों को पारस्परिक रक्षा-सहायता के अन्तर्गत २२ अरब डालर की सहायता दी है। इसी अवधि में इन मित्र राष्ट्रों ने अपनी फौजी ताकत बढ़ाने के लिए एक खरब ४१ अरब डालर खर्च किया।

इस असाधारण और व्यापक सहायता के सम्बन्ध में वाशिङ्गटन की रिपोर्ट के अनुसार द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद १९५८ तक के तेरह वर्षों में अमेरिका ने जो विदेशी सहायता दी, वह इस प्रकार है—

पश्चिमी यूरोप को, ३८ अरब ४० करोड़ डालर; सुदूर पूर्व और प्रशान्त क्षेत्र को, १५ अरब ७० करोड़ डालर, निकट पूर्व अफ्रीका और दक्षिण पूर्वी एशिया को, आठ अरब ७० करोड़ डालर और अमेरिकी गणराज्यों को, दो अरब ५० करोड़ डालर।

पारस्परिक सुरक्षा कार्यक्रम की कुल वर्तमान लागत राष्ट्रीय बजट का पाँच प्रतिशत है जो परराष्ट्र मन्त्रालय के आँकड़ों के अनुसार अमेरिका के प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बच्चे के पीछे प्रतिदिन पाँच सेन्ट की लागत पड़ती है।

—५—

जब हम पुरुष, स्त्री और बच्चे की बात कहते हैं तो यह वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय जगत् की बुनियाद की बात होती है। यदि राष्ट्रों को साथ-साथ रहना है, तो लोगों को साथ रहना होगा। राष्ट्रीय अखण्डता वास्तव में व्यक्ति की अपनी पूर्णता का ही विस्तृत रूप है। इस अखण्डता अथवा पूर्णता को कायम रखने के लिए विश्व के पास संयुक्त राष्ट्रसङ्घ का-सा साधन है। लाखों वर्षों से इन्सान ऐसे तरीकों की खोज करता रहा है जिससे तलवारों को हल के फल के रूप में ढाला जा सके, द्वेषभाव को खत्म कर सके और युद्ध के बिना मतभेदों को दूर कर सके। राष्ट्रसङ्घ वास्तव में बीसवीं सदी में इन्सान की इसी अभिलाषा का प्रतीक है।

संयुक्त राष्ट्रसङ्घ की स्थापना के समय उससे जो आशाएँ की गयी थीं, शायद उसके कट्टर समर्थक भी इस बात को स्वीकार करने में नहीं हिचकेंगे कि वह इन सभी आशाओं को पूरा करने में सफल नहीं रहा। अधिकांश यथार्थवादी यह

स्वीकार करते है कि दुनिया की जिन विषम परिस्थितियों में उसका जन्म हुआ, उसको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि उसने कुछ योगदान अवश्य किया।

राष्ट्रसङ्घ का सहयोग देना चाहिए, वह आदेश नहीं दे सकता। वह विश्व सरकार नहीं है। वह एक ऐसी संस्था के अलावा और कुछ नहीं, जिसके द्वारा प्रभुसत्ता प्राप्त राज्य परस्पर व्यवहार कर सकते हैं। परन्तु इसकी एक विशेषता आदर्शों का वह पोषणापत्र है जो आचार-व्यवहार का एक मापदण्ड निर्धारित करता है, जो गिरे हुए का उठने का सङ्केत देता है और जो मनुष्य मात्र को ऊँचा उठाना है।

संयुक्त राष्ट्रसङ्घ एक अनोखी संस्था क्यों है, इसका वास्तविक कारण यह है कि इसका आदर्शों का एक घोषणापत्र होने से न्याय और प्रगति चाहने वाले व्यक्ति अथवा राष्ट्र इसका उनके मुकाबले अधिक प्रभावशाली ढङ्ग से उपयोग कर सकते हैं जो व्यक्ति अथवा राष्ट्र केवल अपना स्वार्थ सिद्ध करना चाहते है।

राष्ट्रसङ्घ की ताकत वास्तव में विश्व-जनमत की ताकत है। कोई व्यक्ति या राष्ट्र इसकी ताकत का इस्तेमाल तभी कर सकता है जबकि वह विश्व-जनमत को इस बात से आश्वस्त कर दे कि उसका पक्ष न्याय का है। सम्भव है कि कोई कुछ समय तक अनेक को धोखा दे ले परन्तु अन्त में उसे मुँहकी खानी पड़ेगी क्योंकि तथ्यों का अन्धकार से सतह पर उभर आने का अपना अलग तरीका है। तथ्यों को छिपाया नहीं जा सकता।

सोवियत सङ्घ के शीत-युद्ध के सबसे अधिक विषभरी वाणी वालनेवाले प्रवक्ता एन्ड्रेई वाइ० विशिन्स्की कहा करते थे कि, "तथ्य बहुत जिद्दी होते है" और जो तथ्यों का शिकार बने उनमें वे स्वयं मुख्य व्यक्ति थे।

एक बार जब राष्ट्रसङ्घ की महासभा की बैठक पेरिस के 'पैलेस दि चैलेन' में हो रही थी, श्री विशिन्स्की ने अन्य प्रतिनिधियों को यह विश्वास दिलाने की कोशिश की कि यह कहना एकदम "बेवकूफी" है कि सोवियत सङ्घ क्रान्ति का निर्यात करना चाहता है। उस दिन उनकी गर्जना से उस भूतपूर्व संग्रहालय के गलियारों में लगी सङ्गमरमर की मूर्तियां भी एक बार कॉप उठी थीं।

यद्यपि उनके शब्द स्मरण नहीं, फिर भी उन्होंने जो कहा उसका आशय कुछ इस तरह का था, "जरा कल्पना तो कीजिये! यह कितनी बेहूदी बात है। मैं यह महसूस कर रहा हूँ कि यह बात आपको भी मनोरञ्जक लगी है। राजकुमार वान (थाईलैण्ड के परराष्ट्र मन्त्री) मुस्करा रहे हैं। व जानते हैं कि यह कितनी बेवकूफी भरी बात है।"

लेकिन राजकुमार वान के देश को सोवियत सङ्घ और कम्युनिस्ट चीन, दोनों के द्वारा क्रान्ति का निर्यात करने की कोशिशों का काफी अनुभव प्राप्त

है। जैसे ही मास्को के श्वेतकेशी प्रतिनिधि ने अपना भाषण खत्म किया राजकुमार वान ने बोलने की अनुमति माँगी। उन्होंने बहुत कोमल और विनम्र स्वर में कहा, "श्री विशिन्स्की के लिए मेरी मुस्कराहट की व्याख्या करना खतरे से खाली नहीं है, मैं तो हमेशा मुस्कराता रहा हूं।"

राष्ट्रसङ्घ की अधिकांश राजनीतिक गतिविधियां पृष्ठभूमि में ही होती रहती हैं। गलियारे, निजी कार्यालय, अतिथि-कक्ष या सामाजिक-समारोह, राजनीतिक गतिविधियों के मुख्य केन्द्र होते हैं। राष्ट्रसङ्घ के कुछ लोगों का अनुमान है कि ८५ से ९० प्रतिशत मतलब का काम निजी तौर पर ही होता है।

निजी तौर पर आपस में जो फैसले ले लिये जाते हैं उन्हें ही बाद में सार्वजनिक रूप से व्यक्त किया जाता है जिससे उन पर राष्ट्रसङ्घ की मुहर लग जाय और उनमें स्थायित्व आ जाय। यह सारी कार्रवाई कुछ इस प्रकार की होती है, जैसे, एक बहुत जटिल नाटक लिखा गया, उसमें संशोधन किये गये, उसे फिर नये सिरे से लिखा गया और बार-बार उसका अभ्यास किया गया। लेकिन यह सारी कार्रवाई पर्दे के पीछे ही होती रही। जब नाटक तैयार हो गया तो पर्दा उठा लिया गया और सबके सामने मञ्च पर उसे अभिनीत कर दिया।

लेकिन राष्ट्रसङ्घ के सभी खुले अधिवेशनों में पहले से ही तैयार मसविदों का पाठ नहीं किया जाता। जब निजी तौर पर समझौता-वार्त्ता में गतिरोध पैदा हो जाता है तब महासभा में सदस्य की भूमिका एकदम बदल जाती है।

तब सम्बन्धित पक्ष विश्व-जनमत को प्रभावित कर अपनी सौदेबाजी की ताकत को मजबूत करने में लग जाते हैं। जो पक्ष विश्व जनमत को अपने पक्ष में करने में जितना ही सफल होता है उतना ही वह अपने प्रतिद्वन्द्वी पर अधिक न्यायसङ्गत रुख अपनाने के लिए दबाव डाल सकता है।

इस प्रकार के दबावों का प्रायः सभी देशों पर काफी प्रभाव पड़ता है। इसके प्रभाव से वे तानाशाही देश भी नहीं बच पाते जो दुनिया को यह दिखाना चाहते हैं कि नैतिक दबाव का उन पर कोई असर नहीं होता। लेकिन वास्तविकता यह है कि उन पर असर पड़ता है।

—६—

यदि भविष्य में युद्ध से मुक्ति पानी है तो हम सबको नैतिक तथा आध्यात्मिक शक्ति का उपयोग करना पड़ेगा। इसके लिए क्रान्तिकारी दृष्टिकोण की आवश्यकता होगी।

शान्ति अक्सर एक शर्त बन जाती है जिसे आप दूसरे पर लागू करना चाहते हैं।

एक राष्ट्र या राष्ट्रों का समूह, जिनके लिए 'ताकत' शब्द का भी इस्तेमाल किया जाता है और जो एक दृष्टि से बहुत अर्थ भी रखता है, शान्ति रखने को कहता है और अन्य राष्ट्र मजबूर होकर उसको मानते हैं। कुछ समय तक शान्ति रहती है लेकिन फिर कोई विद्रोह कर देता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से इस प्रकार की शान्ति कायम नहीं रह सकती। यह वर्तमान स्थिति के लिए तो एकदम अनुपयुक्त है।

आज इस बात के लक्षण दिखायी दे रहे हैं कि शान्ति के नये दृष्टिकोण को अधिकाधिक समर्थन मिल रहा है। यह स्वयं पर पूर्ण नियन्त्रण कायम करने से शुरू होता है और तब कहीं दूसरे को संयमित करने के लिए आगे बढ़ने को कहता है।

यह उस सामान्य विवेक की उपज है जो जनसाधारण अपने घरेलू या सामाजिक मामलों में पड़कर स्वयं ही प्राप्त कर लेता है। इसके मूल में यह विचार निहित है कि यह जरूरी नहीं कि मैं हमेशा सही हूँ और दूसरा पक्ष भी तो हमेशा ही गलत नहीं हो सकता। बुराई जो बुनियाद में है, वैयक्तिक नहीं और शान्ति के लिए संघर्ष, साधिकारिक शीत युद्ध, वास्तव में सर्वत्र बुराई पर विजय का ही एक अङ्ग है, चाहे वह आपके देश में हो या दूसरे के देश में।

इसलिए युद्ध के विरुद्ध युद्ध घर से ही शुरू होता है। आज की दुनिया में यदि आप जो शिक्षा देते हैं उसी पर आचरण करते हैं तो इसका दूसरे पक्ष पर जबरदस्त दबाव पड़ता है। यदि उसे रोकना है, यदि वह अपने समय का हिटलर बना हुआ है और केवल ताकत के बल पर ही काबू में लाया जा सकता है, और यदि अभी तक शस्त्रास्त्रों पर नियन्त्रण कायम नहीं हो सका है, तो आप बिना किसी हिचक के साफ मन से शक्ति का इस्तेमाल कर सकते हैं और दुनिया आपका समर्थन करेगी।

युद्ध की ताकतों को दबाने के लिए अपने अन्दर ही सङ्घर्ष शुरू करना एक क्रान्तिकारी अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण है।

आज की दुनिया में भी जब कि अन्तर्राष्ट्रीय कानून के प्रसार-विस्तार में काफी प्रगति की जा चुकी है, लीग आफ नेशन्स की बुनियाद में जो आदर्शवाद था वह राष्ट्रसङ्घ युग के रूप में अपनी परिपक्व स्थिति में पहुँच चुका है, जब कि परमाणु युद्ध की विभीषिका ने दुनिया भर के नर-नारियों को गम्भीर बना उनकी शान्ति की इच्छा को और भी बलवती बना दिया है, राष्ट्रसमूह अपनी दुरङ्गी चाल को नहीं त्याग सका। अपनी राष्ट्रीय सीमा के अन्दर वे बन्धुत्व की

शक्ति को स्वीकार करते हैं और इस बात की कोशिश करते हैं कि दुनिया के बड़े-बड़े धर्मों में उस समान बुनियादी नियम के अनुसार चलें कि "तुम दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा कि तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करें।"

परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्णिम नियम की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता है।

राष्ट्र अपने आदर्शों की सीख दुनिया के अन्य राष्ट्रों को देते रहते हैं लेकिन जब व्यवहार की बात आती है तब 'शक्ति' के आधार पर व्यवहार करते हैं। यह नयी बात नहीं, यह अतीत से विरासत के रूप में मिली है। इस सदी में भी यह कायम है जब कि कानून और आचार-व्यवहार के अन्तर्राष्ट्रीय मापदण्ड निर्धारित करने की नयी कोशिश हो रही है और अन्तर्राष्ट्रीय कार्यनीति के स्वरूप में महत्वपूर्ण परिवर्तन आ चुका है।

परन्तु यहाँ विचारणीय विषय न तो अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन है, न घोषणापत्र, और न मन्द गति से किन्तु शान से कानून का प्रसार ही। हम प्रवृत्तियों की बात कह रहे हैं, हम इस बात पर विचार कर रहे हैं कि लोगों के मन में किस प्रकार के विचार सक्रिय हैं और युद्ध के वास्तविक कारण क्या हैं। वास्तव में ये प्रवृत्तियाँ और इच्छाएँ, मन में निहित युद्ध के मूल कारणों को प्रकट करने और उनको किसी प्रकट स्थिति से सम्बद्ध करने और उनका दमन करने की क्षमता ही अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठनों को उनके उद्देश्य और कार्यक्षेत्र आदि से सम्पूर्ण बनाती है—या उन्हें खोखला रखती है।

और इस गहराई में जहाँ मनुष्य अपनी सक्रियता के उद्देश्यों की खोज करता है वहाँ उसके सकारात्मक गुणों के साथ जो सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय होते हैं, किन्हीं 'वाद' के नकारात्मक तत्व भी जुटे हैं। राष्ट्रवाद के झण्डे के नीचे गर्व और सत्ता या अधिकार, आत्मगरिमा और क्रोध, उग्र रूप में साथ-साथ चलते हैं और मनुष्य जो आदिम प्रकार की भूलें करता है, वे दुश्मन पर किये गये हमले की चकाचौंध में खो जाती हैं। नागरिक यह मुश्किल से ही जान पाते हैं कि दूसरे पक्ष की लापरवाही और अपराधी मनोवृत्ति से राजनयिक "सत्ता को कायम रखने की अनिवार्यताओं" की ओर झुकने तथा कड़ाई के साथ व्यवहार करने के लिए किस प्रकार मजबूर हो जाता है।

अब सवाल है कि क्या इन्सान इससे बेहतर व्यवहार नहीं कर सकता? यहाँ प्रवृत्तियों की समस्या अपेक्षाकृत कुछ अधिक जटिल हो जाती है।

यदि आप एक बुराई को रोकने और उस पर काबू पाने की कोशिश में काफी आगे बढ़ चुके हैं तो आप एक राजनयिक या एक परराष्ट्र-मन्त्री के रूप में इस सङ्घर्ष में किस प्रकार संयम और नैतिक सन्तुलन बनाये रखेंगे? यदि दुनिया के

स्वतन्त्र राष्ट्रों की रक्षा करने के लिए आपके पास सेना है तो आप अन्य सभी साधनों के असफल हो जाने के बाद अपनी रक्षा करने के लिए फौजी मनोवृत्ति के असर को किस प्रकार टाल सकते हैं? आप ऐसी परिस्थिति में अपनी शक्ति के गर्व को प्रकट करने और दूसरे पक्ष को यह महसूस कराने से अपने को किस प्रकार रोक सकते है कि ताकत का जवाब ताकत से दिया जायेगा, और इससे कोई लाभ नही होगा?

यदि व्यावहारिक राजनीति की मांग के अनुसार आप अपनी जनता की वीरता की भावनाओं को नही उभाड़ते, उनमे आत्म-सम्मान की भावना नही जगाते और निष्क्रियता के भावी परिणामों से उन्हें सजग नही करते तो फिर परमाणु-युद्ध को टालने के लिए आप अपनी जनता को शान्तिकाल के शीत युद्ध में बदलने के कठिन और अरुचिकर कार्य की ओर कैसे प्रवृत्त कर सकते है?

ऐसे समय जब कि आप प्रतिरक्षा की कठिन जिम्मेदारियों को पूरा करने के लिए पश्चिमी समाज के सशस्त्र प्रहरी बने हुए हैं और किसी भी समय दुश्मन का मुकाबला करने को तैयार खड़े हैं, तो क्या अपनी कमजोरियों पर काबू पाने की कोशिश करते हुए अपने शान्तिकालीन आदर्शों पर जमे रहने की बातें करते रहना अनुचित है? यदि हमें तब तक इन्तजार करना पड़े जब तक कि हम सर गलहाद की तरह मन, वचन और कर्म से शुद्ध नहीं हो लेते तो क्या फिर उस स्वतन्त्र-समाज की हम कभी रक्षा भी कर सकेंगे?

ये प्रश्न इस समय बहुत महत्त्व रखते है। इन सवालों का उत्तर कोई अन्तर्राष्ट्रीय सङ्गठन नही दे सकता चाहे वह कितना ही अच्छा और कितना ही सहायक क्यों न हो। ये असल में उद्देश्यों और कार्यनीति के सवाल है और केवल नैतिक स्तर पर ही इनका उत्तर दिया जा सकता है।

हमें इनका मुकाबला करने को तैयार रहना चाहिए। शीत युद्ध के इस वर्तमान युग में हम पश्चिम के लोग दो परस्पर विरोधी बातें करने की कोशिश कर रहे है। इसमें कोई शक नहीं कि परराष्ट्र नीति में हमें जिन कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है उनका बहुत कुछ कारण हमारी इन विरोधी प्रवृत्तियों का सङ्घर्ष ही है। हम समाज की, ऐसे लुटेरे तत्त्वों से रक्षा करने की कोशिश कर रहे हैं जो आज की दुनिया में दिन-प्रतिदिन अधिक खतरनाक होते जा रहे है। परन्तु इसके साथ ही हम बहुत सज्जनता का व्यवहार भी कर रहे हैं जिससे हम अपने को आकर्षण का केन्द्र बना सकें और अन्य लोगों को भी वही जीवन-पद्धति अपनाने के लिए आकृष्ट कर सकें जिस पर हम स्वयं विश्वास करते हैं।

इसमें से एक तो विशुद्ध फौजी काम है और दूसरा एकदम मानवतावादी। हम इस बात से परेशान हैं कि इन दोनों कार्यों के लिए हमें परस्पर विरोधी रुख अपनाना है और दोनों के उद्देश्य भी परस्पर विरोधी होंगे। हम इन दोनों को एक में विलय करने में असमर्थ सिद्ध हुए। हम एक ही समय में दो विरोधी कार्यों को उपयुक्त ढङ्ग से अञ्जाम नहीं दे सके।

यदि प्रवृत्तियों के इस सन्दर्भ का बिना किसी छिपाव-दुराव के नैतिक धरातल पर विश्लेषण किया जाय तो उससे क्या मदद मिलेगी? क्या इससे यह मालूम हो सकेगा कि *परराष्ट्रनीति में शक्ति और स्नेह को किस प्रकार संयुक्त किया जाय?*

यह सम्भव है। इससे कम से कम सिद्धान्त रूप में यह मालूम हो जायेगा कि ऐसा किस प्रकार किया जा सकता है। और यह मञ्जिल की ओर पहला कदम होगा जो एक प्रकार से अनिवार्य है।

तनिक विचार कीजिये।

नैतिकता के स्तर पर मनुष्य के चरित्र के प्रत्येक गुण के (राष्ट्र के चरित्र के क्यों नहीं?) दो पहलू होते हैं, सकारात्मक और नकारात्मक।

शक्ति का मतलब यह है कि जो बात सही समझी जाय उसके लिए साहस-पूर्वक सीना ताना जाय। यह वास्तव में संयमित और जागरूक मन की अपनी ताकत है। जिसे हम गलत समझते हैं यह उसके विरुद्ध सङ्घर्ष करने का और लोगों की उस गलत बात के लिए प्रभाव से रक्षा करने का दृढ़ निश्चय है।

अच्छे कार्य के लिए मनुष्य की इन लड़ाका प्रवृत्तियों के औचित्य पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती।

लेकिन यदि इन गुणों को अकेले छोड़ दिया जाय, मानवतावादी मूल्यों से *इनको वञ्चित कर दिया जाय तो इसमें सन्देह नहीं कि इनका पतन हो जायेगा,* ये जो 'गुण' थे अवगुणों में बदल जायेंगे। दृढ़ता, जिद्दीपन और घमण्ड का रूप ले लेती है, शक्ति मनमाना कार्य करने का साधन बन जाती है। स्वतन्त्रता की रक्षा वास्तव में अपने गलत-सही कामों का बचाव और अपने विशेष स्वार्थों की रक्षा बन जाती है। उद्देश्य पक्षपातपूर्ण हो जाता है और व्यापक होने के बजाय सङ्कीर्ण हो जाता है। मनुष्य का मन जब ईमानदारी की ताकत को छोड़कर झूठ का सहारा ले लेता है तब वह बर्बर और क्रूर हो जाता है और इससे *जो प्रवृत्तियाँ पैदा होती हैं उनमें न केवल दृढ़ता होती है बल्कि वे आक्रामक,* उत्तेजक और अनियन्त्रित हो जाती हैं। इनके साथ ही क्रोध, दम्भ और लालच पैदा होते हैं। यही नहीं, शक्ति का दुरुपयोग पागलपन की हद तक पहुँच जाता है और विश्वास या आस्था की बजाय भय और घृणा से परिचालित होता है।

सद्गुणों में पूर्ण शक्ति और उसके नकारात्मक दुरुपयोग के बीच की विभाजन-रेखा वास्तव में नैतिकता की रेखा होती है।

एक राष्ट्र या एक राजनयिक सद्गुणों से प्रेरित रुख भी अपना सकता है और नकारात्मक रुख भी।

अब एक दूसरे गुण पर विचार कीजिये, यह बहुत महत्वपूर्ण है और परराष्ट्र-नीति में इसको शक्ति की बराबरी में नही रखा जा सकता। यह गुण है मित्रता, इसमें भी अच्छे और बुरे दो पहलू है।

अच्छे पहलू के अन्तर्गत जो देश अपनी परराष्ट्र नीति के द्वारा अपनी सद्भावना और सहायक प्रवृति को व्यक्त करता है वह वास्तव में दुनिया को अपना आकर्षक चेहरा दिखाता है। एक राजनयिक जो मित्रता की भावना को प्राथमिकता देता है वह दूसरे की ईमानदारी का आदर करता है और उनकी आशाओं व आशङ्काओं में विशेष दिलचस्पी दिखाता है। वह उनसे केवल बात ही नहीं करता बल्कि उनकी बातों को ध्यान से सुनता है और उनके सुझावों या प्रस्तावों को समझने की कोशिश करता है। वह उदारता दिखाता है, और सहिष्णु होता है। वह दूसरे पक्ष पर हमला करने के लिए कभी उतारू नहीं रहता, बहुत सोच-समझ कर कदम उठाता है लेकिन दूसरे पक्ष की बात समझने के लिए सदैव तत्पर रहता है। वह न तो अपने को अन्य सबकी अपेक्षा दूध का धुला साबित करना चाहता है और न श्रेष्ठता का भाव ही जताता है।

वास्तव में यह व्यापक रूप में विश्व-प्रेम की भावना का द्योतक है और अपने सक्रिय रूप में यह आकर्षण की सबसे बडी शक्ति है।

लेकिन, यहाँ भी जब इस गुण का पतन होने दिया जाय और इसे नकारात्मक स्थिति तक गिरने दिया जाय तो सार्वजनिक मामलो के क्षेत्र में इसका परिणाम होता है—कमजोरी। दूसरे के प्रति स्नेह का स्थान दूसरों की कमजोरी और बुराई का लाभ उठाने की प्रवृति ले लेती है। स्वभाव की विनम्रता अत्याचार के सामने कायरता का रूप ले लेती है। आदर्शवाद केवल काल्पनिक हो जाता है। सही और गलत में स्पष्टभेद करने की दृष्टि धुंधली पड़ जाती है और बुराई के प्रति कपटी तथा अज्ञानता का रुख उभर आता है, जिसका परिणाम होता है दुष्कर्म या गलत काम करने वाले को सन्तुष्ट रखने की प्रवृति।

यहाँ भी अच्छे और बुरे गुणो के बीच की विभाजन-रेखा नैतिकता की रेखा ही होती है।

कोई राष्ट्र या कोई राजनयिक बन्धुत्व की भावना को ठोस रूप दे सकता है या केवल उसकी अवास्तविक छाया मात्र भी कायम रख सकता है।

यही वह मुख्य बात स्पष्ट होती है।

वास्तविक शक्ति और वास्तविक उदारता एवं सद्भावना को संयुक्त किया जा सकता है लेकिन इनके नकारात्मक रूपों को संयुक्त नहीं किया जा सकता।

आक्रामक रुख न केवल शक्ति का दुरुपयोग है बल्कि स्नेहभाव का शत्रु है और अन्ततः स्नेहभाव तथा मैत्री की जड़ काट देता है।

इसी प्रकार 'तुष्टिकरण' न केवल स्नेहभाव या मित्रता की गलत समझ है बल्कि शक्ति का शत्रु है और यदि इसे कायम रहने दिया गया तो शक्ति निश्चय ही खत्म हो जायेगी।

सकारात्मक पक्ष के अन्तर्गत ठोस कारणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सच्चे अर्थ में दृढ़ता और बन्धुत्व की भावना को एक दूसरी की आवश्यकता है अन्यथा अलग-अलग रूप में दोनों अधूरे रह जायेंगे और फिर इनका पथभ्रष्ट होना प्रायः निश्चित है।

आज की दुनिया में शक्तिशाली राष्ट्र यदि उच्च मानवतावादी आदर्शों के लिए काम करना चाहे तो अनेक को अपना मित्र बना सकता है और अपनी शक्ति का न्यायोचित ढङ्ग से इस्तेमाल कर सकता है। केवल शक्ति का ही प्रदर्शन किया जाय तो इस सैन्यवादी छल से दूसरे पक्षों के मन में घृणा और सन्देह पैदा होता है।

यही नहीं, आज उदार और सद्भावना पर आधारित परराष्ट्रनीति जो अन्य देशों और जनता की आवश्यकताओं तथा इच्छाओं का आदर करती है, तभी कायम रह सकती है जबकि उसकी आक्रामकों से रक्षा की जाय और उसे कहीं से कोई खतरा न पहुँच सके।

शान्ति के लिए अपेक्षित नैतिक-नेतृत्व तभी सम्भव है जब कि अच्छे और बुरे में अन्तर कर सकने की और अच्छे को स्वीकार कर बुरे को रद्द करने की क्षमता हो। नैतिक-नेतृत्व के लिए इसके अलावा और कोई रास्ता नहीं है। इस नैतिक धरातल पर पश्चिम के शान्ति स्थापना के प्रयत्नों में बाधक सभी प्रकट अन्तर्विरोध खत्म हो जाते हैं। यदि हमारी नीति में शक्ति और सज्जनता के ये अन्तर्विरोध खत्म हो जाँय तो फिर इन दोनों के बीच सामञ्जस्य बनाये रखने के लिए यह तय कर सकना असम्भव नहीं रहेगा कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में किस प्रकार के कदम उठाने चाहिए, क्या वक्तव्य दिये जाने चाहिए और क्या नीतियाँ अपनानी चाहिए।

हम फिर अपनी भूली बात पर आते हैं।

इस बात के सङ्केत मिले हैं कि यह सामान्य किन्तु ठोस सिद्धान्त वर्तमान-विश्व स्थिति में पुनः जोर पकड़ने लगा है। छोटे राष्ट्रों को आज पहले की तरह

जिधर चाहा उधर नहीं धकेला जा सकता। शक्तिशाली राष्ट्र आज अपनी जिम्मेदारियों से मुक्त नहीं हो सकते। यदि वे स्वयं उस प्रकार का आचरण नहीं करते जैसा कि वह दूसरों से अपेक्षा करते हैं, तो चारों ओर शोर मच जाता है। सारा जनमत उनके विरुद्ध हो जाता है और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों तथा राष्ट्रसङ्घ में यह विरोध बहुत महत्व रखता है। अतीत की मान्यता प्राप्त राजनयिक परम्पराओं के बजाय निष्पक्ष न्याय और कानून के प्रति आदर भाव अधिक व्यापक हो गया है।

यदि विश्व के मामलों में नैतिकता की यह भावना विकसित होती गयी तो जो राष्ट्र इस क्षेत्र में अधिक कुशलता प्राप्त करेंगे वही बाहरी दुनिया में अधिक श्रेष्ठ नेतृत्व कर सकेंगे। सङ्कीर्ण राष्ट्रवाद के स्वार्थ के स्थान पर अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्णिम शासन की ओर प्रवृत्ति होगी और मनुष्य का उज्ज्वल भविष्य निरापद हो सकेगा।